



THE FREE INDOLOGICAL COLLECTION

WWW.SANSKRITDOCUMENTS.ORG/TFIC

FAIR USE DECLARATION

This book is sourced from another online repository and provided to you at this site under the TFIC collection. It is provided under commonly held Fair Use guidelines for individual educational or research use. We believe that the book is in the public domain and public dissemination was the intent of the original repository. We applaud and support their work wholeheartedly and only provide this version of this book at this site to make it available to even more readers. We believe that cataloging plays a big part in finding valuable books and try to facilitate that, through our TFIC group efforts. In some cases, the original sources are no longer online or are very hard to access, or marked up in or provided in Indian languages, rather than the more widely used English language. TFIC tries to address these needs too. Our intent is to aid all these repositories and digitization projects and is in no way to undercut them. For more information about our mission and our fair use guidelines, please visit our website.

Note that we provide this book and others because, to the best of our knowledge, they are in the public domain, in our jurisdiction. However, before downloading and using it, you must verify that it is legal for you, in your jurisdiction, to access and use this copy of the book. Please do not download this book in error. We may not be held responsible for any copyright or other legal violations. Placing this notice in the front of every book, serves to both alert you, and to relieve us of any responsibility.

If you are the intellectual property owner of this or any other book in our collection, please email us, if you have any objections to how we present or provide this book here, or to our providing this book at all. We shall work with you immediately.

-The TFIC Team.

जैन कथामाला

[भाग ३१ से ३३]

जैन श्रीकृष्ण-कथा

लेखक

उपाध्याय श्री मधुकर मुनि

सम्पादक

श्रीचन्द्र सुराना 'सरस'

प्रकाशक

मुनिश्री हजारीमल स्मृति प्रकाशन
ब्यावर [राजस्थान]

- ० पुस्तक—जैन श्रीकृष्ण-कथा
- ० लेखक—उपाध्याय श्री मधुकर मुनि
- ० सम्पादक—श्रीचन्द्र मुराना 'सरस'
- ० सहयोगी सम्पादक—डा० वृजमोहन जैन
- ० संप्रेरक—श्री विनयमुनि 'भीम'
श्री महेन्द्रमुनि 'दिनकर'
- ० प्रथमावृत्ति—वि० स० २०३५ श्रावण
ई० सन् १९७८ अगस्त
- ० मुद्रक—श्रीचन्द्र मुराना के लिए
श्री विष्णु प्रिंटिंग प्रेस, आगरा-२
- ० मूल्य . पाँच रुपये मात्र [संयुक्त ३ भाग]

प्रकाशन में अर्थ सहयोग

जैन श्रीकृष्ण-कथा के प्रकाशन में सस्था को अनेक उदारचेता सज्जनो का अर्थ सहयोग प्राप्त हुआ है। उनके सहयोग के आधार पर ही हम साहित्य को लागत मूल्य पर ही पाठको के हाथों में पहुँचाते हैं। अनेक प्रकाशनो में तो अर्थ हानि उठाकर भी कम मूल्य में देने की स्थिति रही है। अतः सहयोगियों के प्रति आभार प्रदर्शन के साथ ही उदारमना सज्जनो से सहयोग का अधिकाधिक हाथ बढ़ाते रहने की विनती करते हैं।

❀ १००१) एक गुप्त दानी सज्जन ।



❀ ५०१) श्री भवरलालजी लूकड, पाली

❀ ५०१) श्री जवरीलालजी लूकड, पाली

आपके दो अनुज भ्राता भी हैं। श्री गुमानमलजी और लाभचन्द जी।

आप दोनों सहोदर भ्राता हैं। आपने अपने पूज्य पिताजी श्री धनराज जी की पुण्यस्मृति में यह अर्थ-सहयोग दिया है।

आप दोनों भ्राता धार्मिक प्रकृति के सज्जन पुरुष हैं। दोनों के पापड का व्यवसाय है। श्री भँवरलालजी इस समय इन्दौर में रहते हैं। श्री जवरीलाल जी अपनी जन्म-भूमि पाली में ही अपना व्यवसाय करते हैं।

इस अर्थ-सहयोग के लिये सस्था भ्रातृ युगल का आभार मानती है। समय-समय पर सस्था को आपका अर्थ सहयोग मिलता रहेगा, ऐसी आशा है।



- २०१) श्रीमती नाथीवाई पाली
धर्म-पत्नी—स्व० श्री केसरीमल जी तलेसरा
- २०१) श्रीमती सुकनियावाई पाली
धर्म-पत्नी - स्व० श्री धनराजजी लूकड
- १२५) श्रीमती सायर वाई पाली
धर्म-पत्नी—श्री मज्जनराजजी मूथा
- १००) श्रीमती मोहनवाई पाली
धर्म-पत्नी—स्व० श्री छोटमलजी धाडीवाल
- १००) श्रीमती वस्तुवाई पाली
धर्म-पत्नी—फूलचन्दजी काठेड
- १००) श्रीमती सुकदेवी पाली
धर्म-पत्नी—श्री प्रेमराजजी मेहता
- ५१) श्रीमती मोहनवाई पाली
धर्म-पत्नी—स्व० श्री मुकनचदजी मरलेचा
- ५१) गुप्त अर्थ-सहयोगिनी
- ५०) श्रीमती ज्ञानावाई पाली
धर्म-पत्नी—श्री रूपराजजी मूथा
- २१) श्रीमती धिनियावाई पाली
धर्म-पत्नी—श्री चम्पालालजी सकलेचा

उक्त सभी सहयोगियो के प्रति हम आभार व्यक्त करते हैं ।

—सत्री

मुनिश्री हजारीमल स्मृति प्रकाशन, व्यावर ।

प्रकाशकीय

आज से लगभग ६ वर्ष पूर्व उपाध्याय श्री मधुकर मुनिजी म० के अन्त करण मे एक योजना स्फुरित हुई थी, कि जैन साहित्य के अक्षय-अपार कथा साहित्य का दोहन कर सरल-मुबोध भाषा-शैली मे जैन कथा वाङ्मय का प्रकाशन किया जाय । मुनिश्री की यह शुभ भावना शीघ्र ही फलवती हुई और कार्य प्रारम्भ होगया । अब तक इस योजना मे ३० भाग प्रकाशित हो चुके हैं, जिसमे जैन कथा साहित्य की ३०० से अधिक प्रामाणिक कहानियो का प्रकाशन हो चुका है ।

गत वर्ष जैन रामकथा का प्रकाशन हुआ था । एक ही जिल्द मे पाँच भाग निविष्ट कर लगभग ५२० से अधिक पृष्ठों की वह पुस्तक पाठको के हाथो मे पहुँची, सर्वत्र ही उसका आदर हुआ । कथा के साथ-साथ वह एक प्रकार का सदर्थ ग्रंथ भी बन गया था जिसमे जैन राम-कथा एवं वैदिक रामकथा का व्यापक व तुलनात्मक वर्णन भी था । अब उसी शैली मे जैन श्रीकृष्ण-कथा तीन भाग एक ही जिल्द मे पाठको के हाथो मे प्रस्तुत है ।

हमे विश्वास है यह प्रकाशन भी पूर्व प्रकाशनो की भाँति पाठको को मनोरजन के साथ शिक्षा प्रदान कर ज्ञान वृद्धि मे उपयोगी होगा ।

अमरचंद मोदी

—मन्त्री

मुनिश्री हजारीमल स्मृति प्रकाशन

स्व-कथ्य

वासुदेव श्रीकृष्ण भारतीय संस्कृति के ही नहीं, अपितु विश्व संस्कृति के एक महापुरुष हैं। धर्म और राजनीति—दोनों ही क्षेत्रों में उनका विशिष्ट अवदान रहा है।

जैन परम्परा में तिरेसठ शलाका (विशिष्ट) पुरुष बताये गये हैं, उनमें जहाँ भगवान् आदिनाथ, अरिष्टनेमि, पार्श्वनाथ और भगवान् महावीर की गणना की गई है वहीं भरत चक्रवर्ती, मर्यादा पुरुषोत्तम राम और वासुदेव श्रीकृष्ण के नाम भी सम्मिलित हैं। श्रीकृष्ण नवम वासुदेव और वलभद्र नवम वलदेव हुए हैं। जैन आगमों में पश्चात्कर्त्तृ साहित्य में वासुदेव श्रीकृष्ण के कर्मयोगी जीवन के विविध प्रसंग आते हैं। घटनाओं में प्रसंगों की दृष्टि से श्रीराम के जीवन से भी अधिक घटनाएँ श्रीकृष्ण के जीवन की जैन आगम-साहित्य में मिलती हैं। जैन आगमगत वर्णन का अध्ययन करने से वासुदेव श्रीकृष्ण का उदात्त जीवन एक कर्मयोगी के रूप में सामने आता है। वे न्यायनिष्ठ, सत्यवादी, प्रजावत्सल, महान् पराक्रमी और परम नीतिनिपुण तो हैं ही, इसी के साथ महान् धर्मप्रेमी, उदार, सहिष्णु, गुणज्ञ, मित्र-सहायक और अनीति के कट्टर विरोधी, महान् शासक भी हैं।

जैन परम्परा एवं हिन्दू परम्परा में, श्रीकृष्ण के जीवन विषयक, व्यक्तित्व विषयक मतभेद भी हैं और समानताएँ भी। मतभेद होना कोई बुरी बात नहीं है, यह विचार स्वातन्त्र्य का सूचक है, जो भारतीय संस्कृति की अपनी गारंटी गरिमा है। जैन परम्परा में दर्शन की दृष्टि से आत्मा के विकास की अनन्त सभावनाएँ हैं। आत्मा परमात्मा बनता है, किन्तु परमात्मा, भगवान् या ईश्वर कभी आत्मा के रूप में धरा पर पुनर्जन्म धारण कर अवतार नहीं लेता। जबकि हिन्दूधर्म

‘अवतारवादी’ विचारधारा का समर्थक है। महापुरुषों के सम्बन्ध में जैनो व हिन्दुओं में यही मौलिक मतभेद है। राम व श्रीकृष्ण के विषय में भी इसी धारणा के कारण मतभेद हुए हैं, कथाओं में अन्तर आया है। मेरे विचार में आज इस बात का महत्व उतना नहीं रहा, कि कोई राम या श्रीकृष्ण को जन्म से ही भगवान माने या कृतित्व से भगवान माने, आज तो आवश्यकता है कि उनका उदात्त चरित्र हमें क्या, कितनी और कैसी प्रेरणा देता है। हम उनके आदर्शों से अपना जीवन-विकास कितना साधते हैं और हम कितना उनकी शिक्षाओं का पालन करते हैं। अस्तु।

प्रस्तुत जैन श्रीकृष्ण-कथा के आलेखन में मूलतः मेरा दृष्टिकोण समन्वय-प्रधान रहा है। ज्वेताम्बर परम्परामान्य त्रिपष्टि-गलाका पुरुषचरित के आधार पर श्रीकृष्ण-कथा लिखी गई है। आगम व वसुदेवहिंडी आदि ग्रंथों से भी कथासूत्र जोड़ा है। दिगम्बर जैन परम्परा के प्रमाणभूत ग्रन्थों में कहीं-कहीं घटना में, कहीं घटना के कारणों में व कहीं व्यक्तियों के नामों में अन्तर है, पर कोई मौलिक अन्तर नहीं है। जबकि वैदिक परम्परा के ग्रंथों—श्रीमद्भागवत, महाभारत आदि में काफी अन्तर है। हजारों वर्ष की साहित्य धारा में इतना अन्तर हो जाना कोई आश्चर्यजनक बात भी नहीं है। क्योंकि विचारक्षेत्र में सदा से ही ‘मुण्डे-मुण्डे मतिभिन्ना’ का सिद्धान्त चलता आया है। फिर भी मेरा प्रयत्न यह रहा है कि मतभेद को बढ़ावा न देकर उसकी दूरी को पाटना व मतभेदजन्य कटुता को मिटाना—ताकि सभी धार्मिक व विचारक एक दूसरे को समझे, निकट आये और जीवन में सहिष्णु बनें। धर्म-सहिष्णुता बहुत बड़ी चीज है, वह तभी आयेगी जब हम समभाव के साथ एक दूसरे को पहेंगे-सुनेंगे। इसी कारण जैन श्रीकृष्ण-कथा के लेखन में, फुटनोट के रूप में भागवत, महाभारत आदि के कथान्तरो का उल्लेख भी किया गया है। कुल मिलाकर वासुदेव श्रीकृष्ण के ‘लोकमंगलकारी’ अखण्ड स्वरूप को बनाये रखने की चेष्टा मैंने की है।

मेरे विचार व दृष्टिकोण के अनुकूल इस ग्रन्थ का सम्पादन हुआ है। मेरे आत्मप्रिय सहयोगी श्रीचन्दजी सुराना 'सरस' ने अथक श्रम करके पूर्वग्रन्थों की भाँति ही इसका भी विद्वत्तापूर्ण संपादन किया है। डा० श्री वृजमोहन जी जैन का भी अच्छा सहयोग रहा है। प्रारम्भिक प्रस्तावना में संपादक-बन्धु ने श्रीकृष्ण-कथा का अनुशीलन कर जो वक्तव्य लिखा है, वह प्रत्येक पाठक को पठनीय व मननीय है। मैं सम्पादकद्वय को भूरिग साधुवाद देता हूँ।

मेरे प्रेरणास्रोत श्रद्धेय स्वामीजी श्री वृजलालजी महाराज की वात्सल्यपूरित प्रेरणा का ही यह सुफल है कि मैं यत्किञ्चित् साहित्य-सर्जना कर लेता हूँ। श्री विनयमुनि एवं श्री महेन्द्रमुनि की सेवा शुश्रूषा से मेरी साहित्य सेवा गतिशील रहती है। गुरुजनो की कृपा व शिष्यों की भक्ति के प्रति मेरा हृदय पूर्ण कृतज्ञ है।

मुझे पूर्ण विश्वास है कि पूर्व पुस्तकों की भाँति ही पाठक जैन श्रीकृष्ण-कथा को मनोयोगपूर्वक पढ़ेंगे। हाँ, इस पुस्तक के साथ ही त्रिपष्टिशलाका पुरुषो के जीवन चरित्र का लेखन भी सपन्नता को प्राप्त हो रहा है। अगले भागों में जैन साहित्य की स्फुट कथाओं को लेने का विचार है। अस्तु

जैन स्थानक
व्यावर

—मधुकर मुनि

प्रस्तावना

भारतीय साहित्य में श्रीकृष्ण-कथा

भारतीय वाङ्मय में जितना अधिक साहित्य श्रीकृष्ण के सम्बन्ध में मिलता है, उतना अन्य किसी महापुरुष के सम्बन्ध में नहीं। इनके असाधारण, अद्भुत और अलौकिक व्यक्तित्व एवं कृतित्व के प्रति जैन व हिन्दू कवि ही नहीं मुसलमान कवि भी आकर्षित हुए और उन्होंने भी इनका गुणानुवाद किया, जिनमें रसखान, रहीम आदि प्रमुख हैं।

श्रीकृष्ण का चरित्र इतना विविधतापूर्ण और विचित्र रहा है कि प्राचीन काल में अब तक इनके पुजारी और आलोचक दोनों ही रहे हैं। जब ये विद्यमान थे तब भी दुर्योधन, जल्य, जरामघ्न आदि ने तो आलोचना की ही, इनकी पटरानियों में से मत्स्यमामा भी इन्हें नटखट और चालाक समझती रही। दूसरी ओर उन पर अडिग विश्वास करने वाले पांडव, रुक्मिणी आदि अनेक लोग भी रहे। विदुर का विश्वास तो पूजा—उपासना की सीमा तक बढ़ा हुआ था। संभवतः यही कारण था कि एक ओर कुछ लोग इन्हें 'चोराग्र-गण्य' की उपाधि से विभूषित करते थे तो दूसरी ओर अधिकांश जनता इन्हें 'लोकमंगलकारी' के रूप में देखती थी। इसी कारण श्रीकृष्ण चरित्र विविधतापूर्ण हो गया—कहीं अलौकिक और चमत्कारी घटनाएँ जुड़ गई हैं तो कहीं माखनचोरी, गोपीरजन आदि की लीला प्रधान घटनाएँ भी। किन्तु इतना सत्य है कि अपने विभिन्न रूपों और विविध प्रकार के अद्भुत क्रिया-कलापों द्वारा जितना इन्होंने भारतीय मानस को प्रभावित किया उतना और किसी ने नहीं। उनका जीवन चरित्र भारत की तीनों धर्म परम्पराओं—वैदिक, बौद्ध और जैन—में मिलता है।

वैदिक परम्परा में श्रीकृष्ण

मथुरा के राजा कंस के बन्दीगृह में देवकी की कोख से वसुदेव-पुत्र कृष्ण का जन्म हुआ। 'देवकी का पुत्र कंस को मारेगा' इस आकाशवाणी को

सुनकर कस उन दोनों को वन्दीगृह में डाल देता है। अर्द्ध-रात्रि को वि० पू० स० ३१२८ की भाद्रपद कृष्ण अष्टमी, वृषभनग्न, रोहिणी नक्षत्र, हर्षल योग में उनका जन्म हुआ। पुत्र की रक्षा हेतु मूललाधार वरमान में उफनती यमुना नदी को पार कर वसुदेव उन्हें गोकुल में नन्द के पाम ले जाते हैं। वहाँ से वे नन्द-सुता को लाते हैं, जिसे मार कर कम अपनी मन्वुष्टि करना है। इसमें पहिले भी वह इसी प्रकार देवकी के छह पुत्रों को मार चुका है किन्तु यह कन्या 'तुम्हारा शत्रु तो उत्पन्न हो गया है और गोकुल में वृद्धि पा रहा है' कहकर आकाश में उड़ जाती है।

इसके पश्चात् कृष्ण गोकुल में बढ़ते हैं। वहाँ वाल-लीलाओं से नन्द-भामिनि यशोदा और समस्त गोकुलवासियों को प्रसन्न करते हैं। कम उनके वध के लिए पूतना आदि राक्षसियों और वकासुर आदि राक्षसों को भेजता है किन्तु कृष्ण उन सबको यमलोक पहुँचा देते हैं। वे इन्द्रपूजा बन्द करके गोवर्द्धन पूजा प्रारम्भ करते हैं और इन्द्र के कोप—अतिवृष्टि में गोकुल-वासियों की रक्षा करते हैं। कालिया नाग का दमन करके यमुना के जल को निर्विष करते हैं। रासलीलाएँ रचाकर गोपियों को प्रमत्त करते हैं और १२ वर्ष की आयु में कस-वध करके अपने माना-पिता को वन्दीगृह में मुक्त करा देते हैं।

कस की मृत्यु के कारण जरासध मथुरा पर १८ वार आक्रमण करता है। मथुरा की प्रजा की विकलता के कारण वे पश्चिम की ओर द्वारिका को चले जाते हैं। रुक्मिणी में विवाह करते हैं और द्रौपदी के स्वयंवर में उनकी भेट पांडवों से हो जाती है। भीम के द्वारा जरासध वध करवाते हैं। दूत क्रीडा में पांडवों के पराजित होने पर द्रौपदी का चीर बढ़ाकर उसकी लाज वचाते हैं। वनवास की अवधि समाप्त होने पर शान्तिदूत बनकर कौरवों की सभा में जाते हैं। वहाँ से असफल होकर लौटते हैं तो महानारन युद्ध होता है और उन्हीं की नीति से पांडव विजयी होते हैं। इसके पश्चात् उपा-अनिरुद्ध विवाह आदि छोटी-मोटी अनेक घटनाएँ होती हैं। कृष्ण-सुदामा मिलन भी तभी होता है। अन्त में १२० वर्ष की आयु में वि० पू० ३००८ में उनका तिरोधान हो जाता है।

वैदिक परम्परा में उनके जीवन चरित्र का वर्णन करने वाले अनेक ग्रन्थ हैं—जिनमें श्रीमद्भागवत, महाभारत, वायुपुराण, अग्निपुराण, ब्रह्म-वैवर्तपुराण, मार्कण्डेयपुराण, नारदपुराण, वामनपुराण, कूर्मपुराण, गरुड-पुराण, ब्रह्माण्डपुराण, दैवी भागवत, हरिवंशपुराण आदि प्रमुख हैं।

इन्हीं पुराणों के अनुसार बाद के कवियों ने भी अपभ्रंश तथा अन्य देशज भाषाओं में श्रीकृष्ण का गुणगान किया। पश्चात्तवर्ती कवियों पर सर्वाधिक प्रभाव श्रीमद्भागवत और जयदेव के गीत-गोविन्द का पडा। चैतन्य महाप्रभु, विद्यापति, सूरदास, मीराबाई तथा अनेक भक्त कवि कृष्ण के लीला-विहारी और रसिक शिरोमणि रूप पर ही अधिक रीझे हैं। रसखान तथा अन्य मुसलमान कवियों ने भी उनके इसी रूप की उपासना की है।

मध्यकाल से यह धारा आधुनिक युग में अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' के 'प्रिय प्रवास' और सेठ गोविन्ददास के 'कर्तव्य' तक बह आई है।

यद्यपि वैदिक परम्परा और मनातन धर्म के अनुयायी कृष्ण के नाम का उल्लेख वेदों में बताते हैं किन्तु वे कृष्ण नाम के व्यक्ति और थे—देवकीपुत्र कृष्ण नहीं। कृष्ण नाम के उल्लेख इस प्रकार हैं—

(१) ऋग्वेद के अष्टम मण्डल के ७४वे मन्त्र के सृष्टा ऋषि कृष्ण हैं।^१

(२) ऋग्वेद के अष्टम मण्डल के ८५, ८६, ८७वे तथा दशम मण्डल के ४२, ४३, ४४वे मन्त्रों के सृष्टा भी ऋषि कृष्ण हैं।^२

(३) ऐतरेय आरण्यक में 'कृष्ण हरित' यह नाम आया है।^३

(४) कृष्ण नाम का एक असुर अपने दस हजार सैनिकों के साथ अशुमती (यमुना नदी) के तटवर्ती प्रदेश में रहता था। वृहस्पति की सहायता से इन्द्र ने उसे पराजित किया।^४

(५) इन्द्र ने कुण्डासुर की गर्भवती स्त्रियों का वध किया।^५

१ प्रमुदयाल मिश्र—त्रज का मास्कृतिक इतिहास, पृष्ठ १५-१६।

२ भाण्डारकर—वैष्णविज्म शैविज्म, पृष्ठ १५।

३ साख्यान ब्राह्मण, अ० ३०, प्रकाशक—आनन्दाश्रम, पूना।

४ ऐतरेय आरण्यक ३/२/६।

५ ऋग्वेद १/१०/११।

स्पष्टतः ये सभी कृष्ण देवकी-पुत्र कृष्ण नहीं हैं ।

वैदिक परम्परानुसार श्रीकृष्ण की कीर्ति का प्रमुख आधारस्मृत श्रीमद्भगवद्गीता है, जो उनके द्वारा उपदिष्ट है । इसी में उनका योगेश्वर रूप परिस्फुट हुआ ।

बीड़ साहित्य में श्रीकृष्ण

बीड़ परम्परा का कथा साहित्य जातको में वर्णित है । जातक खुदक-निकाय के अन्तर्गत परिगणित किए जाते हैं । जातक कथाओं में घटजातक में श्रीकृष्ण का चरित्र वर्णित है । इसकी संक्षिप्त कथा इस प्रकार है —

प्राचीन काल में उत्तरापथ के कमसौर राज्य के अन्तर्गत अमितजन नाम का नगर था । उनमें मकाकस नाम का राजा राज्य करता था । उसके दो पुत्र थे—कम और उपकम तथा एक पुत्री थी देवागम्भा । पुत्री के जन्म पर ज्योतिषियों ने भविष्यवाणी की कि 'इसके पुत्र के द्वारा कम के वंश का विनाश होगा ।' मकाकस पुत्री के प्रति मोह के कारण उसे मरवा न सका ।

मकाकस की मृत्यु के बाद कम राजा बना और उपकस युवराज । कम ने भी अपनी बहिन को मरवाया नहीं किन्तु पृथक राज-महल में उसे बन्दी बना दिया और पहरे पर नन्दगोपा तथा उसके पति अधकवेणु को रक्ष दिया । उसने बहिन का विवाह न करने का निश्चय किया और सोचा जब विवाह ही न होगा तो पुत्र कहाँ से आयेगा । यह व्यवस्था करके कम मन्तुष्ट हो गया ।

उसी समय उत्तर मथुरा में महासागर नाम का राजा राज्य करता था । उसके दो पुत्र थे—सागर और उपसागर । पिता की मृत्यु के बाद सागर राजा बना और उपसागर युवराज । उपसागर और उपकम सहपाठी थे । उपसागर ने अपने भाई के अन्त पुर में कोई दुराचरण किया अतः अग्रज सागर में भयभीत होकर वह उपकम के पास आ गया । कम-उपकम ने उसे आदरपूर्वक रखा ।

एक दिन उपसागर ने देवागम्भा को देख लिया । दोनों में प्रेम हो गया । नन्दगोपा की सहायता से वे मिलने लगे और देवागम्भा गर्भवती हो गई । रहस्योद्घाटन होने पर कम ने देवागम्भा में उसका विवाह इस शर्त पर कर

दिया कि वे उससे उत्पन्न पुत्र को मार देंगे । देवागम्भा ने पुत्री को जन्म दिया । उसका नाम अजनदेवी रखा गया । कस ने गोवड्ढमान गाँव उप-सागर को दे दिया और वह वहाँ अपनी पत्नी देवागम्भा और सेविका नदगोपा तथा सेवक अधकवेणु के साथ रहने लगा ।

सयोग से देवागम्भा और नदगोपा साथ ही गर्भवती होती । देवागम्भा के पुत्र होते और नदगोपा के पुत्रियाँ । देवागम्भा 'भाई पुत्र को मार डालेंगे' इस भय के कारण अपने पुत्र नन्दगोपा को दे देती और उसकी पुत्रियाँ स्वयं ले लेती । इस प्रकार उसके दस पुत्र हुए—(१) वासुदेव, (२) वलदेव, (३) चन्द्रदेव, (४) सूर्यदेव, (५) अग्निदेव, (६) वरुणदेव, (७) अर्जुन, (८) प्रद्युम्न, (९) घटपडित और (१०) अकुर । ये सभी अधकवेणु-दास-पुत्र कहलाए । बड़े होकर ये सभी लूट-मार करने लगे । जब कम ने अधकवेणु को बुलाया और उसको दण्ड देने का भय दिखाया तो उसने सारा भेद खोल दिया ।

अब कम ने उन दसों को बुलाया और अपने मल्ल मुष्टिक और चाणूर से मरवाने का प्रयास किया किन्तु वलदेव ने उन दोनों मल्लो को मार डाला और वासुदेव ने अपने चक्र से कम और उपकम को धराशायी कर दिया । इसके बाद वे जम्बूद्वीप विजय करने निकले । उन्होंने अयोध्या के राजा कालसेन को परास्त कर उसका राज्य हथिया लिया । द्वारवती के राजा को मार कर वहाँ अपना अधिकार कर लिया । इनके अतिरिक्त त्रेमठ हजार राजाओं का चक्र में गिरच्छेद करके उनके राज्यो को अपने अधीन कर लिया । फिर अपने राज्य को दस विभागों में विभाजित कर दिया । नौ भाइयों ने तो अपने भाग ले लिए किन्तु अकुर ने व्यापार करने की इच्छा प्रगट की । उसका भाग अजनदेवी को मिला ।

वासुदेव का प्रिय पुत्र मर गया तो उसके मताप-शोक को घट पडित ने खड़ी चतुराई से दूर किया ।

इन दस भाइयों की सतानों ने एक बार कृष्ण द्वीपायन का अपमान करने के लिए एक तरुण राजकुमार को गर्भवती स्त्री बनाकर पूछा—'इनके गर्म से क्या उत्पन्न होगा ?' कृष्ण द्वीपायन सब कुछ समझ गए । उन्होंने बताया—

‘एक लकड़ी का टुकड़ा होगा। उसमें वासुदेव के वंश का नाश हो जायगा।’ उपाय पूछने पर उन्होंने बताया—‘इस लकड़ी को जलाकर उसकी राख नदी में फेंक देना।’ किन्तु उसी राख से एरण्ड के पत्ते उत्पन्न हुए और उन्हीं पत्तों से परस्पर लड़कर सभी लोग मर गए। मुष्टिक मरकर यक्ष हुआ और बलदेव को खा गया। वामुदेव अपनी बहिन और पुत्रोहित को लेकर वन में निकल गया तो वहाँ जरा नाम के शिकारी ने भुवर के भ्रम में शक्ति के प्रयोग द्वारा उसका प्राणान्त कर दिया।

इतनी कथा सुनाने के बाद बृद्ध ने कहा—उस जन्म में सारिपुत्र वासुदेव था, आनन्द अमात्य रोहिणोव्य और स्वयं भी घट पडित।

घट जातक की इस कथा में जैन और वैदिक कृष्ण चरित्र में पर्याप्त अन्तर दिखाई पड़ता है। नामों में भी काफी अंतर है। जैसे—कस के पिता का नाम उग्रसेन न होकर मकाकस है। उसकी राजधानी भी मथुरा न होकर अमितजन नगर है। बहिन का नाम भी देवकी न होकर देवागम्भा है। देवागम्भा के पति का नाम भी वसुदेव न होकर उपमागर है। यशोदा का नाम तो नदगोपा है और नद का नाम अधकवेणु। इसमें कम और उपकस अत्याचारी नहीं दिखाए गए हैं वरन् देवकी के दसों पुत्र ही लुटेरे, निर्दयी और सर्वजन-संहारक थे। उन्होंने अपने मामाओं को मारकर उनका राज्य छीन लिया था। इसके अतिरिक्त जवूद्वीप के हजारों राजाओं का भी शिर चक्र से काट डाला था।^१

इन विभिन्नताओं के बावजूद भी नदगोपा और देवागम्भा का परस्पर पुत्र-पुत्रियों को बदल लेना, मुष्टिक और चाणूर से युद्ध, कम की मृत्यु, देवागम्भा पर पहरा बिठाकर उसे बन्दी-जैसा बना लेना, द्वारका विनाश, द्वीपायन का अपमान, जराकुमार के द्वारा वासुदेव की मृत्यु कुछ ऐसे मामूली हैं, जो इसे स्पष्ट कृष्ण-कथा प्रमाणित करते हैं।

१ विस्तृत रूप से यह कथा घट जातक में दी हुई है। इसके विस्तृत अध्ययन के लिए भद्रन्त आनन्द कौशल्यायन द्वारा अनुवादित जातक कथाओं के चतुर्थ खंड में म० ४५४ की ‘घट जातक’ कथा देखिए।

श्रीकृष्ण के जीवन-चरित्र को इस ढंग में वर्णित करने में समबत धार्मिक पूर्वाग्रह ही प्रमुख कारण रहा होगा ।

जैन परंपरा में श्रीकृष्ण

जैन साहित्य में श्रीकृष्ण पर विस्तृत जानकारी उपलब्ध होती है द्वाद-शांगी के अतर्गत अतकृत्तुदशांग (द्वारका का वैभव, गजसुकुमाल की कथा, द्वारका का विनाश और कृष्ण का देहत्याग), समवायाग (कृष्ण और जरासन्ध का वर्णन), पायाधम्मकहाओ (थावच्चापुत्र की दीक्षा, अमरकका जाकर द्रौपदी को लाने का वर्णन), स्थानाग (कृष्ण की आठ अग्रमहिषियों के नाम और उनका वर्णन), प्रश्नव्याकरण (श्रीकृष्ण द्वारा अपनी दो अग्रमहिषियों—रुक्मिणी और पद्मावती को लाने के लिए हुए युद्धों का वर्णन), आदि में उल्लेख मिलता है ।

आगमेतर साहित्य में श्रीकृष्ण वर्णन क्रमवद्ध रूप से प्राप्त होता है । उनमें से प्रमुख ग्रन्थ निम्न है—

(१) वसुदेव हिंडी —यह जैन वाङ्मय का सर्वाधिक प्राचीन कथा ग्रन्थ माना जाता है । इसके रचयिता सघदास गणी हैं । इसमें कृष्ण की अपेक्षा उनके पिता वसुदेव का चरित्र अधिक विस्तार व सरसता के साथ वर्णित किया गया है । पीठिका में कृष्ण-पुत्र प्रद्युम्न, शाव की कथा और कृष्ण की अग्रमहिषियों और वलदेव का चित्रण है । देवकी लम्भक में कृष्ण-जन्म आदि का वर्णन है । कौरव पांडवों का भी संक्षिप्त वर्णन है ।

(२) चउप्पन महापुरिस चरिय—यह आचार्य शीलाक की कृति है । इसके ४६, ५०, ५१वें अध्याय में कृष्ण-वलदेव का जीवन चरित्र है ।

(३) नेमिनाह चरित —यह आचार्य हरिमद्र सूरि द्वितीय की रचना है । इसमें भी कृष्ण का जीवन-चरित्र वर्णित हुआ है ।

(४) भव-भावना—इसकी रचना मलधारी आचार्य हेमचन्द्रसूरि ने सन् ११७० ई० में की है । इसमें कम वृत्तान्त, वसुदेव-देवकी विवाह, कृष्ण-जन्म, कंस-वध आदि विविध प्रसंगों का वर्णन है ।

(५) कण्ह चरित—यह देवेन्द्र सूरि की रचना है । इसमें वसुदेव और कृष्ण का विस्तृत जीवन चरित्र है ।

इनके अतिरिक्त प्राकृत भाषा में उपदेशमाला प्रकरण, कुमारपाल पडिवोह (कुमारपाल प्रतिवोध) आदि में भी श्रीकृष्ण का चरित्र वर्णित हुआ है।

प्राकृत के अतिरिक्त संस्कृत, अपभ्रंश और देशज भाषाओं में जैनाचार्यों एवं लेखकों (दिगम्बर और श्वेतावर दोनों) ने ही कृष्ण चरित्र से संबंधित रचनाएँ की हैं। इनमें से प्रमुख निम्न हैं—

(१) हरिवंश पुराण—यह दिगम्बर आचार्य जिनमेन की रचना है। इसमें श्रीकृष्ण का वर्णन विस्तारपूर्वक है।

(२) उत्तर पुराण—यह भी दिगम्बर आचार्य गुणभद्र की रचना है। इसके ७१, ७२, ७३वें पर्व में कृष्ण-कथा वर्णित की गई है।

(३) प्रद्युम्न चरित—महासेनाचार्य ने इसमें कृष्ण के पुत्र प्रद्युम्न के पराक्रम का वर्णन किया है।

(४) पाण्डव-पुराण—यह भट्टारक शुभचन्द्र की कृति है।

(५) त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र—यह कलिकाल सर्वज्ञ आचार्य हेमचन्द्र की महत्वपूर्ण कृति है। इसके आठवें पर्व में कृष्ण चरित्र विस्तृत रूप से क्रम-वद्ध आया है।

इनके अतिरिक्त भट्टारक सकलकीर्ति का 'हरिवंश पुराण' और 'प्रद्युम्न चरित्र', भट्टारक श्रीभूषण का 'पाण्डव पुराण', 'हरिवंशपुराण', महाकवि वाग्भट्ट का 'नेमि निर्वाण', ब्रह्मचारी नेमिदत्त का 'नेमिनाथ पुराण', भट्टारक धर्मकीर्ति का 'हरिवंश पुराण' आदि दिगम्बर आचार्यों की महत्वपूर्ण रचनाएँ हैं।

श्वेताम्बर आचार्यों में वाग्भट्ट का 'नेमि निर्वाण काव्य', रत्नप्रभ सूरि का 'अरिष्टनेमि चरित्र', विजयसेन सूरि का 'नेमिनाथ चरित्र', कीर्तिराज का 'नेमिनाथ चरित्र' (महाकाव्य), विजयगणी का 'अरिष्टनेमि चरित्र', गुण-विजयगणी का 'नेमिनाथ चरित्र', वज्रसेन के शिष्य हरि का 'नेमिनाथ चरित्र', तिलकाचार्य का 'नेमिनाथ चरित्र' आदि अनेक ग्रन्थ हैं जिनमें कृष्ण का जीवन चरित्र वर्णित है।

धनजय का द्विसप्तान अथवा 'राघव पाण्डवीय महाकाव्य' एक विशिष्ट रचना है जिसमें प्रत्येक पद्य के दो अर्थ निकलते हैं—एक रामायण (राम)

सबधी और दूनरा कृष्ण से मवधित । इसी प्रकार की रचना द्रोणाचार्य के गिप्य सूरुाचार्यकृत 'नेमिनाथ चरित्र' भी है ।

इनके अतिरिक्त और भी अनेक ग्रन्थो के नाम गिनाए जा सकते हैं ।

देशज भाषाओ मे भी डमी प्रकार ग्रन्थ रचना होती रही ।

आधुनिक युग की शोध प्रधान रचनाओ मे—पंडित सुखलालजी का 'चार तीर्थकर', अगरचन्द्र नाहटा का 'प्राचीन जैन ग्रन्थो मे श्रीकृष्ण', श्रीचन्द्र रामपुरिया का 'अर्हत अरिष्टनेमि और वामुदेव श्रीकृष्ण,' देवेन्द्र मुनि जास्त्री का 'भगवान अरिष्टनेमि और कर्मयोगी श्रीकृष्ण,' महावीर कोटिया का जैन कृष्ण माहित्य मे श्रीकृष्ण' तथा प्रो० हीरालाल रसिकदास कापडिया का 'श्रीकृष्ण अने जैन माहित्य' आदि उल्लेखनीय हैं ।

उक्त वर्णन से यह स्पष्ट होता है कि श्रीकृष्ण मवधी जैन साहित्य यदि वैदिक माहित्य की तुलना मे अधिक नही है तो कम भी नही है ।

जैन और वैदिक परपरा के कृष्ण चरित्र की तुलना

माम्य होते हुए भी जैन और वैदिक परपराओ के कृष्ण चरित्र की घटनाओ मे कुछ अन्तर है ।

(१) वैदिक परपरा के अनुसार श्रीकृष्ण जरासध को स्वय नही मारते वरन् भीम द्वारा मल्लयुद्ध मे उसकी मृत्यु कराते है । कारण यह बताया गया है कि उसने अनेक राजाओ को बलि देने के लिए बन्दी बना रखा था । जबकि जैन परपरा मे जरासध ही स्वय युद्ध करने आता है और युद्ध मे इसका अत कृष्ण स्वय अपने चक्र से करते है ।

(२) शिशुपाल बध कृष्ण द्वारा युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ मे होता है जबकि जैन परपरा मे वह जरासध का सहयोगी बनकर युद्ध करता है और रणक्षेत्र मे ही वह धराशायी हो जाता है ।

(३) वैदिक परपरा कौरव-पांडव युद्ध—महाभारत का युद्ध-स्वतंत्र युद्ध मानती है जिसके नायक एक ओर दुर्योधन आदि कौरव थे और दूसरी ओर युधिष्ठिर आदि पांडव । कृष्ण इममे पांडवो की ओर वे नीति निर्धारक रहते हैं, वे स्वय प्रत्यक्ष रूप से कोई भाग नही लेते । केवल अर्जुन का रथ सचालन करते हैं । यही अर्जुन का मोह नाश करने के लिए गीता का उपदेश देते हैं

और अपना विराट रूप दिवाकर तथा उनमें औरवो आदि को मरा दिखा कर युद्ध के लिए अर्जुन को प्रेरित करते हैं। जैन परंपरा में महाभारत युद्ध के अतिरिक्त जरामध-कृष्ण युद्ध में भी पांडव कृष्ण की ओर में जरासंध के विरुद्ध युद्ध में सम्मिलित होते हैं। महाभारत युद्ध का कारण है—दुर्योधन का अत्यधिक मान और पांडवों को सुई की नोक के बराबर भी भूमि न देना लेकिन जगमध ने कृष्ण को नष्ट करने के लिए ही आक्रमण किया था।

(५) वैदिक परंपरानुमोदित महाभारत युद्ध में कृष्ण का ऐसा रूप आता है जिसे नम्य माया में चतुराई या राजनीति कहा जाता है और असम्य माया में छल-प्रपञ्च। वे पितामह भीष्म, गुरु द्रोणाचार्य, दानवीर कर्ण आदि सभी महारथियों का छलपूर्वक नाश कराते हैं, जबकि जैन परंपरा में कृष्ण का नीतिनिपुण तो बताया है किन्तु उन्होंने कभी भी छल नहीं किया। सदैव अपने साहस और पराक्रम से ही विरोधी का पराभव किया।

(५) महाभारत में दुर्योधन को पापी और अत्याचारी दिखाया गया है। वह द्यूत क्रीडा में विजय प्राप्त करके द्रौपदी को सारी सभा में निर्वस्त्र करना चाहता है और कृष्ण उसकी साड़ी असीमित रूप से लम्बी करके उनकी लाज बचाते हैं।

जबकि जैन परंपरा में दुर्योधन का ऐसा रूप नहीं है। वह द्यूत क्रीडा में पांडवों का राज्य तो जीत लेता है और द्रौपदी को निर्वस्त्र करने का प्रयत्न भी करता है। लेकिन चीर बढ़ाने का अद्भुत कार्य श्रीकृष्ण द्वारा नहीं कराया गया है।

(६) वैदिक परंपरा में पांडव भी स्वतन्त्र राजा हैं और कृष्ण भी। उनमें केवल मैत्री और पारिवारिक संबंध हैं। जैन परंपरा में पारिवारिक सम्बन्धों के साथ-साथ पांडवों को कृष्ण के अधीन दिखाया गया है। उन्हीं की आज्ञा में वे हस्तिनापुर के राज्य को त्याग कर दक्षिण समुद्रतट पर पांडु मथुरा नगरी बना कर उनमें निवास करते हैं।

(७) वैदिक परंपरानुसार कृष्ण, विष्णु के सम्पूर्ण सोलह कला सम्पन्न अवतार, त्रिलोकीनाथ हैं, जबकि जैन परंपरानुसार वे समस्त दक्षिण भरतार्द्ध के स्वामी त्रिखण्डेश्वर हैं।

इनके अतिरिक्त कुछ अन्य ऐसी घटनाएँ हैं जिनका जैन परम्परा में उल्लेख नहीं है। उदाहरण स्वरूप—इन्द्र की पूजा बन्द करवाना गोवर्द्धन पर्वत को अगुली पर उठाना, सुदामा-कृष्ण मिलन, गाधारी के शाप से यदुव्रत का विनाश आदि।

कुछ घटनाएँ ऐसी भी हैं जो वैदिक परम्परा में प्राप्त नहीं होती। उदाहरणस्वरूप—घातकीखण्ड की अमरकनागरी के राजा पद्म द्वारा द्रौपदी का हरण और कृष्ण का उसे वापिस लाना, बलभद्र की तपस्या और स्वर्ग गमन आदि।

श्रीकृष्ण के चरित्र में सम्बन्धित कुछ घटनाएँ ऐसी हैं जो जैन और वैदिक दोनों परम्पराओं में मिलती हैं, किन्तु उनका रूप भिन्न है। इनमें से प्रमुख घटना है—उपा-अनिरुद्ध के विवाह के समय श्रीकृष्ण-बाणासुर युद्ध। बाणासुर की ओर में स्वयं शकरजी (महादेव) युद्ध में प्रवृत्त होते हैं और कृष्ण उनका पराभव कर देते हैं, जबकि जैन परम्परा में शकर नाम का एक साधारण देव बताया गया है और वह भी बाणासुर को इतना ही वरदान देता है कि 'स्त्री-सम्बन्धी युद्ध के अतिरिक्त तुम सभी प्रकार के युद्धों में अजेय हों।' इस प्रकार जैन ग्रन्थों में महादेव के गौरव की पूर्ण रक्षा की गई है।

जैन और वैदिक ग्रन्थों में सर्वप्रमुख अन्तर श्रीकृष्ण की आयु के सम्बन्ध में है। वैदिक ग्रन्थों में उनकी आयु १२० वर्ष की मानी गई है जबकि जैन ग्रन्थों में एक हजार वर्ष की। वैदिक ग्रन्थों में उनका तिथिवार विवरण मिलता है। जीवन की प्रमुख घटनाओं का वर्ष निश्चित है^१ जबकि जैन परंपरा में ऐसी बात नहीं है।

१ श्री चिन्तामणि वैद्य की मराठी पुस्तक 'श्रीकृष्ण चरित्र' में वैदिक परम्परानुमोदित श्रीकृष्ण के जीवन की प्रमुख घटनाओं के वर्ष निम्नानुसार हैं—

(१) मथुरा में जन्म और गोकुल को प्रस्थान—विक्रम पूर्व म० ३१२८,

माद्रपद कृष्णा अष्टमी, वृषभ लग्न, रोहिणी नक्षत्र, अर्द्धरात्रि।

(२) गोकुल से वृन्दावन को प्रस्थान—आयु ४ वर्ष, स० ३१२४ वि० पू०

(३) कालियानाग का दमन—आयु ८ वर्ष, स० ३१२० वि० पू०।

तुलना का आशय

इस तुलना का आशय मतभेद बटाना न होकर कृष्ण चरित्र के सम्बन्ध में विशद् अध्ययन करना है। इसका उद्देश्य उनके उन क्रिया-कलापो, महान्ताओं और विशिष्टताओं को प्रकाश में लाना है जो वैदिक परम्परा के लेखकों की दृष्टि से ओझल रह गई थी। वस्तुस्थिति यह भी है कि किसी

-
- (४) गोवर्द्धन धारण—आयु १० वर्ष, स० ३११८ वि० पू० ।
 - (५) राम-लीला—आयु ११ वर्ष, स० ३११७ वि० पू० ।
 - (६) वृन्दावन में मथुरा प्रस्थान और कन वध—आयु १२ वर्ष, स० ३११६ वि० पू० फाल्गुन शुक्ला १४ ।
 - (७) मथुरा में यज्ञोपवीत और सादीपनि के गुरुकुल को प्रस्थान—आयु १२ वर्ष, स० ३११६ वि० पूर्व ।
 - (८) जरासन्ध का मथुरा पर प्रथम आक्रमण—आयु १३ वर्ष, स० ३११५ वि० ५० ।
 - (९) मथुरा का जीवन और जरासन्ध के १७ आक्रमण—आयु १३ से ३० वर्ष, स० ३११५ से ३०६८ वि० पू० ।
 - (१०) द्वारिका-प्रस्थान और रुक्मिणी विवाह—आयु ३१ वर्ष, स० ३०६७ वि० पू० ।
 - (११) द्रौपदी स्वयंवर और पाण्डवों में मिलन—आयु ४३ वर्ष, स० ३०८५ वि० पू० ।
 - (१२) अर्जुन-सुभद्रा विवाह—आयु ६५ वर्ष, स० ३०६३ वि० पू० ।
 - (१३) अभिमन्यु-जन्म—आयु ६७ वर्ष, स० ३०६१ वि० पू० ।
 - (१४) युधिष्ठिर का राजसूय यज्ञ—आयु ६८ वर्ष, स० ३०६० वि० पू० ।
 - (१५) महाभारत का युद्ध—आयु ८३ वर्ष, स० ३०४५ वि० पू० मार्ग-शीर्ष शुक्ला १४ ।
 - (१६) कलियुग का प्रारम्भ और परीक्षित का जन्म—आयु ८४ वर्ष, स० ३०४४ वि० पू० चैत्र शुक्ला १ ।
 - (१७) श्रीकृष्ण का तिरोधान और द्वारिका का अन्त—आयु १२० वर्ष, स० ३००८ वि० पू० ।

भी महापुरुष के जीवन की ममस्त घटनाओं का आकलन-सकलन एक लेखक अथवा एक परंपरा के लिए सम्भव भी नहीं हो पाता। इसका कारण मानव की स्वयं की ज्ञान चिन्तन की सीमाएँ भी हैं, उसकी स्वयं की दृष्टि भी है और परंपरा का बन्धन भी है। वैदिक परंपरा में वे विष्णु के पूर्ण अवतार होते हुए भी अनेक ऐसे कार्य करते हैं जिन्हें सामाजिक दृष्टि से बालसुलभ चंचलता ही कहा जा सकता है। उदाहरणस्वरूप—यमुना में स्नान करती हुई स्त्रियों के चीर हरण कर लेना, दूध-दही-मक्खन चुराकर खा जाना। इस प्रकार की घटनाओं के चित्रण में पश्चात्पूर्व कवियों की स्वयं की रसिक वृत्ति ही अधिक प्रगट हुई है। एक रीतिकालीन कवि ने लिखा है—

आगे के सुकुवि रीझिहैं तो कविताई,

नहिं तो राधा हरि सुमिग्न को वहानो हे।

और यह वहाना इतना अधिक बढ़ा कि कृष्ण एक मामान्य नटवर नन्द-किशोर ही बन कर गए। उनका गौरवमयी रूप विद्वानों और उच्च कोटि के ग्रन्थों तक ही सीमित रह गया।

जैन लेखकों ने उनके गौरव की आद्योपान्त रक्षा की है।

श्रीराम और श्रीकृष्ण की तुलना

यहाँ यह अप्रामाणिक न होगा कि श्रीराम ने श्रीकृष्ण की तुलना की जाय। दोनों ही महापुरुष मानव जाति की महान विभूति हैं। दोनों ही भारतीय मस्कृति के आधार-स्तम्भ और जन-जन के कण्ठहार हैं। दोनों ने ही अन्याय और अत्याचार के विरुद्ध मधर्ष किया और धर्म की—न्याय की स्थापना की। श्रीराम ने लकापति रावण का समूल विनाश करके पर-स्त्री हरण की लोकनिन्द्य परंपरा का नाश किया तो कृष्ण ने काम का बध करके निरपराध देवकी-वसुदेव को वन्दीगृह में रखने और उनके छह पुत्रों की अकारण हत्या का विरोध किया और एक निरकुण आततायी शासक को ममाप्त कर प्रजा की रक्षा की।

किन्तु इन दोनों की परिस्थितियों में भिन्नता थी। राम राजपुत्र थे, उनका जन्म राजमहल में हुआ और वन-वास में पहले उन्हें किसी प्रकार का

कष्ट नहीं था जबकि कृष्ण का जन्म वन्दीगृह में हुआ। उत्पन्न होते ही माता-पिता से विछुड़ गए और नन्द के घर उसका लालन-पालन हुआ।

श्रीकृष्ण ने शिशुवय में ही अलौकिक कार्य करने प्रारम्भ कर दिये—पूतना वध, वकासुर वध, आदि जबकि राम सोलह वर्ष की आयु के पश्चात् ही अपने पराक्रम का परिचय देते हैं।

दोनों ही महापुरुषों को अपना मूल स्थान छोड़ना पड़ता है। राम को कैकेई के कारण और कृष्ण को जरासंध के कारण।

कस को मारने के समय कृष्ण भी निहत्थे थे केवल उनका अदम्य साहम और पराक्रम ही उनका साथी था और राम ने भी जिस समय सीता का हरण करने वाले का नाश करने की प्रतिज्ञा की उस समय वे भी केवल दो ही भाई थे और वह भी साधनहीन।

दोनों ही महापुरुषों ने अधर्म से युद्ध किया और नीति, न्याय एवं सदाचार की स्थापना की।

इतना होते हुए भी राम और कृष्ण के चरित्र में कुछ भिन्नताएँ हैं। राम मर्यादाओं के पालक रहे और कृष्ण ने लोक परंपराओं की चिन्ता नहीं की। मीता-परित्याग राम के जीवन में मर्यादा पालन करने की भावना को अनूठे ढंग से प्रदर्शित करता है। जबकि कृष्ण ने इस बात की चिन्ता नहीं की। उन्होंने इन्द्रपूजा बन्द कराके अन्धविश्वास को मिटाया। इसी कारण एक बार 'कल्याण' के सम्पादक श्री जयदयालजी गोयन्दका ने राम को 'लोकरजनकारी' और कृष्ण को 'लोकमगलकारी' लिखा था। यही बात सेंट गोविन्ददास ने अपने 'कर्तव्य' नाटक में लिखी है। वहाँ कृष्ण के मुख से स्पष्ट कड़वावाया है कि—'मैंने जन्म ही सड़ी-गली परंपराओं और मर्यादाओं के भजन के लिए लिया है।' इनका यह मर्यादा-भ्रंशक रूप ही उनकी आलोचनाओं का कारण बना और राम का मर्यादा-पालन ही उन्हें मर्यादा पुरुषोत्तम के रूप में प्रतिष्ठित कर गया। फिर भी वन्दीगृह में उत्पन्न होकर त्रिखण्डेश्वर के रूप में प्रतिष्ठित होना श्रीकृष्ण के अदम्य माहम, पराक्रम और नीतिनिपुणता की ही कहानी है।

जैन-कृष्ण-कथा की विशेषताएँ

जैन कृष्ण-कथा की कुछ ऐसी विशेषताएँ हैं जो वैदिक परम्परा के कृष्ण-

चरित्र में नहीं मिलती। इनमें से प्रमुख विशेषता है—कृष्ण के पिता वसुदेव का जीवन-चरित्र। वास्तव में वैदिक लेखक कृष्ण की यशोगाथा में इतने लवलीन हो गए कि उन्होंने वसुदेव की ओर ध्यान ही नहीं दिया। जिस व्यक्ति की आँखों के सामने ही उसके छह नवजात शिशुओं की क्रूरतापूर्ण हत्या कर दी जाय—उसके दुःख, पीड़ा और अन्तर्द्वन्द्व का चित्रण भी वैदिक परंपरा में नहीं किया गया। वहाँ वसुदेव बिलकुल ही शक्तिहीन, असहाय और निरीह प्राणी हैं, जो कस की ओर टुकुर-टुकुर देखते रहते हैं, उससे कुछ कह भी नहीं पाते।

यह विवशता जैन ग्रंथों में भी है किन्तु उसका कारण है—उनकी वचन-बद्धता। वैसे वे अप्रतिम वीर थे। जैन परंपरा में उनकी वीरता और पराक्रम की यथेष्ट चर्चा है। वे अकेले ही अनेक राजाओं का पराभव करते हैं। उनकी पुत्रियों से विवाह करते हैं और बड़ी ऋद्धि-समृद्धि प्राप्त करते हैं। अनेक बार उन्होंने जरासन्ध को भी छकाया और अनेक युद्धों में विजय प्राप्त की।

कृष्ण-चरित्र की प्रेरणाएँ

कर्मयोगी श्रीकृष्ण का चरित्र पग-पग पर प्रेरणाओं से भरा पड़ा है। क्या वैदिक और क्या जैन दोनों ही परंपराओं में उनके क्रियाकलाप जन-जन के लिए प्रेरणादायी हैं।

वैदिक परम्परानुसार गीता उनका उपदिष्ट ग्रन्थ है। उसमें उन्होंने निष्काम कर्मयोग की स्थापना कर भाग्यवाद का निरसन किया और आलस्य एवं अकर्मण्यता को दूर किया। इन्द्र-पूजा वन्द करवाकर मानवों के अन्ध-विश्वास को समाप्त करने का प्रयास किया।

जैन ग्रन्थों में श्रीकृष्ण का चरित्र बहुत ही उदात्त दिखाया गया है। वे सदाचारी, मत्यवक्ता, अतिबली और सेवाभावी हैं। परोपकारी ऐसे कि एक वृद्ध की ईंटे स्वयं पहुँचाते हैं। साहस का उदाहरण कसबध और अमरकका नगरी में देखा जा सकता है, जहाँ ये अकेले ही जाकर सघर्ष करते हैं और विजय प्राप्त करते हैं। कष्ट सहिष्णुता के दर्शन जराकुमार का वाण लगने पर होते हैं। अपने कष्ट और पीड़ा की चिन्ता न करते हुए उसे प्राण बचाने की प्रेरणा देते हैं। गुणग्राहकता के सबध में देव भी परीक्षा लेकर सतुष्ट होता है। पिशाच-युद्ध में उनकी शांति-तितिक्षा देखने योग्य है। द्वारकादाह

के अवसर पर अपने प्राणों की चिन्ता न करके माता-पिता की वचनानुसार प्रयत्नशील होते हैं। यह उनकी मातृ-पितृ-भक्ति का परिचायक है। उनका व्यवहार यशोदा के साथ भी माता का सा ही रहा। बलभद्र ने यह जान लेने पर भी कि 'यशोदा उनकी दासी है' उनकी भावना में कोई अन्तर नहीं आया। उन्होंने बलभद्र से यह वचन ले ही लिया कि आगे वे कभी यशोदा को दानी नहीं कहेंगे। इसी प्रकार उन्होंने अज्ञात कुलशील वाले वीरक को अपनी पुत्री केतुमजरी व्याह दी। उन्होंने अपने जीवनकाल में अनेक लोगों को भयम पालन की प्रेरणा दी। केतुमजरी को प्रतिबोध इसी भावना में दिया। उनका साहस अदम्य था तो क्षमा अद्भुत। अपने अपकारी प्राणघाती को भी क्षमा कर देते हैं। पांडवों से क्षमा याचना कर लेते हैं। जैन कृष्णचरित्र में ऐसा एक भी प्रसंग नहीं है कि उन्होंने कभी अमृत्य भक्षण किया हो अथवा छल-प्रपञ्च का सहारा लिया हो, वे सदैव सत्यवादी और न्यायप्रिय रहे। न्याय-निष्ठा के कारण ही उन्होंने अपने पुत्र शिवकुमार को द्वारका से बाहर निकाल दिया।

इस प्रकार श्रीकृष्ण के चरित्र में अनेक उदात्त गुण, नीतिनिष्ठा और लोकनायक की गरिमा विद्यमान है।

संक्षेप में श्रीकृष्ण का सम्पूर्ण जीवन कष्टों और नघर्षों में जूझने की अविस्मरणीय कथा है। उदात्त गुणों से आप्लावित उनका जीवन-चरित्र एक ऐसा प्रकाशपुञ्ज है, जो मानव को निरंतर गतिशील रहने को प्रेरित करता है। सफलता की एक ऐसी कहानी है, जो युगयुगों तक जन-जन को पुरुषार्थ और निष्काम कर्मपथ पर अग्रसर करती रहेगी।

प्रस्तुत पुस्तक का ध्येय यही है कि पाठक को जैन-ग्रन्थों में वर्णित कृष्ण-चरित्र का ज्ञान हो जाय और साथ ही उसे वैदिक ग्रन्थों में उल्लिखित कृष्ण-चरित्र की भी भाँकी मिल जाय। पाठक उनके उज्ज्वल गुणों को अपने जीवन में अपनाने को प्रयत्नशील हो। ग्रन्थगत एवं परम्परागत भेदों को भुलाकर जीवन में अमेद (एकरूपता) का आचरण करें—यही इन लेखन संपादन का ध्येय है।

—श्रीचन्द सुराना 'सरस'

—वज्र मोहन 'जैन'

अनुक्रम

भाग ३१ [वसुदेव चरित]

१ वसुदेव का पूर्वभव	१
२ तापस का बदला	६
३ कस का पराक्रम	१४
४ वसुदेव का निष्क्रमण	२३
५ वसुदेव का वीणावादन	२८
६ नवकार मंत्र का दिव्य प्रभाव	३७
७ वसुदेव के अन्य विवाह	४८
८ अनेक विवाह	५५
९ पूर्वजन्म का स्नेह	६१
१० स्पर्श का प्रभाव	६६
११ एक कोटि द्रव्य दान का विचित्र परिणाम	७१
१२ देवी का वचन	७८
१३ माता का न्याय	८६
१४ कुवेर से भेट	९२
१५ वसुदेव कनकवती विवाह	९८
१६ लौट के वसुदेव घर आये	१०४

भाग ३२ [द्वारका का वैभव]

१ वलभद्र का जन्म	११७
२ कस का छल	१२३
३ वासुदेव श्रीकृष्ण का जन्म	१३१
४ छोटी उम्र वडे काम	१३८
५ बालक्रीडा मे परोपकार	१४७

६ मातृभक्ति	१५३
७ कसवध	१६२
८ द्वारका-निर्माण	१७०
९ रुक्मिणी-परिणय	१७६
१० अन्य पटरानियाँ	१८८
११ प्रद्युम्नकुमार का जन्म और अपहरण	१९३
१२ प्रद्युम्न के पूर्वभव	२००
१३ सोलह मास का फल—सोलह वर्ष	२१०
१४ द्रौपदी स्वयवर	२१६
१५ प्रद्युम्न का द्वारका आगमन	२२४

भाग ३३ [यदुवन के फूल]

१ शाम्ब का जन्म	२४३
२ वैदर्भी-परिणय	२४७
३ शाम्ब का विवाह	२५३
४ जरासघ युद्ध	२५६
५ नारद की करतूत	२६८
६ वाणामुर का अन्त	२७२
७ अरिष्टनेमि की प्रव्रज्या	२७६
८ द्रौपदी का अपहरण	२८३
९ धातकीखण्ड-गमन	२८६
१० गजमुकुमाल	३००
११ चमत्कारी भेरी	३११
१२ कुछ प्रेरक प्रसंग	३१५
१३ द्वारका-दाह	३२७
१४ वामुदेव-बलभद्र का अवसान	३३५

इसी जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र की मथुरा नगरी पर राजा वसु^१ के पुत्र बृहद्वज^२ के पञ्चात उसके वंश के अनेक राजाओं ने राज्य किया ।

बहुत समय बाद उसी वंश में यदु नाम का प्रतापी राजा हुआ । यदु के सूर्य के समान एक तेजस्वी पुत्र हुआ शूर और शूर राजा के शौरि और सुवीर नाम के दो पुत्र हुए । राजा शूर ने शौरि को राज्य पद और सुवीर को युवराज पद देकर दीक्षा ग्रहण कर ली ।

शौरि ने मथुरा का राज्य तो अनुज सुवीर को दिया और स्वयं कुशार्त देश चला गया । वहाँ उसने शौर्यपुर नाम की एक नई नगरी बसाई ।

राजा शौरि के पुत्र का नाम था अधकवृष्णि और सुवीर का पुत्र था भोजवृष्णि । सुवीर ने भी अपने पुत्र भोजवृष्णि को मथुरा का राज्य दिया और स्वयं सिंधुदेश में जाकर सौवीरपुर नामक एक नई नगरी बसा कर रहने लगा । राजा शौरि अपने पुत्र अधकवृष्णि को राज्य देकर सुप्रतिष्ठ मुनि के पास प्रव्रजित हुआ और तप करके मोक्ष गया ।

१ यह वसु प्रसिद्ध शुक्तिमती नगरी का स्वामी था । इसी ने हिंसक यज्ञों के बारे में पर्वत-नारद विवाद में पर्वत का पक्ष लिया था । असत्य कथन के कारण देवताओं ने इसकी स्फटिक आमन वेदिका चूर्ण कर दी और यह पृथ्वी पर गिर कर मृत्यु को प्राप्त हुआ ।

२ बृहद्वज राजा वसु का दसवाँ पुत्र था । यह पिता और अपने आठ बड़े भाइयों की मृत्यु से भयभीत होकर मथुरा भाग आया था ।

मथुरा नरेश भोजवृष्णि के उग्रसेन नाम का एक पराक्रमी पुत्र हुआ ।

शौर्यपुर अधिपति अधकवृष्णि की रानी सुभद्रा से दश पुत्र हुए—समुद्रविजय, अक्षोभ्य, स्तिमित, सागर, हिमवान, अचल, धरण, पूरण, अभिचन्द्र और वसुदेव । ये दशो दशार्ह कहलाते थे । कुन्ती और मद्री दो पुत्रियाँ भी हुई । कुन्ती का विवाह हुआ राजा पांडु से और मद्री का राजा दमघोष के साथ ।

एक बार राजा अधकवृष्णि ने अवधिज्ञानी मुनि सुप्रतिष्ठ से पूछा—

—प्रभो ! वसुदेव नाम का मेरा दशवाँ पुत्र अति पराक्रमी और रूप सौभाग्य वाला है । उसका क्या कारण है ?

—यह उसके पूर्व जन्म के शुभ कर्मों का फल है, राजन् !—मुनि श्री ने सक्षिप्त-सा उत्तर दिया ।

किन्तु इस सक्षिप्त उत्तर से अधकवृष्णि की तृप्ति कहाँ होने वाली थी ? उसने अजलि बाँधकर पुनः विनती की—

—वह कौन सा शुभ कर्म है, जो उसने किया ? जानने की जिज्ञासा है ।

मुनिश्री ने देखा कि राजा आसन्न (निकट) भव्य है । इसे वसुदेव का पूर्वभव सुनाना व्यर्थ नहीं जायेगा, वरन् इसके वैराग्य का निमित्त ही बनेगा । यह दीक्षा ग्रहण कर अपना आत्म-कल्याण करेगा । उन्होंने राजा को सवोधित करके कहना प्रारभ किया—

मगध देश के नदिग्राम में एक निर्धन ब्राह्मण रहता था । उसकी स्त्री का नाम था सोमिला और पुत्र का नाम नदिपेण । नदिपेण के दुर्भाग्य से उसके माता-पिता बाल्यावस्था में ही मर गये । नदिपेण स्वयं ही कुरूप था । उसके बड़े-बड़े दाँत, बाहर निकला हुआ उदर, चपटी नाक, भोड़े नेत्र कुरूपता के साक्षात् साक्षी थे । उसकी इस बदसूरती के कारण उसके स्वजनो ने भी उसे त्याग दिया ।

नदिपेण को शरण प्राप्त हुई अपने मामा के घर । मामा के यहाँ विवाह-वय की सात कन्याएँ थी । मामा ने उसे आश्वसन दिया—‘मैं अपनी एक कन्या के साथ तुम्हारा विवाह कर दूँगा ।’

विवाह के लोभ में नन्दिषेण मामा के घर का सभी कार्य करने लगा । पिता की इच्छा उन कन्याओं को भी ज्ञात हुई तो पहली ने कहा —
—यदि पिताजी ने मुझे उस कुरूप से व्याह दिया तो मैं अवश्य ही मर जाऊँगी ।

दूसरी ने कहा—उससे लग्न हो इसमें तो मर जाना ही अच्छा है ।

—उसके साथ गैय्या पर लेटने से अच्छा है जीवित ही चिता पर नेट जाना । —तीसरी का विचार था ।

चौथी उससे भी आगे बढ़कर बोली—तुम सोने की बात कर रही हो । उसके हाथों में हाथ देने के बजाय मैं तो यमराज के ही हाथों में हाथ दे दूँगी ।

पाँचवी ने अपने मनाभाव व्यक्त किये—मुझे तो वह फूटी आँख भी नहीं सुहाता । देखते ही मितली आने लगती है ।

छठी क्यों पीछे रहती ? उसने भी कह दिया—सूरत देखना तो दूर मैं तो नाम से भी घृणा करती हूँ उस बदशक्ल से । न जाने पिताजी ने क्यों उसे रख छोड़ा है ?

—रख क्यों छोड़ा है ? यह भी कोई कहने की बात है । गधे की तरह रात-दिन घर के काम में जुटा रहता है, वस ! —सातवी ने भी अपनी घृणा व्यक्त कर दी ।

सातों कन्याओं के ऐसे विचार नन्दिषेण और उसके मामा को ज्ञात हुए तो मामा ने उसे घैर्य बँधाया—

—मैं किसी दूसरे की कन्या से तुम्हारा लग्न कर दूँगा ।

परन्तु मामा का यह मधुर वचन और आश्वसन नन्दिषेण को सन्तुष्ट न कर सका । वह सोचने लगा—‘जब मामा की पुत्रियाँ ही मुझे नहीं चाहती तो दूसरी कोई मुझ जैसे कुरूप को क्यों चाहेगी ?’

इस प्रकार विरक्त होकर वह मामा के घर से निकल कर रत्नपुर नगर में आया । वहाँ किन्हीं पति-पत्नियों को क्रीडा करते देखकर

वह अपनी निदा करने लगा। उसकी निदा का भाव इतना तीव्र हुआ कि वह आत्महत्या को तत्पर होकर एक उपवन में आया।

उपवन में उसे सुस्थित मुनि दिखाई पड़ गये। नदिषेण ने उनकी वटना की। मुनि ने अपने विशिष्ट ज्ञान से उसके मनोभाव जान लिए। उसे आत्महत्या से विरत करते हुए बोले—

—भद्र ! आत्महत्या का दुस्साहस मत करो। इससे तो तुम्हारे दुःख जन्म-जन्मान्तर तक के लिए बढ़ जायेंगे।

नदिषेण की आँखें नम हो आयीं। मुनिराज ने उसके मनोभावों को उजागर जो कर दिया था। बोला—

—मैं क्या करूँ, नाथ ! सर्वत्र मेरा तिरस्कार ही होता है। जीवन भार हो गया है इस संसार में।

—जीवन के भार को उतारने के लिए धर्म का आश्रय लो।

कुछ देर तक तो नदिषेण सोचता रहा, फिर बोला—

—मैं आपकी शरण में हूँ गुरुदेव ! मुझे प्रव्रजित करके धर्म का मर्म बताइये।

मुनि सुस्थित ने उसे प्रव्रजित कर लिया और धर्म का मर्म बताया—सेवा, वैयावृत्य।

नदिषेण ने भी प्रव्रजित होकर साधुओं की वैयावृत्य करने का अभिग्रह ले लिया। अब वह बाल और ग्लान मुनियों की वैयावृत्य बिना ग्लानि करने लगा। साधु-सेवा ही उसका धर्म बन गया। वह शातचित्त होकर मुनि-सेवा करता और मन में सतोष पाता।

एक दिन देवराज इन्द्र ने अपनी सभा में नन्दिषेण की अग्लान साधु-सेवा की बहुत प्रशंसा की। एक देव को इन्द्र की बात पर विश्वास नहीं हुआ। वह रत्नपुर के बाहर वन में आया और ग्लान-मुनि के रूप में प्रकट हो गया। एक अन्य मुनि का रूप रख कर नन्दिषेण मुनि के न्याय पर गया। उस समय नदिषेण पारण के लिए बैठकर पहला ग्राम खाने ही वाले थे, तभी मुनि ने आकर कहा—

—भद्र ! साधु-सेवा का व्रत लेकर भी तुम इस समय पारण के लिए कैसे बैठ गये ?

मुनि के वचन सुन कर नदिपेण उत्सुक होकर उनकी ओर देखने लगे ।

मुनि रूपधारी देव ने ही पुन कहा—

—नगर के बाहर वन में अतिसार रोग से पीड़ित मुनि भूखे-प्यासे पड़े हैं ।

यह सुनते ही नदिपेण ने आहार छोड़ा और उठकर प्रासुक पानी की खोज में चल दिये । शुद्ध जल की प्राप्ति में देव ने अनेक विघ्न किये किन्तु कठिन अभिग्रह वाले नदिपेण के सम्मुख उसकी शक्ति सफल न हो सकी । मुनि प्रासुक जल लेकर वन में गये । वहाँ उन्हें अतिसार से पीड़ित मुनि दिखाई पड़े । मुनि का शरीर मलमूत्र आदि के कारण दुर्गन्धयुक्त था । उनके पास ठहरना भी कठिन था किन्तु नदिपेण ने दुर्गन्ध को दुर्गन्ध नहीं समझा और वे पीड़ित मुनि के पास पहुँचे । उन्हें देखकर रोगी साधु ने आक्रोशपूर्वक कठोर शब्द कहे—

—मैं तो इस दशा में पड़ा हूँ और तुम भोजन में लपट हुए यहाँ इतनी देर में आये । धिक्कार है तुम्हारी साधु-सेवा की प्रतिज्ञा को ।

नदिपेण ने विनम्रतापूर्वक उत्तर दिया —

—हे मुने ! मेरे अपराध को क्षमा करिए । मैं शुद्ध जल लाया हूँ ।

यह कहकर नदिपेण ने उन्हें प्रासुक जल का पान कराया और कहा - आप जरा बैठ जाइये । मैं आपके शरीर को साफ कर दूँ ।

— देखते नहीं मैं कितना अशक्त हूँ ? —मुनि ने कुपित मुद्रा में कहा ।

नदिपेण ने बिना खेद किये उनके अंगों का प्रक्षालन किया और कंधे पर बिठाकर उपाश्रय की ओर चल दिये ।

मुनि ने कहा—

—अरे मूर्ख ! इतनी तेजी से चल कर मुझे क्यों दुःखी कर रहा है ? देखता नहीं अगो के हिलने से मुझे कष्ट होता है ।

धीरे-धीरे चले नदिषेण तो उन्हें पुन मुनाई पड़ा—

—इतनी धीमी चाल में कब तक उपाश्रय पहुँचोगे ? तुम्हारे कन्धे की हड्डियाँ छिद कर मुझे पीड़ित कर रही हैं ।

‘किस प्रकार चलूँ कि इन मुनि को कष्ट न हो’ यह सोच ही रहे थे नन्दिषेण कि मुनि ने विण्टा कर दी । नन्दिषेण का शरीर ऊपर से नीचे तक विण्टा से सन गया । घोर दुर्गन्ध फैल गई । नदिषेण मार्ग में ही रुक कर विण्टा साफ करने का विचार करने लगे और इसी हेतु तनिक ठहरे तो मुनि ने कहा—

—चलता क्यों नहीं ? क्या मुझे मार्ग में ही गिरा कर भाग जाने का विचार है ?

मुनि नदिषेण चलने लगे । उनके हृदय में बार-बार यही विचार आता कि ‘अहो ! इन मुनि को बड़ा कष्ट है । कैसे भी इनका कष्ट दूर हो । रोग की शांति हो जाय । मेरे कारण भी इन्हें पीड़ा हो रही है ।’ इन विचारों के आते ही नदिषेण सँभल-सँभल कर कदम रखते । कही मुनि का कोई अंग हिल न जाय जिसमें इन्हें तनिक भी पीड़ा हो ।

उनकी ऐसी अविचल साधु-मेवा देखकर देव दग रह गया । उसे विश्वास हो गया देवराज इन्द्र के शब्द अक्षरशः सत्य हैं । मुनि नदिषेण की प्रतिज्ञा खरी है । उसने अपना दिव्य रूप प्रगट किया और तीन प्रदक्षिणा करके बोला—

मुनिवर ! जब आपकी प्रतिज्ञा की प्रशंसा इन्द्र ने की तो मुझे विश्वास नहीं हुआ था । इसीलिए मैंने आपकी परीक्षा ली । धन्य है आपका धैर्य और अग्लान साधु सेवा ! मेरा अपराध क्षमा करिए ।

—तुम्हारा कोई अपराध नहीं है, देव !—नदिषेण ने सहज स्वर में कहा ।

—मैं आपको क्या दूँ ?—देव ने विनीत स्वर में पूछा ।

नदिषेण ने उत्तर दिया—

—देव ! सर्वत्यागी जैन श्रमण सदैव ही इच्छा-त्यागी होते हैं ।
उन्हे किसी भी ससारी वस्तु की आकांक्षा नहीं होती । मुझे कुछ नहीं चाहिए ।

देव ने गद्गद् होकर पुनः नमन किया । भक्तिपूर्ण हृदय लेकर वह अपने स्थान को चला गया और मुनि नदिषेण उपाश्रय लौट आये ।

उपाश्रय में अन्य मुनियों ने पूछा—

—भद्र ! वे रोगी मुनि कहाँ हैं ?

तब नदिषेण ने सब कुछ सहज स्वर में बता दिया । सभी मुनि सतुष्ट हुए ।

इसके पञ्चात् नदिषेण ने बारह हजार वर्ष तक घोर तप किया । अनेक प्रकार के अभिग्रह और अनगन करते हुए वे तपञ्चरण में लीन रहते ।

एक बार वे अनगनपूर्वक तप में लीन थे कि अचानक उन्हे अपने दुर्भाग्य और तिरस्कार की स्मृति हो आई । मामा की पुत्रियों के वचन और धृणा प्रदर्शित करती हुई मुख-मुद्रा उनके मानस-पटल पर दौड़ गई । उसके बाद दृश्य उभरा उद्यान में क्रीडा करते पति-पत्नी का ।

मुनि का ध्यान भग्न हो गया । कषाय के तीव्र आवेग में उन्होंने निदान किया—‘इस तप के प्रभाव में अगने जन्म में मैं स्त्रियों का अति प्रिय वनूँ ।’

काल धर्म प्राप्त करके मुनि नदिषेण महाशुक्र देवलोक में देव हुए ।

मुनि सुप्रतिष्ठ ने राजा अधकवृष्णि को सवोधित करके कहा—

—राजन् ! मुनि नदिषेण का जीव ही महाशुक्र देवलोक में च्यवकर

तुम्हारा पुत्र वसुदेव बना है। पूर्वजन्म के निदान के कारण ही यह स्त्रियो को इतना प्रिय है।

राजा अधकवृष्णि को मुनिराज के वचन सुन कर वैराग्य हो आया। उसने अपने बड़े पुत्र समुद्रविजय को राज्य पद देकर स्वयं दीक्षा ग्रहण कर ली।

अधकवृष्णि ने मुनि पर्याय धारण करने के पञ्चात् घोर तप किया। निरतिचार ज्ञान सयम की आराधना करते हुए वे दीर्घकाल तक पृथ्वी पर विचरते रहे।

केवली होकर उन्होंने देह त्यागी और नाश्वत मुख में जा विराजे।

—वसुदेव हिंडी, श्यामा-विजया लभक

—त्रिषष्टि शलाका० ८१२

—उत्तरपुराण, पर्व ७० श्लोक २००-२१४



० उत्तर पुराण के अनुसार—

१ नदिपेण के पिता का नाम सोमशर्मा था और मामा का नाम था देवशर्मा।

२ नट का तमाशा देखने गया तो वहाँ बलवानों के समूह भीड़ को पार न कर सका। लोगो ने ताली बजाकर उसका तिरस्कार किया और तब वह आत्महत्या के लिये गया। (श्लोक २०३-२०४)

३ मुनि का नाम सुस्थित की वजाय द्रुमपेण है। (श्लोक २०४)

० वसुदेव हिंडी में—

नदिपेण के पिता का नाम स्कन्दिल है और इसे पलाशपुर ग्राम का निवासी बताया है।

भोजवृष्णि के प्रव्रजित होने के बाद मथुरा के राजसिंहासन पर उनके पुत्र उग्रसेन का राजतिलक हुआ। उग्रसेन की पटरानी का नाम धारिणी था।

एक बार राजा उग्रसेन नगर के बाहर जा रहे थे। वहाँ एकान्त वन में उन्हें एक तापस दिखाई पड़ा। उन्होंने तापस में महल में आकर भोजन करने की प्रार्थना की। तापस ने उत्तर दिया—

—राजन् ! मैं एक मान के अनशन के बाद एक दिन ही भोजन करता हूँ और वह भी एक ही घर में। दूसरे घर नहीं जाता। यदि पहले घर में भोजन मिले तो पुन मासोपवास प्रारम्भ कर देता हूँ।

राजा ने तापस का अभिप्राय समझा और उसे भोजन का निमन्त्रण दे दिया।

तापस निश्चित तिथि को भोजन के निमित्त आया किन्तु किसी ने उसकी ओर देखा तक नहीं। निराश तापस लौट गया और एक मास का अनशन करने लगा। मथुरा नरेश तो उसे निमन्त्रण देकर भूल ही गये थे।

मथुरापति पुन उस मार्ग से निकले तो तापस को देखकर उनकी स्मृति में निमन्त्रण की बात को ध गड़ी। राजा ने तापस से अपने अपराध की क्षमा माँगी और पुन निमन्त्रण दिया। तापस ने भी राजा का निमन्त्रण सहज रूप से स्वीकार कर लिया।

दूसरे मास भी राजा भूल गया और तापस को भूखा रह जाना पड़ा।

तीसरे मास भी क्षमा माँग कर राजा ने तापस को भोजन हेतु निमन्त्रित किया। राजा पुन भूल गया और तापस पुन निराश वापिस लौट आया।

तापस को तीन महीने हो गये निराहार। धुधा की तीव्र वेदना से उसके प्राण कठ तक आ गये। उसने क्रोध में आकर निदान किया—
‘इस तपस्या के फलस्वरूप मैं अग्नि जन्म में इस राजा को मारने वाला बनूँ।’

राजा उग्रमेन ने अपने प्रमाद के कारण व्यर्थ ही तापस को अपना शत्रु बना लिया।^१

तापस ने अनगन स्वीकार करके मरण किया और उग्रमेन की पटरानी धारिणी के गर्भ में अवस्थित हो गया।

ज्यो-ज्यो गर्भ बढ़ने लगा, रानी की प्रवृत्तियों में क्रूरता आने लगी। उसे एक विचित्र दोहद उत्पन्न हुआ—‘मैं अपने पति के उदर का मांस खाऊँ।’

अपने इस क्रूर दोहद को धारिणी किसी से कह भी नहीं सकती थी। वह ज्यो-ज्यो अपनी इच्छा दवाती त्यो-त्यो वह प्रबल से प्रबलतर होती जाती। इस कगमकग में रानी दुर्बल होने लगी।

राजा के बहुत आग्रह पर रानी ने अपना दोहद बताया, तब मन्त्रियों ने शशक (खरगोश) का मांस राजा के उदर पर रख कर काटा। राजा ने ऐसा आर्तनाद किया मानो उसी के पेट से मांस काटा जा रहा हो। रानी ने अपना दोहद पूरा किया।

दोहद पूरा हो जाने के बाद रानी का विवेक जाग्रत हुआ। घोर पञ्चान्तापपूर्ण स्वर में कहने लगी—

—अब मेरा जीवित रह कर क्या होगा ?

अत्यधिक शोकावेग में रानी ने मरने का निश्चय कर लिया।

रानी के इस निर्णय को जानकर मन्त्रियों ने आश्वासन दिया—

१ इसी प्रकार का घटना प्रसंग श्रेणिक एवं क्षणिक के पूर्व भवों का भी है।

—महारानीजी ! आप प्राण-त्याग का निर्णय न करें । हम लोग मंत्र बल से राजा को पुनर्जीवित कर देंगे ।

रानी धारिणी विस्मय से मंत्रियों का मुख देखने लगी । उसे सहसा विश्वास ही नहीं हुआ । बोली—

—क्या कहते हैं, आप लोग ? महाराज जीवित हो जायेंगे ।

—हाँ महारानीजी ! आप अवश्य महाराज से मिलेंगी । कुछ दिन धैर्य रखें ।

—कितने दिन धैर्य रखना पड़ेगा ?

—केवल सात दिन ।

महारानी अब भी आश्चर्य नहीं हुई थी । वह समझी कि मंत्री लोग उसे दिलासा ही दे रहे हैं । उसने निर्णयात्मक स्वर में कहा—

—आप लोग मुझे भुलावे में डाल रहे हैं । खैर, मैं सात दिन तक प्रतीक्षा कर लूँगी । यदि आप अपने वचन को मृत्यु सिद्ध न कर सकें तो

—उसकी नौबत ही नहीं आयेगी । आप विश्वास रखें महारानीजी ! आपका मिलन महाराज से सात दिन के अन्दर-अन्दर अवश्य होगा ।

रानी मौन हो गई और मंत्रीगण चले गये ।

सातवें दिन रानी ने विस्मयपूर्वक देखा कि महाराज उग्रसेन सही-सलामत, अक्षत-शरीर उसके सम्मुख आ खड़े हुए ।

पति को कृशल देखकर रानी की प्रसन्नता का पार न रहा । वह अपने को बहुत भाग्यशाली समझने लगी ।

अनुक्रम से गर्भ बढ़ने लगा और पौष कृष्णा १४ मूल नक्षत्र में रात्रि के समय रानी ने पुत्र प्रसव किया । पुत्र का मुख देखते ही एक क्षण के लिए तो रानी को प्रसन्नता हुई किन्तु दूसरे ही क्षण उसे विचार आया—‘जिस पुत्र के गर्भ में आने पर मुझे ऐसा क्रूर दोहद उत्पन्न हुआ, वह बड़ा होकर न जाने क्या उत्पात करेगा । पिता को जीवित भी छोड़ेगा या नहीं ।’ यह विचार आते ही माता को पुत्र से

अरुचि उत्पन्न हो गई। वह घृणापूर्वक टकटकी लगा कर उसे देखने लगी। धारिणी की घृणा तीव्र से तीव्रतर होनी गई। उसने अपनी निजी दासी को पुलाकर आदेश दिया—

—तुरन्त कासी की एक पेटी ले आओ।

‘जो आज्ञा’ कहकर दासी चली गई।

जब तक दासी पेटी लेकर लौटी तब तक रानी ने पूरी तैयारी कर ली। उसने पेटी में अपनी और राजा उग्रसेन की नामांकित मुद्रा रखी, साथ ही पूरा विवरण लिख कर एक पत्र तथा बहुत से रत्न भर दिये। उनके ऊपर अपने नव-जात शिशु को लिटा कर दासी को आज्ञा दी कि ‘इसे यमुना नदी में प्रवाहित कर आओ।’

पेटी का ढक्कन बन्द करते हुए रानी की एक आँख हँस रही थी और एक रो रही थी। पति और पुत्र स्त्री की दो आँखें ही तो हैं।

दासी ने स्वामिनी की आज्ञा का पालन किया। पेटी (सन्दूक) यमुना में बहा दी गई।

- ० उत्तर पुगण में तापस के निराहार रहने के कारणों का भी उल्लेख हुआ है और उसका नाम बताया है—जठर कौशिक। सक्षिप्त घटनाक्रम इस प्रकार है—

गंगा और गन्धवती के संगम पर तापसों का आश्रम था। उसका कुलपति था जठर कौशिक। एक बार वहाँ गुणभद्र और वीरभद्र नाम के दो मुनि आए। उनकी प्रेरणा में वह बाल तप में विरत हुआ। उसके बाद तपस्या के प्रभाव में उसके पास सात व्यतर देवियाँ आईं किन्तु उसने यह कहकर लौटा दिया कि अभी कुछ काम नहीं है, अगले जन्म में सहायता करना। (श्लोक ३२८-३३०)

इसके पश्चात् वह विचरण करता हुआ मथुरा नगरी में आया। उसने मामखमण का अभिग्रह लिया था। राजा उग्रसेन ने उसे देखा तो भोजन का निमन्त्रण दे दिया। साथ ही प्रजा को आदेश दिया कि इन मुनि को कोई भी आहार न दे। (श्लोक ३३३)

प्रातः जब राजा उग्रसेन ने रानी से पूछा तो उसने कह दिया—
'पुत्र उत्पन्न होते ही मर गया।'

राजा ने विश्वास कर लिया और बात आई गई हो गई।

—वसुदेव हिंडी, देवकी लंभक

—त्रिषष्टि० ८/२

—उत्तमपुराण ७०/३२२-३४६



पहली बार मुनि भोजन हेतु आए तो राजमवन में आग लग गई।
अतः किसी ने ध्यान नहीं दिया। (श्लोक ३३४)

दूसरी बार राजा के निमन्त्रण पर आए तो पट्ट हाथी विगड़ गया
था। अतः उन्हें निराहार रहना पड़ा। (श्लोक ३३५)

तीसरी बार राजा उग्रसेन के विशेष आग्रह पर पारणे हेतु पधारे।
उस समय जरासंध ने कुछ ऐसे पत्र भेजे थे कि उग्रसेन का चित्त व्याकुल
हो रहा था अतः उस दिन भी मुनि को लौटना पड़ा। (श्लोक ३३६)

तब प्रजा ने कहा कि राजा न तो स्वयं आहार देता है और न
हमको देने देता है न जाने उसकी क्या इच्छा है। यह सुनकर मुनि ने
उग्रसेन को मारने का निदान कर लिया। (श्लोक ३३८-३४०)

कस की माता का नाम पद्मावती दिया है। (श्लोक ३४१)

कासी की पेटी यमुना की लहरों पर तिरती-तिरती मथुरा से शौर्यपुर नगर आ पहुँची।

प्रातः काल सुभद्र नाम का रसवणिक^१ आवश्यक शारीरिक क्रियाओं से निवृत्त होने नदी के किनारे आया। उसने यह पेटी देखी तो उत्सुकतावश किनारे पर खींच लाया। पेटी में एक नवजात शिशु तथा नामांकित राज-मुद्रा और पत्र से सब कुछ जान लिया।

सुभद्र ने वह पेटी लाकर घर में रखी और अपनी इन्दु नाम की पत्नी को उस शिशु के पालन-पोषण का भार सौंपा। कासी की पेटी में मिलने के कारण शिशु का नाम रखा गया कंस।

कंस ज्यो-ज्यो बड़ा हुआ उसके बुरे लक्षण प्रगट होने लगे। वह अपने साथी बालकों को मारता-पीटता। परिणामस्वरूप उस वणिक दम्पति के पास नित्य ही उपालभ आने लगे। सुभद्र ने उसे डराया, धमकाया, वर्जना दी, ताड़ना दी किन्तु कंस पर कोई प्रभाव न पड़ा। उसके उत्पात दिनोदिन बढ़ते गये। क्रूरता तो कंस के मुख पर हर समय खेलती रहती। उसकी भुजाओं में खुजली चलती रहती। वह मचलता रहता किसी को मारने-कूटने के लिए।

दश वर्ष की अवस्था में ही वह इतना दुर्दमनीय हो गया कि वणिक सुभद्र के काबू में न रहा। जब सुभद्र के सभी प्रयास निष्फल हो गये तो उसने कंस को ले जाकर वसुदेव का सेवक बना दिया।

१ घी-तेल आदि के व्यापारी को रसवणिक कहा जाता था।

वसुदेवकुमार के पास कस को अपनी रुचि के अनुकूल वातावरण मिला। कुमार के निर्देशन में वह अस्त्र-शस्त्र विद्या सीखने लगा। अन्य कलाओं का ज्ञान भी वसुदेव ने उसे करा दिया। कस वसुदेव से कलाएँ और विद्याएँ सीखता हुआ युवा हो गया। उसके अग-प्रत्याग पूर्ण विकसित हो गए और बल-पराक्रम भी बढ़ गया।

×

×

×

शौर्यपुर के राजा समुद्रविजय अपने सभी छोटे भाइयों^१ तथा सभासदों के साथ राज्य सभा में बैठे हुए थे। तभी द्वारपाल से आज्ञा लेकर एक दूत ने प्रवेश किया और अभिवादन करके अपना परिचय देता हुआ कहने लगा—

राजन् ! मैं राजगृह नरेश अर्द्धचक्री महाराज जरासध^२ का दूत हूँ।

१ समुद्रविजय के छोटे भाइयों के नाम ये हैं—अक्षोभ्य, स्तिमिन, सागर, हिमवान, अचल, धरण, पूरण, अभिचन्द्र और वसुदेव। इस प्रकार समुद्रविजय दश भाई थे और ये दशार्ह के नाम से प्रसिद्ध थे।

२ जरासध राजा वसु की वंश परंपरा में उत्पन्न हुआ था।

शुक्तिमती नगरी के स्वामी वसु (प्रसिद्ध पर्वत-नारद विवाद का निर्णायक, हिंसक यज्ञों के पक्ष में निर्णय देने के कारण नरक में जाने वाला) की मृत्यु के पश्चात् उनका पुत्र सुवसु अपने प्राण बचाकर नागपुर भाग गया था। (देखिए मधुकर मुनि जी कृत—राम-कथा हिंसक यज्ञों की उत्पत्ति, और त्रिपण्डित ७।२)। उसका पुत्र बृहद्रथ हुआ। बृहद्रथ नागपुर छोड़कर राजगृह नगर में जा बसा। उसके पश्चात् उसकी वंश परंपरा में अनेक राजा हुए। इसी वंश परंपरा में पुन बृहद्रथ नाम का राजा हुआ। इसका पुत्र हुआ जरासध। यह जरासध प्रचंड आज्ञा वाला, भरतक्षेत्र के तीन खंडों का स्वामी और प्रतिवासुदेव था।

[देखिए त्रिपण्डित शलाका ८।२ गुजराती अनुवाद, पृष्ठ २२०]

समुद्रविजय ने दूत को आदर सहित उचित आसन देकर पूछा ।

—सब कुशल तो है ? क्या विशेष सन्देश लाये हो ?

दूत ने अपने स्वामी का सन्देश बताया—

—राजन् ! वैताड्यगिरि के समीप सिंहपुर नगर के राजा सिंह रथ को बाँध लाइये ।

—क्यों ? क्या अपराध है उसका ?

—वह बड़ा दुर्मर्द और दुम्ह हो गया है । स्वामी ने यह भी कहा है कि सिंह रथ को बन्दी बनाने वाले पुरुष के साथ उनकी पुत्री जीवयगा का विवाह कर दिया जायगा और पारितोषिक रूप में एक समृद्ध नगर दिया जायगा ।

राजा समुद्रविजय को पारितोषिक का लोभ तो विल्कुल भी न था वरन् वे जीवयगा से दूर ही रहना चाहते थे । किन्तु जरासन्ध की इच्छा की अवहेलना भी नहीं की जा सकती थी । वे सोच-विचार में पड़ गये । उनकी चिन्तित मुख-मुद्रा देखकर दूत ने व्यग्न किया—

—क्या सिंह रथ का नाम सुनते ही दिल बैठ गया ।

कुमार वसुदेव से रहा नहीं गया । वे तुरन्त बोल पड़े—

—दूत ! तुम निश्चिन्त रहो । सिंह रथ को बन्दी ही समझो ।

और उन्होंने अग्रज समुद्रविजय से विनती की—

—भैया ! आप मुझे आज्ञा दीजिए । मैं सिंह रथ को बन्दी बनाकर आपके सामने हाजिर कर दूँगा ।

समुद्रविजय ने गम्भीरतापूर्वक उत्तर दिया—

—नहीं कुमार ! मैं ही सिंह रथ को विजय करूँगा ।

कुमार वसुदेव ने पुनः आग्रह किया । समुद्रविजय ने कुछ सोच कर उन्हें आज्ञा दी और चेलावनी देते हुए कहा—

—वसुदेव ! तुम जाना ही चाहते हो तो मैं रोकूँगा नहीं । साथ में अपने सेवक कस को भी अवश्य ले जाओ तथा उसे पराक्रम दिखाने

का भरपूर अवसर देना । इसके अतिरिक्त सिहरथ को वन्दी बनाकर मेरे पास लाना, सीधे जाकर जरासघ को मत सौंप देना ।

समुद्रविजय की चेतावनी वसुदेव कुमार ने हृदयगम की और सिंहपुर की ओर चल दिये ।

राजा मिहरथ ने जैसे ही सुना कि वसुदेव कुमार युद्ध हेतु आये हैं, वह भी सेना सहित नगर से बाहर निकल आया ।

दोनों ओर की सेनाओं में युद्ध होने लगा । कस वसुदेव का सारथी था । सिहरथ और वसुदेव में भयकर युद्ध हुआ । दोनों में से कोई भी पीछे नहीं हटता था । जय-पराजय का निर्णय नहीं हो पा रहा था ।

एकाएक कस रथ पर से कूदा और गदा प्रहार से सिहरथ का रथ भग कर दिया । सिहरथ कस को मारने के लिए तलवार निकाल कर दौड़ा तो वसुदेव ने अपने क्षुरप्र वाण से उसका तलवार वाला हाथ छेद दिया । छलकपट में निपुण कस ने सिहरथ को अचानक ही उठाया और वसुदेव के रथ में फेंक दिया ।

राजा के गिरते ही सेना शांत हो गई । वसुदेव विजयी हुए ।

मिहरथ को वन्दी बनाकर वे अपने नगर शौर्यपुर आ पहुँचे ।

अग्रज समुद्रविजय ने विजयी अनुज वसुदेव को कठ से लगा लिया ।

अनुज वसुदेव को एकान्त में ले जाकर समुद्र कहने लगे—

—वसुदेव ! मेरी बात ध्यान से सुनो । कोप्टुकी नाम के ज्ञानी ने एक बार मुझसे कहा था कि 'जरासघ की पुत्री जीवयशा कनिष्ठ लक्षणों वाली होने के कारण पति और पिता दोनों कुलों का नाश करने वाली है ।' इसलिए उसके साथ तुम्हारा विवाह नहीं होना चाहिए ।

अब कुमार वसुदेव को अग्रज की चिन्ता का कारण समझ में आया । जब जरासघ के दूत ने 'जीवयशा' देने की बात कही थी तभी तो उनके मुख पर चिन्ता की रेखा खिच आई थी । वसुदेव ने पूछा—

—तात ! अब क्या हो ? इस जीवयशा से कैसे छुटकारा मिले ?

समुद्रविजय ने अपनी योजना ममझाई—

—तुम चिन्ता मत करो कुमार । मैं पहले ही निर्णय कर चुका हूँ । कह देना कस ने ही सिंहस्थ का पराभव किया है । इसीलिए लो भेजा था उसे तुम्हारे साथ ।

अग्रज की दूरदर्शिता और चतुराई से कुमार प्रभावित हुए । किन्तु अपने हृदय की शका उन्होंने कह डाली—

—परन्तु कस तो वैश्य पुत्र है, और जरासंध क्षत्रिय । वह अपनी कन्या इसे देगा ही क्यों ?

यह समस्या वास्तव में गंभीर थी । क्षत्रिय अपनी पुत्री वैश्य को नहीं देते—यह परम्परा है । समुद्रविजय कुछ क्षण मौन होकर सोचते रहे फिर बोले—

—वात तो तुम ठीक कह रहे हो परन्तु कस की प्रवृत्तियाँ तो क्रूर हैं, वणिकवृत्ति उसमें विल्कुल भी नहीं है ।

—हाँ है तो यही बात । युद्धभूमि में उसकी निर्भीकता, साहस और पराक्रम को देखकर कोई भी उसे वैश्य-पुत्र नहीं मान सकता । मुझे तो ऐसा प्रतीत हुआ मानो वह क्षत्रिय-पुत्र ही हो । उसके जन्म के सम्बन्ध में कोई रहस्य तो नहीं है ?

एक नई राह मिली समुद्रविजय का । तुरन्त रसवणिक सुभद्र को बुलाया गया ।

सुभद्र आया तो समुद्रविजय ने उससे छटते ही प्रश्न कर दिया—

—सेठ ! कस किसका पुत्र है ?

प्रश्न अचानक था और वह भी राजा द्वारा किया गया । कॉप गया रसवणिक । उसके मुख से आवाज ही नहीं निकल सकी ।

—बोलते क्यों नहीं ?—राजा की आवाज फिर गूँजी ।

—ज ज जी महारा ज ।—हकलाते हुए सेठ के मुख से निकला ।

राजा समझ गये कि सेठ घबड़ा गया है । उन्होंने स्वर को मधुर बनाते हुए आश्वस्त किया—

—कस के जन्म का रहस्य जानना चाहते हैं हम ।

अब तक सेठ सुभद्र भी आश्वस्त हो चुका था । किन्तु कस की क्रूर वृत्ति को वह भली-भाँति जानता था । उसने समझा कि कोई बहुत ही गभीर बात हो गई है । इसीलिए राजा ने यह प्रश्न किया है । विनम्र स्वर में पूछा—

—क्या कोई गभीर अपराध हो गया, महाराज ?

—नहीं, अपराध तो नहीं हुआ किन्तु उसके वश परिचय की आवश्यकता आ पड़ी ।

—अभय दे, महाराज । —सेठ का हृदय अब भी सशक्ति था ।

—तुम पूर्ण रूप से निश्चिन्त रहो । मेरी ओर से अभय है ।—
राजा समुद्रविजय ने उसे अभय दिया ।

महाराज के वचनों से पूर्ण आश्वस्त होकर सेठ कहने लगा—

—यह बालक मुझे यमुना नदी में बहती हुई एक कासी की पेटी में मिला था । कासी की पेटी में होने के कारण ही इसका नाम कस पड़ा । उस पेटी में मथुरापति महाराज उग्रसेन और उनकी पटरानी धारिणी की नामांकित मुद्राएँ थी और पत्र तथा कुछ रत्न । वह पत्र इस बात का साक्षी है कि यह महाराज उग्रसेन का ही पुत्र है । ज्यों-ज्यों कस बढ़ता गया त्यों-त्यों उसकी क्रूर प्रवृत्तियाँ उजागर होती गई । वह पड़ोसियों के वच्चों को मारने-पीटने लगा । मैंने उसे सँभालने का बहुत प्रयास किया किन्तु जब वह मेरी सामर्थ्य से बाहर निकल गया तो दश वर्ष की आयु में ही मैंने उसे कुमार वसुदेव की सेवा में अर्पित कर दिया ।

श्री महाराज । यही है कस के जन्म की कहानी ।

—कहाँ है, वे नामांकित मुद्रा और पत्र ?—समुद्रविजय ने कस जन्म का रहस्य जानकर पूछा ।

—घर पर ही है, मैंने उन्हें सुरक्षित रूप से रख छोड़ा है ।—
सेठ ने बताया ।

—तुरन्त जाकर ले आओ ।—राजा समुद्रविजय ने आदेश दिया ।

रसवणिक ने महाराज को प्रणाम किया और 'जो आज्ञा' कहकर चल दिया।

उसने शीघ्र ही नामांकित मुद्रा और पत्र महाराज के समक्ष उपस्थित कर दिये।

राजा का संकेत पाकर वणिक अपने घर चला आया।

अब समुद्रविजय ने अनुज वसुदेव कुमार से कहा—

—यह समस्या भी हल हो गई। निश्चय हो गया कि कम मथुरा-पति उग्रसेन का पुत्र है।

समुद्रविजय और वसुदेव कुमार अपने साथ कम और वन्दी सिंहस्थ को लेकर जरासंध के पास पहुँचे। प्रसन्न होकर जरासंध ने जीवयशा के साथ लग्न की बात कही तो वसुदेव ने कंस के पराक्रम उल्लेख करते हुए बताया कि 'सिंहस्थ राजा को इसी ने बंदी बनाया है। इसलिए जीवयशा का उचित अधिकारी यही है।'।

अपने स्वामी वसुदेव के इन वचनों को सुनकर कंस कृतज्ञता से भर गया और जरासंध प्रसन्न होकर अपनी पुत्री जीवयशा का विवाह उससे करने को प्रमत्त हो गया।

कंस के वश के सम्बन्ध में जरासंध ने जानना चाहा तो समुद्र विजय ने पूरा वृत्तान्त सुनाकर कहा - 'यह महाभुज कंस यादव वंशी महाराज उग्रसेन का पुत्र है। इसमें तनिक भी सदेह नहीं।'।

जीवयशा और कंस का परिणय हो जाने के बाद जरासंध ने उससे पूछा—

—कंस ! तुम्हें कौन सी नगरी का राज्य चाहिए ? निस्सकोच माँग लो।

अपने वश का परिचय जानते ही कंस जलकर खाक हो गया था। उसे अपने पिता पर बड़ा क्रोध आ रहा था। वसुदेव के प्रति कृतज्ञता और आदर के कारण वह स्पष्ट तो कुछ कह नहीं सका परन्तु मन ही मन अपने माता-पिता को पीड़ित करने का उसने निश्चय कर लिया।

उसे गभीर विचार में निमग्न देख कर जरासध पुन बोला—

—किस विचार में निमग्न हो गये ? सकोच की आवश्यकता नहीं । जो नगरी पसन्द हो, माँग लो ।

कस ने माँगी—

—यदि आप मुझे देना ही चाहते हैं तो मथुरा नगरी का राज्य दीजिए ।

हँस कर जरासध ने कहा—

—मथुरा पर तो तुम्हारे पिता का अधिकार है ही । वह तो तुम्हें वैसे ही मिल जायगी । कोई और नगरी माँग लो ।

अपने मनोभावों को दवाकर कस बोला—

—पिता के राज्य के रूप में नहीं, मथुरा का राज्य आप मेरे पराक्रम के प्रतिफल के रूप में दीजिए ।

—‘जैसी तुम्हारी इच्छा’ कहकर जरासध ने मथुरा नगरी कस को दे दी और साथ ही दी बहुत बड़ी सेना ।

जरासध से प्राप्त सेना साथ लेकर कस धक्ककाता हुआ राजगृह से मथुरा की ओर चल दिया ।

मथुरा आकर उसने अपने पिता उग्रसेन को बन्दी बनाकर पिजड़े में रख दिया ।

उग्रसेन के अतिमुक्त आदि कई अन्य पुत्र भी थे । पिता के पराभव से दुःखी होकर अतिमुक्त प्रव्रजित हो गये ।

कस ने अपने पालनकर्ता सुभद्र वणिक् को बुलाकर धन आदि से उसका बहुत सत्कार किया ।

उसने अपनी माता धारिणी को बन्दी नहीं बनाया । धारिणी बार-बार उससे प्रार्थना करती रही कि ‘सारा अपराध मेरा है, तुम्हारे पिता का कोई दोष नहीं । उन्हें इस बारे में कुछ भी मालूम नहीं है । उन्हें छोड़ दो ।’ किन्तु कस ने उसकी एक न सुनी ।

जब कम ने माता की बात न मानी तो रानी धारिणी कम के अन्य मान्य पुरुषों के पास जाकर पुकार करने लगी। धारिणी के सभी प्रयास विफल हो गये। कम ने उग्रमेन को नहीं छोड़ा। 'पूर्वजन्म का किया हुआ निदान कभी मिथ्या नहीं होता।'।

—वसुदेव हिंदी, श्यामा-विजया लम्भक

त्रिपष्टि० ८/२

—उत्तरपुराण ७०/३४८-३६८

० उत्तरपुराण के अनुसार

१ पेटिका को कौशावी की शूद्र स्त्री मदोदरी ने निकाला था। वचपन में ही क्रूर प्रवृत्ति में तग आकर मदोदरी ने उसे घर में निकाल दिया और वह सूरीपुर जाकर वसुदेव का सेवक बन गया। (श्लोक ३४८-३५१)

२ मिहिरथ को सुरम्य देश के अन्तर्गत णोदनपुर का राजा माना गया है। (श्लोक ३५३)

यहाँ मदोदरी वह नन्दक जगसघ को दिखाती है। (श्लोक ३६१)

जरासंध ने सत्कारपूर्वक विदा होकर राजा समुद्रविजय और वसुदेव कुमार वापिस गौर्यपुर लौट आये ।

गौर्यपुर में वसुदेव कुमार स्वेच्छा पूर्वक घूमते । उनकी रूपराशि इतनी आकर्षक थी कि स्त्रियाँ उन्हें देखकर आकृष्ट हो जाती । वे घर के कान-काज और लोकमर्यादा को तिलाजलि देकर एकटक उन्हें ही देखने लगती । युवतियों और किंगोरियों की तो बात ही क्या प्रौढ़ा और वृद्धा भी कामविह्वल हो जाती । किन्तु वसुदेव कुमार डम मवसे निलिप्त अपनी धुन और मस्ती में डूबर-डूबर घूमते और मनोरंजन करते रहते ।

कुछ दिन तक तो प्रजाजनो ने महन किया किन्तु जब स्थिति अधिक विगड गई तो एकान्त में आकर राजा समुद्रविजय से फरियाद की—

—महाराज ! आपके छोटे भाई वसुदेव कुमार के रूप के कारण नगर की स्त्रियो ने मर्यादा का त्याग कर दिया है । जो इन्हे एक बार देख लेती है वह इनका ही नाम रटने लगती है । तो जब ये बार-बार दिखाई देते हैं तब क्या दशा होती होगी, आप स्वयं विचार कर लीजिए ।

अनुज वसुदेव कुमार अतिशय रूपवान हैं यह तो राजा समुद्र-विजय भी जानते थे किन्तु बात इतनी आगे बढ़ चुकी है, इसका उन्हें स्वप्न में भी अनुमान नहीं था । रूपवान होना तो अच्छा है, यह पुण्य का फल है किन्तु अतिशय रूप जो लोक मर्यादा के नाश का कारण

वन जाय, अवश्य ही बन्धन लगाने योग्य है। राजा समुद्रविजय ने प्रजाजनो को आश्वसन दिया—

—मैं उचित व्यवस्था कर दूंगा। आप लोग इस बात की चर्चा वसुदेव से न करें।

प्रजाजनो ने आश्वस्त होकर महाराज को प्रणाम किया और अपने घरों को लौट गये। उन्हें क्या आवश्यकता श्री कुमार से चर्चा करने की—पेड़ गिनने से मतलब या आम खाने से।

राजा समुद्रविजय विचार करने लगे कि कोई ऐसा उपाय हो जिससे साँप भी मर जाय और लाठी भी न टूटे। प्रजा की शिकायत भी दूर हो जाय और कुमार को भी बुरा न लगे। सोचते-सोचते एक विचार मस्तिष्क में कौधा और उसे ही क्रियान्वित करने का उन्होंने निर्णय कर लिया।

अनुज को अपनी बगल में बिठाकर स्नेहार्द्र स्वर में समुद्रविजय बोले—

—दिनभर इधर-उधर बाहर घूमते रहते हो। देखो तो मही देह-काति कैसी क्षीण हो गई है।

—तो महल में बैठ-बैठ क्या करूँ ? मन लगता नहीं निठल्ले बैठे और आप कोई काम बताते नहीं।

—अरे काम की क्या बात ? जो कलाएँ, तुमने नहीं सीखी उन्हें सीखो और जो सीख ली है उनका पुनः अभ्यास करो। क्योंकि कला बिना अभ्यास के विस्मृत हो जाती है।

—ठीक है, आज से ऐसा ही करूँगा।

अग्रज की इच्छानुसार अनुज महल में रहकर नृत्य, गान, संगीत आदि कलाओं का अभ्यास करके ही मनोविनोद में अपना समय बिताने लगे।

प्रजा की शिकायत भी मिट गई और कुमार को बुरा भी न लगा।

एक दिन कुब्जा नाम की दासी गध लेकर जा रही थी कि कुमार वसुदेव को दिखाई दे गई। कुमार ने उससे पूछा—

—यह गध किसके लिये ले जा रही हो ?

—कुमार ! महारानी शिवादेवी की आज्ञा से महाराज समुद्र-विजय के लिए ।

मुस्कराकर कुमार ने कहा—‘यह सुगन्धित द्रव्य मेरे काम आयेगा ।’ और गध का पात्र कुब्जा के हाथ से ले लिया ।

कुब्जा अनुनयपूर्ण स्वर में गध-पात्र माँगती रही और कुमार हँसते-मुस्कराते उसे खिझाते रहे । तब तक कुब्जा बोली—

—ऐसे क्रिया-कलापों के कारण ही तो तुम यहाँ पड़े हो ।

—क्या अभिप्राय ?

—अभिप्राय स्पष्ट है । आपकी दशा यहाँ वन्दियों की सी है ।

—साफ-साफ बताओ मामला क्या है ?

अब कुब्जा^१ को आभास हुआ कि उसके मुख से एक गूढ़ रहस्य प्रगट हो गया है ।

कुमार बार-बार रहस्य बताने का आग्रह करने लगे और कुब्जा कन्नी काटने लगी । किन्तु कहाँ ढासी और कहाँ कुमार, उसे सपूर्ण रहस्य बताना ही पड़ा ।

कुब्जा के रहस्योद्घाटन ने वसुदेव के हृदय में हलचल मचा दी । उन्होंने गध पात्र तो कुब्जा को लौटा दिया और स्वयं विचार निमग्न हो गये । उन्होंने नगर छोड़ने का निश्चय कर लिया ।

१ कुब्जा नामक दामी के स्थान पर उत्तरपुराण में निपुणमती नाम के बहुत बोलने वाले नेत्रक द्वारा यह रहस्योद्घाटन कराया गया है । निपुणमती के वचनों की परीक्षा करने के लिए जब वसुदेव बाहर जाने लगे तो द्वारपालों ने यह कह कर उन्हें रोक दिया कि ‘आपके बटे भाई ने हम लोगों को यह आज्ञा दी है कि आपको बाहर न जाने दिया जाय, इसलिए आप बाहर न जायें ।’ यह सुन कर उस समय तो वसुदेव वहीं रह गये पर दूसरे ही दिन विद्या मिद्ध करने के बहाने थोड़े पर सवार होकर श्मशान चले गये ।

उसी रात के अवेरे में गुटिका से अपना रूप परिवर्तित करके वे महल से बाहर निकल गये ।

नगर से बाहर निकल कर वसुदेव कुमार ऋग्गान पहुँचे और वहाँ किमी अनाथ शव को एक चिता में डाल दिया । इसके बाद उन्होंने लिखा—‘लोगों ने गुरुजनों के सामने मेरे गुण को दोष रूप में प्रकट किया और अग्रज ने भी उन पर विश्वास कर लिया इसलिए मैं लोकपवाद के कारण अग्नि में प्रवेश करता हूँ । सभी मेरे दोषों को क्षमा करें ।’

यह लिखकर उन्होंने एक स्तम्भ^१ पर लटका दिया और स्वयं ब्राह्मण का वेश बना कर आगे चल दिये ।

कुछ समय तक मार्ग में भटकने के बाद वे सही रास्ते पर आये । तभी रथ में बैठी किमी स्त्री ने उन्हें देखा । वह अपने पिता के घर जा रही थी । स्त्री ने अपनी माता से कहा—

—माँ ! यह ब्राह्मण बहुत थका दिखाई पड़ता है । इसे रथ में बिठा लो ।

माता ने स्वीकृति दे दी और वे दोनों रथ में बिठा कर वसुदेव कुमार को अपने ग्राम ले आई ।

स्नान भोजन आदि से निवृत्त होकर ब्राह्मण रात को किसी यक्ष मन्दिर में जा सोया ।

×

×

×

दूसरे दिन प्रातः काल वसुदेव कुमार गौर्यपुर के राज महल में न मिले तो चारों ओर उनकी खोज प्रारम्भ हो गई ।

राज्य कर्मचारी और प्रजाजन उन्हें खोजते हुए ऋग्गान आ पहुँचे । ऋग्गान में एक स्तम्भ पर उनके हाथ का लिखा हुआ पत्र और समीप ही अधजला विकृत-सा शव दिखाई दिया ।

१. उन्नर पुराण में घोड़े के गले में बाँधने का उल्लेख है । साथ ही उसमें ये शब्द और हैं—इस लोकपवाद ने मृत्यु अच्छी इसलिए मैं अग्नि प्रवेश करता हूँ ।

सभी को विश्वास हो गया कि वास्तव में ही कुमार ने अग्नि प्रवेश कर लिया है ।

यह समाचार मिलते ही महल में रुदन मच गया । संपूर्ण यादव परिवार शोक निमग्न हो गया ।^१

यादवों ने कुमार वसुदेव को मरा जान कर उनकी उत्तर क्रिया कर दी ।

कर्ण परम्परा द्वारा यह समाचार वसुदेव को भी ज्ञात हो गया । वे निश्चित होकर आगे बढ़ गये ।

—त्रिषष्टि० ८/२

—उत्तरपुराण ७०/२१७-४७

—वसुदेव हिंडी, श्यामा-विजया लभक



वसुदेव का वीणा-वादन

५.

चलते-चलते वसुदेव विजयखेट नगर में जा पहुँचे । उनकी कला-गुण-सम्पन्नता से प्रभावित हो नगरपति राजा सुग्रीव ने अपनी दोनों पुत्रियों—श्यामा और विजयसेना का लग्न उनके साथ कर दिया । अपनी दोनों स्त्रियों के साथ वे सुख से रहने लगे । विजयसेना से उनके अक्रूर नाम का पुत्र हुआ ।

अचानक ही उनका दिल उचट गया और एक रात्रि को वे राज महल छोड़कर चल दिये । चलते-चलते वे एक घोर जंगल में जा पहुँचे । मार्ग की थकान के कारण उन्हें प्यास लग आई । प्यास बुझाने के लिए वे जलावर्त नाम के एक सरोवर के पास जा पहुँचे ।

वसुदेव तृपातृप्ति के लिए सरोवर में उतरने को ही थे कि बीच में एक बाधा आ पड़ी । सामने से आकर एक विशालकाय हाथी ने उनका मार्ग रोक लिया । वसुदेव ने प्रयास किया कि मुठभेड़ न हो—गजराज अपनी राह चला जाय और वे अपनी प्यास बुझा कर अपनी राह पकड़े किन्तु गजराज विशाल चट्टान की भाँति अड गया । जब दूसरा मार्ग न बचा तो वसुदेव कुमार सिंह के समान उछलकर उसकी गर्दन पर जा चढ़े और अपने भुजदंडों में उसकी गर्दन जकड़ कर उसे निर्मद कर दिया ।

यह दृश्य आकाश से अर्चिमाली और पवनजय नाम के दो विद्या-धर देख रहे थे । वे तुरन्त नीचे उतरे और उन्हें अपने साथ कुजरावर्त नगर को ले गये । वहाँ के राजा अशनिवेग ने अपनी पुत्री श्यामा का लग्न उनके साथ कर दिया ।

श्यामा के साथ वसुदेव के दिन सुख में व्यतीत होने लगे । एक दिन श्यामा ने इतना सुन्दर और मधुर वीणावादन किया कि वसुदेव ने प्रसन्न होकर उससे वर माँगने को कहा । श्यामा ने वरदान माँगा—
'मुझसे आपका वियोग कभी न हो ।'

हँस कर वसुदेव बोले—

—यह तो कोई वरदान न हुआ । स्त्री मात्र की इच्छा है यह तो ।

—मुझे यही वरदान चाहिए । —श्यामा ने आग्रहपूर्वक उत्तर दिया ।

वात सामान्य थी किन्तु श्यामा के विशेष आग्रह के कारण वसुदेव को उसमें किसी रहस्य का आभास हुआ । वे बोले—

—प्रिये ! तुम्हारी वात में कोई रहस्य नजर आता है ।

—रहस्य है तो होने दीजिए । आपको वरदान देने में क्या आपत्ति है ?

—आपत्ति की वात तो अलग है । मुझे वह रहस्य बताओ ।

वसुदेव के आग्रह पर श्यामा कहने लगी—

वैताद्व्यागिरि पर किन्नरगीत नाम के नगर में अचिमाली नाम का राजा राज्य करता था । उसके ज्वलनवेग और अशनिवेग नाम के दो पुत्र हुए । अचिमाली ने ज्वलनवेग को राज्य पद देकर सयम ग्रहण कर लिया । ज्वलनवेग के अचिमाल नाम की स्त्री से एक पुत्र हुआ अगारक, और अशनिवेग को सुप्रभा स्त्री से एक पुत्री हुई श्यामा-यानी मैं । ज्वलनवेग तो मेरे पिता अशनिवेग को सिंहासन पर बिठा कर स्वर्ग चले गये किन्तु उनका पुत्र अगारक राज्य लोभी था । उसकी इच्छा स्वयं राजा बनने की थी । उसने मुख से तो कुछ नहीं कहा परन्तु विद्या बल से मेरे पिता अशनिवेग को राज्य से बाहर निकाल दिया और स्वयं राजा बन बैठा ।

मेरे पिता अष्टापद पर्वत पर गये । वहाँ अगिरस नाम के चारण मुनि से उन्होंने पूछा—

—गुरुदेव ! मुझे राज्य मिलेगा या नहीं ?

मुनिश्री का उत्तर था—

—तुम्हारी पुत्री ग्यामा के पति के प्रभाव से तुम्हें राज्य की प्राप्ति होगी ।

—कौन होगा, ग्यामा का पति ? कैसे पहचानूँगा मैं उसे ?

—प्रश्न उद्बुद्ध हुआ ।

—जलावर्त सरोवर के समीप जो पुरुष एक हाथी पर सवार होकर भुजाओं से ही उसे निर्मद कर दे, वही ग्यामा का पति होगा ।

—उत्तर मिला ।

उसी दिन से मेरे पिता यही एक नगरी बसा कर रहने लगे । साथ ही जलावर्त सरोवर के किनारे कुछ विद्यावर तैनात कर दिये । उनमें से ही दो विद्याधर आपको ससम्मान यहाँ लाये थे ।

एक बार इसी स्थान पर धरणेन्द्र, नागेन्द्र और विद्याधरो की एक सभा हुई उसमें यह तय हुआ कि जो पुरुष साधुओं के समीप बैठा हो अथवा जिसके साथ स्त्री हो उसे मारने वाले विद्याधर की सभी विद्याएँ नष्ट हो जायेंगी ।

हे स्वामी ! इसी कारण मैंने यह वरदान माँगा है कि 'मैं आपसे कभी अलग न होऊँ ।' क्योंकि मुझे भय है कि आपको अकेला पाकर कही अगारक मार न डालें ।

वसुदेव कुमार ने श्यामा की इच्छा स्वीकार कर ली ।

दुःख के बाद सुख और सुख के बाद दुःख सृष्टि के इस नियम के अनुसार एक दिन अवसर पाकर सोते हुए वसुदेव कुमार को अगारक ले उड़ा । वसुदेव की नींद खुली तो उन्होंने देखा कि 'ग्यामा उन्हें आकाश मार्ग से उड़ाये लिए जा रही है ।' वे कुछ सोच-समझ पाते तब तक ग्यामा की आवाज उनके कानों में पड़ी 'खड़ा रह, खड़ा रह ।'

दो ग्यामा देखकर वसुदेव कुमार सभ्रमित हो गये । पहली श्यामा ने दूसरी ग्यामा के तलवार से दो टुकड़े कर दिये । अब दो श्यामाएँ

पहली श्यामा से लडने लगी। वस्तुतः अगारक ने अपना रूप श्यामा का सा बना रखा था। वसुदेव ने समझ लिया कि यह सब माया है। उन्होंने अपना मुट्टि का प्रहार कर दिया। वज्रसमान मुट्टिका-आघात से अगारक पीड़ित हो गया। उसने वसुदेव को वही से छोड़ दिया।

वसुदेव आकाश से गिरे तो सरोवर में जा पड़े। यह सरोवर चपा नगरी के बाहर था। हंस के समान उन्होंने तैर कर तालाब पार किया और किनारे पर ही रात बिताई। प्रातः काल एक ब्राह्मण के साथ नगर में आ गये।

नगर में एक विचित्र बात दिखाई पड़ी उन्हें। जिस युवक को देखो, उसी के हाथ में वीणा। सभी वीणावादन सीखने में तत्पर। मानो नगरी का नाम चपापुरी न होकर वीणापुरी हो। मार्ग में एक ब्राह्मण से वसुदेव ने इसका कारण पूछा तो उसने बताया—

इस नगर में सेठ चारुदत्त की कन्या है गन्धर्वसेना। गन्धर्वसेना अति रूपवती और कला निपुण है। वीणावादन में तो उसका कोई मुकाबिला ही नहीं। उसने प्रतिज्ञा की है कि 'जो मुझे वीणावादन में जीत लेगा उसी को अपना पति बनाऊँगी।' उसी को प्राप्त करने हेतु ये सब युवक वीणा सीखने में रत हैं।

ब्राह्मण के मुख से कारण सुनकर वसुदेव के मुख पर मुस्कान की एक रेखा खेल गई। उन्होंने पुनः पूछा—

—ये सभी युवक किस श्रेष्ठ गायनाचार्य से शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं ?

मुस्करा पड़ा ब्राह्मण। बोला—

—तुम्हारे भी हृदय में गन्धर्वसेना की गंध बस गई ? गायनाचार्य सुग्रीव और यशोग्रीव यहाँ के शिक्षाचार्य भी हैं और उन्हीं के समक्ष प्रति मास प्रतियोगिता भी होती है।

—क्या अभी तक कोई विजयी नहीं हो सका, प्रतियोगिता में ?

—हुआ क्यों नहीं ? श्रेष्ठ-पुत्री गन्धर्वसेना वाजी जीतती रही है।

यह कह कर ब्राह्मण अपनी राह चला गया और वसुदेव जा पहुँचे गायनाचार्य सुग्रीव के घर। सुग्रीव को अभिवादन करके अपना मतव्य प्रकट किया—

—मैं गौतम गोत्री स्कन्दिल नाम का ब्राह्मण हूँ। मेरी इच्छा गधर्वसेना से परिणय करने की है। आप मुझे शिष्य रूप में स्वीकार करके संगीत सिखाइये।

गायनाचार्य ने उन्हें नजर भर देखा और चुप हो गये। मुँह से न 'हाँ' कहा न 'ना'। वे किस-किस का आदर करते? वहाँ तो रोज दो-चार युवक गधर्वसेना की गध से वावने होकर आते थे।

वसुदेव ने गायनाचार्य की 'हाँ' 'ना' की चिन्ता नहीं की। वे वहीं रहने लगे। अनाड़ी के समान वे गायनविद्या सीखते और ग्राम्य वचन^१ बोल कर लोगो का मनोरजन करते।

प्रतियोगिता वाले दिन आचार्य सुग्रीव की स्त्री ने उन्हें पहनने के लिए सुन्दर वस्त्र का जोटा (चागा) दिया। वसुदेव ने वह चोगा अपने पुराने वस्त्रो के ऊपर ही पहिन लिया और प्रतियोगिता स्थल की ओर चल दिये।

इस विचित्र वेश-भूषा के कारण नगर निवासी उनका उपहास करते, खिल्ली उड़ाते।

'तुम्हें ही गधर्वसेना वरण करेगी। जल्दी-जल्दी चलो।' इस प्रकार कहने हुए अनेक युवक उनके साथ चलने लगे।

नगर निवासियों के उपहास में स्वयं भी हँसते हुए कुमार वसुदेव प्रतियोगिता-स्थल पर जा पहुँचे।

युवको ने मुख से ही उनकी हँसी नहीं उड़ाई वरन् वे कुछ और आगे बढ़ गये। उन्हें एक ऊँचे आसन पर बिठा दिया गया।

वसुदेव कुमार सब कुछ समझ रहे थे किन्तु उन्होंने इस ओर कोई ध्यान ही दिया। उन्हें अपनी कला पर पूर्ण विश्वास था।

१ व्याकरण से रहित अशुद्ध उच्चारण पूर्वक बोले गये वचन जो सभ्य और मुमस्कृत व्यक्तियों के हास्य का कारण होते हैं।

सभी लोगो के उचित स्थान पर बैठने के बाद गधर्वसेना सभा मंडप में आई । उसका दप-दप करता रूप सभी की आँखों में बस गया मानो कोई देवागता ही पृथ्वी पर उतर आई हो । सभी पर एक विहगम दृष्टि डालकर वह अपने नियत आसन पर बैठ गई ।

अब प्रारंभ हुई वीणा-वादन प्रतियोगिता । एक-एक करके सभी विदेशी और स्वदेशी युवक हारते चले गये । गधर्वसेना की आँखों में विजय-मुस्कान खेलने लगी । अन्त में वारी आई वसुदेवकुमार की ।

विजयी मुद्रा में मुख उठाकर गधर्वसेना ने वसुदेव को देखा तो देखती ही रह गई । इतना सुन्दर रूप, ऐसा लावण्य, देवों को भी लज्जित करने वाली काति—यह मनुष्य है या देव । श्रेष्ठि-पुत्री की आँखें खुली की खुली रह गई । वह अपलक देखने लगी मानो कुमार की रूप सुधा को आँखों से पी जाना चाहती हो ।

गायको ने जब गधर्वसेना की यह दशा देखी तो उनकी नजरे भी कुमार की ओर उठ गई । यह क्या चमत्कार ? साधारण सा उपहास-प्रद युवक ऐसा सुरूपवान कैसे बन गया ? सभी आश्चर्य में डूबकर काना-फूँसी करने लगे ।

वास्तव में कुमार वसुदेव ने इस समय अपना असली रूप प्रगट कर दिया था ।

लोगों की काना-फूँसी कुछ उच्च स्वर में परिणत हो गई । श्रेष्ठि-पुत्री का ध्यान भग हुआ । उसे अपनी प्रतिज्ञा याद आ गई । उसके सकेत पर दासियों ने एक वीणा कुमार के हाथों में दे दी । कुमार ने उसमें दोष निकाल कर वापिस कर दिया । एक के बाद एक वीणाएँ आती गईं और कुमार उन्हें सदोष बताकर वापिस करते रहे । अन्त में गधर्वसेना ने अपनी वीणा दी । वीणा के तारों को मिलाते हुए वसुदेव ने पूछा—

—शुभे ! क्या बजाऊँ ?

—गीतज्ञ ! पद्म चक्रवर्ती के बड़े भाई मुनि विष्णुकुमार के त्रिविक्रम सबधी गीत को इस वीणा में बजाओ ।

‘जैसी तुम्हारी इच्छा’ कहकर कुमार ने वीणा के तार झकृत किये । प्रथम झकार ही मानो मधुप झकार थी । सभा सुधारस से आप्लावित हो गई । वसुदेव की अगुलियाँ वीणा के तारों से खेलने लगी । आरोह, अवरोह, तीव्र, मध्यम, मद, तार सप्तक, सुतार सप्तक, लय, आदि मानो सगीत देवता स्वयं साकार हो गये । महामुनि विष्णुकुमार की एक-एक क्रिया सगीत-लहरी के द्वारा कानों में होकर सुनने वालों के मस्तिष्क में नाचने लगी । ऐसा लगा कि विष्णुकुमार मुनि साक्षात् सामने उपस्थित हो । मुनियों के उपसर्ग में करुण रस का उद्रेक हुआ तो महामुनि के रूप में वीर रस का और अन्त में भक्ति रस और गात रस की गंगा में गोता लगाकर सभी पवित्र हो गये । वादक आत्म विभोर था और श्रोता आत्म-विस्मृत । किसी को यह भान नहीं रहा कि वीणा बज रही है । वे तो यही समझ रहे थे कि उनके मस्तिष्क के तत् स्पन्दन कर रहे हैं । इन्हीं के कारण यह स्वर निकल रहा है और मस्तिष्क पटल पर साक्षात् दृश्य दिखाई दे रहा है । सगीत विद्या की पराकाष्ठा ही कर दी कुमार वसुदेव ने ।

वीणावादन रुक जाने के बाद भी कुछ समय तक मधुर ध्वनि गुँजती रही । एकाएक ध्वनि वन्द हुई तो लोगों की वन्द आँखें खुल गई । वसुदेव कुमार और श्रेष्ठि-पुत्री आत्म विस्मृत से पलके बन्द किये बैठे थे ।

‘धन्य’ ‘धन्य’ की आवाजों से उनकी आँखें खुली । एक स्वर से सबने स्वीकार किया—देवोपम ! सगीत की पराकाष्ठा हो गई । निश्चित ही इस युवक की जीत हुई ।

गर्वसेना दृष्टि नीची करके कुमार के चरणों को देखने लगी । उसके मुख पर लज्जा थी—हार की नहीं, गुणज्ञ पति के प्रति प्रेम की ।

सेठ चारुदत्त ने सभी गायको को विदा करके कुमार को रोक लिया । बड़े आदर-सत्कार के साथ उन्हें अपने घर लाया ।

चारुदत्त के घर में विवाह के मंगल वाद्य बजने लगे । विवाह की तैयारियाँ होने लगी । लग्न का दिन भी आ गया । वर-वधू लग्न-मंडप में बैठे थे उस समय सेठ चारुदत्त ने बड़े स्नेह से पूछा—

—कुमार ! अपना गोत्र बताओ जिससे मैं उसे उद्देश्य कर दान दूँ ।

कुमार ने हँसकर उत्तर दिया—

—आपकी जो इच्छा हो वही गोत्र समझ लीजिए ।

सेठ कुमार के शब्दों में छिपे व्यग को समझ गये । बोले—

—यह वणिक-पुत्री है, इसीलिए व्यग कर रहे हैं आप ?

—इसमें सन्देह भी क्या है ? वणिक पुत्री तो वणिक पुत्री ही रहेगी ।

—नही कुमार ! जब तुम्हें इसके वंश का परिचय प्राप्त होगा तब तुम आश्चर्य करोगे । यह अवसर उस लम्बी घटना को सुनाने का नहीं है ।

वसुदेवकुमार आश्चर्यचकित होकर सेठ की ओर देखने लगे । सेठ ने ही पुनः कहा—

—तुम्हारे छिपाने पर भी मैं जान गया हूँ कि तुम्हारा नाम वसुदेव कुमार है और तुम यदुवंशी क्षत्रिय हो ।

वसुदेव की आँखें विस्मय से फटी रह गई ।

सेठ ने कुमार को विस्मित ही छोड़कर विवाह की रस्में पूरी की ।

गायनाचार्य सुग्रीव और यशोग्रीव ने अपनी पुत्रियाँ ज्यामा और विजया का विवाह वसुदेव के साथ कर दिया ।

गन्धर्वसेना के साथ कुमार वसुदेव सुख से दिन तो विताने लगे किन्तु उनके हृदय में उसके विगत जीवन को जानने की जिज्ञासा बनी रही ।

—त्रिषष्टि० ८/२

—उत्तरपुराण ७०/२४६-२६६

—वसुदेव हिंडी, श्यामा-विजया तथा श्यामली
और गधर्वदत्ता लभक

० उत्तर पुराण की भिन्नताएँ इस प्रकार हैं—

(१) विजयपुर के स्थान पर विजयखेट नगर बताया है और राजा का नाम सुग्रीव के बजाय मगधेश तथा पुत्री का नाम श्यामा के स्थान पर श्यामला । (श्लोक २४६-५०)

(२) वन का नाम देवदारु है । (श्लोक २५२)

(३) कुजरावर्त नगर के स्थान पर किन्नरगीत नगर । (श्लोक २५३)

(४) श्यामा के स्थान पर शाल्मलिदत्ता । (श्लोक २५४)

(५) सुप्रभा के स्थान पर पवनवेगा । (श्लोक २५५)

(६) यहाँ निमित्त ज्ञानी कहा गया है । साथ ही नाम नहीं बताया गया ।
(श्लोक २५५)

(६) यहाँ इतना उल्लेख है कि शाल्मलिदत्ता ने उन्हें पर्णलघी विद्या से चपापुर नगर के समीप वाले सरोवर के बीच टीले पर धीरे से उतार दिया । (श्लोक २५७-५८)

(८) सगीताचार्य का नाम मनोहर है । (श्लोक २६२)

(९) गधर्वदत्ता के स्वयंवर में वसुदेव पहले विष्णुकुमार मुनि की कथा सुनाकर कहते हैं कि देवो ने उस समय घोषा, सुघोषा, महासुघोषा और घोषवती ये चार वीणाएँ दी थीं उनमें से घोषवती वीणा आपके परिवार में है, उसे लाओ । (श्लोक २६५-६६) इसके बाद वे वीणा-वादन करके गधर्वदत्ता को जीतते हैं । (यहाँ गधर्वसेना का ही नाम गधर्वदत्ता है ।)

० वसुदेव हिंडी में भी उत्तर पुराण के अनुसार विष्णुकुमार मुनि की कथा और देवप्रदत्त वीणा बजाने का उल्लेख है और गधर्वसेना का नाम भी गधर्वदत्ता है । (गधर्वदत्ता लम्भक)

एक दिन वसुदेव कुमार ने पूछ ही लिया—

—मेठजी ! आपने मेरा नाम और वश कैसे जाना ? क्या रहस्य है गधर्वसेना के विगत जीवन का ?

सेठ चारुदत्त ने उत्तर दिया—

—कुमार ! ध्यान से सुनो । मैं तुम्हे पूरी घटना सुनाता हूँ ।

इसी चपानगरी में भानु नाम का एक सेठ रहता था । उसके सुभद्रा नाम की एक पुत्री तो थी किन्तु पुत्र कोई नहीं । पुत्र की चिन्ता में वह दुःखी रहता था । एक बार उसने किसी चारण मुनि से पूछा—प्रभो मुझे पुत्र प्राप्ति होगी या नहीं । मुनिराज ने बताया—‘होगी’ । उसके बाद मेरा जन्म हुआ ।

एक दिन मैं अपने मित्रों के साथ सागर तट पर क्रीडा करने गया । वहाँ मुझे दो जोड़ी पद-चिन्ह दिखाई दिये । उनमें से एक पुरुष के चिन्ह थे और दूसरी स्त्री के । उत्सुकतावश मैं पद-चिन्हों को देखता-देखता आगे चला तो वे पद-चिन्ह एक कदलीकुज में जाकर समाप्त हो गये थे । कदलीकुज में झाँक कर देखा तो पुष्प शैया व ढाल-तलवार दिखाई दी और उनके पास ही तीन छोटी-छोटी पोटलियाँ । मैं इतना तो समझ गया कि यहाँ एक पुरुष और एक स्त्री आये थे; पर अब वह दोनों कहाँ चले गये, यह जिज्ञासा मेरे मन में उठ रही थी । उन्हें ढूँढने आगे चला तो क्या देखता हूँ कि मोटे वृक्ष के तने से एक पुरुष लोहे की कीलों से विधा पड़ा है । किसी ने उसे अचेत करके वृक्ष के तने के सहारे खड़ा किया और कीले ठोक दो ।

उस पुरुष पर मुझे बड़ी दया आई । मैं उसे बन्धन मुक्त करने का उपाय सोचने लगा । आयु भी मेरी छोटी थी । अभी किशोर ही

तो था मैं । मैंने अपने बुद्धि बल का प्रयोग किया । तीनों पोटलियों को उठा लाया । एक के प्रयोग से वे कीले निकल गईं, दूसरी से उसके घाव भर गये और तीसरी ने उसे सचेत कर दिया ।

मैं अपनी सफलता से प्रसन्न हो गया । उस पुरुष ने आँखें खोलते ही मुझे सामने खड़ा पाया तो मेरी ओर ध्यान से देखने लगा । मैंने उससे पूछा—

—महाभाग ! आप कौन हैं और आपकी यह दशा किसने की ?

वह पुरुष बताने लगा—

—उपकागी ! वैताड्यगिरि पर शिवमंदिर नगर के राजा महेन्द्र-विक्रम का पुत्र मैं अमितगति विद्याधर हूँ । एक बार घूमगिख और गौरमुड नाम के दो मित्रों के साथ क्रीड़ा करता हुआ हिमवान् पर्वत पर जा पहुँचा । वहाँ हिरण्यरोम नाम के मेरे तपस्वी मामा की सुन्दर पुत्री सुकुमालिका मुझे दिखाई दे गई । मेरे हृदय में उसके प्रति अनुराग तो उत्पन्न हुआ किन्तु मैंने कुछ कहा नहीं । लौटकर अपने नगर को आ गया । मित्रों ने मेरा मनोभाव पिता को कह सुनाया और पिताजी ने मेरा विवाह सुकुमालिका के साथ कर दिया । हम दोनों पति-पत्नी परस्पर मनोरंजन करते और मुख से दिन बिताते ।

मेरे मित्र घूमगिख के हृदय में भी सुकुमालिका के प्रति काम भाव जाग्रत हो गया था । उसकी कुचेष्टाएँ समझ तो मैं भी गया किन्तु मैंने कुछ ध्यान नहीं दिया । एक दिन मैं अपनी पत्नी तथा मित्र घूमगिख के साथ यहाँ आया । असावधान जानकर उसने मुझे तो अचत करके वधनों में जकड़ दिया और सुकुमालिका का हरण करके ले गया ।

मित्र ! तुमने मुझे इस महाकष्ट में वचाया है । इस उपकार के बदले मैं तुम्हारा क्या काम करूँ ?

मैंने उससे कह दिया—

—आपके दर्शनो से ही मैं कृतार्थ हो गया । मुझे किसी वस्तु की आवश्यकता नहीं ।

यह सुनकर वह विद्याधर कृतज्ञता प्रकट करके चला गया और मैं अपने घर लौट आया ।

युवावस्था में प्रवेश करने के बाद माता-पिता ने मेरा लग्न मित्रवती के साथ कर दिया । मित्रवती मेरे मामा सर्वार्थ की पुत्री थी । मेरी चित्तवृत्ति कला और विद्याओं में थी इस कारण स्त्री में आसक्त न हो सका । पिता ने मेरे इस व्यवहार को बदलने के लिए श्रमगार-परक साधन जुटा दिये । उपवन आदि में घूमते-फिरते एक दिन मेरी भेट कलिगसेना की पुत्री वसन्तसेना वेण्या में हो गई । उसके पास मैं बारह वर्ष तक रहा और पिता की सोलह करोड़ स्वर्ण मुद्राएँ बरबाद कर दी । कगाल जानकर कलिगसेना ने मुझे घर से निकाल दिया ।

वेण्या के घर से निकल कर अपने घर आया तो माता-पिता का स्वर्गवास हो चुका था । व्यापार के लिए धन शेष नहीं था । निदान अपनी पत्नी के आभूषण लेकर मामा के साथ उगीरवर्ती नगरी में आया । वहाँ आभूषण बेचकर कपास खरीदा । कपास लेकर ताम्रनिप्टी नगरी जा रहा था कि मार्ग में दावानल में सब कुछ स्वाहा हो गया । मामा ने भाग्यहीन समझ कर मुझे त्याग दिया ।

अब की पीठ पर बैठकर मैं अकेला ही पश्चिम दिशा की ओर चल दिया । मार्ग में मेरा घोड़ा भी मर गया । अब पैदल ही चलता हुआ भूख-प्यास से व्याकुल प्रियगु नगर में जा पहुँचा ।

वहाँ पिता के मित्र मुरेन्द्रदत्त मुझे अपने घर ले गये । कुछ दिन सुखपूर्वक रहकर मैंने उनसे एक लाख स्वर्ण मुद्राएँ व्याज पर ली और वाहन भरकर समुद्र मार्ग से व्यापारार्थ चल दिया । यमुना द्वीप तथा अन्य द्वीपों में मेरा माल अच्छे लाभ से बिका । अब मेरे पास आठ करोड़ स्वर्ण मुद्राएँ हो गई । उन सब को लेकर समुद्र मार्ग से अपने नगर की ओर चला तो वाहन टूट गया । सारा उपार्जित धन तो समुद्र के गर्भ में समा गया और मेरे हाथ लगा एक लकड़ी का तख्ता । जीव को प्राण सबसे ज्यादा प्यारे होते हैं । उस लकड़ी के मामूली से

तख्ते को प्राणाधार समझकर मैंने कस कर पकड़ लिया। मात दिन तक सागर की लहरो ने मुझे जिन्दगी और मौत का झूला झुलाकर तट पर ला फेंका। यह तट था उदुवरावती कुल का और समीप ही था राजपुर नाम का एक नगर।

राजपुर नगर में दिनकर प्रभ नाम का एक त्रिदण्डी साधु रहता था। मैं दुःखी तो था ही, अपना सारा दुःख उस से कह मुनाया। उसने मुझे अपने पास रख लिया।

एक दिन त्रिदण्डी ने कहा—

—तुझे धन की आवश्यकता है। कल हम लोग पर्वत के ऊपर चलेगे। वहाँ से मैं तुझे एक रस दे दूँगा। उस रस के प्रभाव से करोड़ों का स्वर्ण तुझे प्राप्त हो जायगा और तेरी दरिद्रता सदा को मिट जायगी।

त्रिदण्डी के ये शब्द सुनकर मैं बहुत प्रसन्न हुआ। दूसरे दिन प्रातः काल हम दोनों चल दिये। एक भयंकर वन को पार करके पर्वत पर चढ़ने लगे। ऊपर पहुँच कर देखा तो वहाँ अनेक अभिभ्रित शिलाएँ पड़ी थीं। त्रिदण्डी ने एक गिला को मंत्र बल से हटाया तो दुर्ग पाताल नाम की एक भयंकर कदरा दिखायी दी। हम दोनों उस कन्दरा में प्रवेश कर गये। बहुत दूर तक चलने के बाद हम एक रस-कूप के पास पहुँचे। मैंने उसमें झाँक कर देखा तो ऐसा मालूम पड़ा मानो नरक का द्वार ही हो—घुप-अँधेरा था उसमें।

त्रिदण्डी ने मुझसे कहा—‘इस कूप में उतर कर तू एक तुवी रस भर ले।’ मैं तो तैयार था ही तुरन्त स्वीकृति दे दी। एक छीके (माँची) में बिठाकर उसने मुझे उतारा। वहाँ मैंने उसमें घूमती एक जजीर और रस देखा। ज्यों ही मैं तुवी में रस भरने लगा किसी ने मुझे रोकने का प्रयास किया। मैंने पूछा—

—त्रिदण्डी ने मुझे रस लेने के लिए उतारा है, तुम क्यों रोकते हो ?

—इसीलिए तो रोकता हूँ।

—तुम हो कौन ?

—मैं भी तुम्हारी ही तरह धन का लोभी हूँ ।

—तुम इस कूप में कैसे आ पड़े ?

—इसी त्रिदण्डो ने मुझे गिरा दिया । मुझे भी इसने तुम्हारी ही तरह इस कूप में उतारा था । जब मैंने इसे रस की तुबी दे दी तो इसने बजाय मुझे निकालने के इस कुएँ में धकेल दिया । इस रस में पड़े रहने के कारण मेरा माँस गल गया है । इसीलिए कह रहा हूँ कि तुम रस में हाथ मत डालो । मुझे तुबी दे दो मैं भर दूँगा ।

मैंने उसे तुबी दे दी और उसने रस भर दिया । तुबी एक हाथ में लेकर दूसरे हाथ से मैंने रस्सी हिला दी । त्रिदण्डी ने रस्सी खींची । जैसे ही मैं ऊपर पहुँचा तो वह रस-तुबी माँगने लगा । मैं पहले ही सतर्क हो चुका था, अतः बोला—

—पहले मुझे बाहर निकालो तब रस-तुबी दूँगा ।

वह मुझसे तुबी माँगता और मैं स्वयं को बाहर निकालने की बात कहता । इसी पर बात बढ़ गई । मैंने रस कुएँ में ही फेंक दिया । क्रोधित होकर त्रिदण्डी ने मुझे माँची सहित ही कुएँ में धकेल दिया । भाग्य से मैं रस में न गिर कर कुएँ की पहली वेदी^१ पर ही गिरा । त्रिदण्डी क्रोध में पैर पटकता हुआ चला गया ।

वह अकारण मित्र मुझसे बोला—

—भाई ! दुःख मत करो । यहाँ एक 'घो' रस पीने आती है । उसकी पूँछ पकड़ कर निकल जाना । जब तक वह नहीं आती तब तक प्रतीक्षा करो ।

मैं उस वेदी पर बैठकर नवकार मन्त्र जपने लगा । वह पुरुष अपनी आयु पूरी करके मर गया और मैं भी अपने दिन गिनने लगा । इतने में एक भयंकर शब्द मेरे कानों में पड़ा । मैं समझ गया कि 'घो' आ

१ वेदी या वेदिका—कुएँ की दीवारों में एक-दो पुरुषों के बैठने योग्य स्थान को कहते हैं । ये स्थान कुएँ की सफाई आदि करने के समय पुरुषों के बैठने के काम आता है । उसमें सफाई आदि में सुविधा हो जाती है ।

गई है। जेमे ही वह पानी पीकर चली मैंने उसकी पूछ पकड ली और बाहर निकल आया।

कुएँ मे निकल कर वन मे आया तो वहा यमराज के समान एक भैसा मुझ पर टूट पडा। बडी कठिनाई मे एक गिला पर चढा तो वह अपने सींगो मे गिला को ही उखाडने लगा। तभी यमपाश के समान एक काला भुजग सर्प आ निकला। उसने भैसे को पकडा तो दोनो लडने लगे। मैंने अवसर का लाभ उठाया और वहाँ से निकल भागा। वन के प्रान्त भाग मे पहुँचा तो मेरे मामा के मित्र रुद्रदत्त ने मुझे सँभाला।

मै द्रव्यार्थी तो था ही। कुछ दिन बाद रुद्रदत्त के साथ सुवर्णभूमि की ओर चल दिया। मार्ग मे ईपुवेगवती नदी को पार करके गिरिकूट पहुँच गये और वहाँ से एक वन मे। टकण देश मे आकर हमने दो मेढे खरीदे। उन पर बैठकर अजमार्ग^१ तय किया। जब हम लोग एक खुने स्थान पर पहुँच गये तो रुद्रदत्त ने कहा—

—अब इन बकरो (मेढो) को मार डालो।

—क्यो ?—मैंने विस्मित होकर पूछा।

यहाँ मे आगे पैदल चल कर बाहर निकलने का रास्ता नही है।

—तब हम लोग बाहर कैसे निकलेगे ?

रुद्रदत्त ने बताया—

—इन मेढो को मारकर इनका माँस तो बाहर निकाल कर फेक देंगे और इनकी खाल ओढ़कर बैठ जायेंगे। माम लोलुपी भारड पक्षी

१ अजमार्ग ने आश्रय ऐमे मकोर्ण और नीचे मार्ग मे हे जहाँ केवल बकरा (मेढा) ही चल सकता है, हाथी, घोडा, मनुष्य आदि नही। यह मार्ग इतना मकरा जीर नीचा होना हे कि मनुष्य नीचा खडा नही हो सकता।

हमें मास का टुकड़ा समझकर पजों में पकड़कर ले जायेंगे और इस तरह हम बाहर निकल जायेंगे।

मातुल (मामा) के मित्र रुद्रदत्त की योजना सुनकर मैं चकित रह गया। मेरी आँखें उन निरीह पशुओं की हत्या की बात सुनकर डब-डबा आई। रुद्रदत्त ने तब तक अपने मेढे के पेट में चाकू मार कर उसका प्राणांत कर दिया। उसके आर्तनाद से मेरे आँसू वह निकले। मेरा वाला मेढा भी मुझे कातर दृष्टि से देख रहा था। मैं मन ही मन सोच रहा था कि कितना स्वार्थी है मनुष्य जो धन प्राप्ति के लिए दूसरों का अकारण ही घातक बन जाता है।

रुद्रदत्त ने मुझसे कहा—

—अब देर मत करो, ये चाकू लो और मेढे का काम तमाम कर दो।

—मैं इसे नहीं मार सकूँगा।

—तो हम लोग निकलेंगे कैसे ?

—न निकले, यही मर जाये, किन्तु यह हिंसा मैं नहीं कर सकता।

—तुम मत करो मैं ही इसे मारे देता हूँ।

यह कहकर रुद्रदत्त ने मेढे को पकड़कर अपनी ओर खींचा, मेढे ने मेरी ओर देखकर पुकार की। मानो मुझसे वचा लेने की प्रार्थना कर रहा हो। मैंने दुखी स्वर में कहा—

— मित्र ! मैं तुम्हारे प्राण तो नहीं बचा सकता किन्तु परलोक के पाथेय रूप सबल तुम्हें दे सकता हूँ।

मैं उसे नवकार मन्त्र सुनाता रहा और रुद्रदत्त ने उसे मार डाला।

एक मेढे की खाल रुद्रदत्त ने ओढ़ ली और दूसरे की मुझे उढ़ा दी। मास लोलुपी भारड पक्षी आये और हम दोनों को उठा ले गये। मैं उनके पजे से छूटकर एक तालाब में जा गिरा। वहाँ से निकला तो सामने एक ऊँचा पर्वत खड़ा था। और कोई मार्ग न देखकर मैं उस

पर चढा तो पर्वत गिखर पर पहुँचते ही मेरी आँखें भीतल हो गई, हृदय प्रसन्न हो गया और मैं अपने सब कण्ठ भूल गया। सामने एक मुनि कायोत्सर्ग में लीन खड़े थे। मैंने उनकी वदना की। वे 'वर्म लाभ' रूप आशीष देकर बोले—

—अरे चारुदत्त ! तुम इस दुर्गम भूमि में कहाँ से आ गये। देव, विद्याधर और पक्षियों के अलावा कोई दूसरा तो यहाँ आ ही नहीं सकता ?

मैंने विनम्रतापूर्वक अपनी सपूर्ण गाथा कह सुनाई। अपना नाम सुनकर मैं समझा कि मुनिराज अवधिजानी हैं। मेरी इस भावना को उन्होंने मेरी मुख-मुद्रा में जान लिया और भ्रम निवारणार्थ बोले—

—भद्र ! मैं वही अमितगति विद्याधर हूँ जिसे तुमने एक बार छुड़ाया था। इस कारण मैं तुम्हें पहने से ही जानता हूँ।

—आपने मयम कब ले लिया ?—मैंने जिज्ञासा प्रगट की तो उन्होंने बताया—

—तुम्हारे पास से चलकर मैं अपनी स्त्री मुकुमालिका की खोज में लगा। वह मुझे मिली अष्टापद पर्वत के समीप। धूर्मगिख उसे छोड़कर भाग गया था। मैं स्त्री के साथ अपने नगर लौट गया। कुछ दिन बाद पिता ने मुझे राज्य देकर हिरण्यकुम्भ और सुवर्णकुम्भ नाम के दो चारण मुनियों के पास व्रत ग्रहण कर लिए। मेरी मनोरमा नाम की पत्नी से मिहयगा और वराहग्रीव दो पुत्र हुए तथा विजयसेना नाम की दूसरी स्त्री से गधर्वसेना नाम की एक पुत्री। गधर्वसेना गायन विद्या में अति चतुर है। अपने पुत्रों को राज्य और विद्या देकर मैं अपने पिता के गुरुओं के पास प्रव्रजित हो गया।

—यह कौन सा स्थान है ?—मैंने पूछा।

—लवण समुद्र के बीच कुभकटक द्वीप और इसमें यह है कर्कटक नाम का पर्वत।—उत्तर मिला।

उसी समय दो विद्याधर वहाँ आये और मुनि को प्रणाम किया। उनका रूप मुनि के समान ही था। मैंने मन में जान लिया कि ये दोनों ही मुनिश्री के पुत्र हैं। तभी उनसे मुनिश्री ने कहा—

—इस चारुदत्त को भी प्रणाम करो।

वे दोनों 'हे पिता ! हे पिता !' कहकर मेरे पैरों में गिर पड़े। मैंने उन्हें स्नेहपूर्वक उठाया और अपनी ही वगल में बिठा लिया।

इसी दौरान आकाश से एक विमान उतरा। उसमें से एक देव ने निकल पहले मुझे प्रणाम किया और फिर प्रदक्षिणापूर्वक मुनि की वन्दना की। इस विपरीत बात पर दोनों विद्याधर विस्मित रह गये। उन्होंने पूछा—

—हे देव ! तुमने वन्दना में उलटा क्रम क्यों किया ? सकल सयमी की वन्दना पहले की जाती है, न कि बाद में।

—विद्याधर ! चारुदत्त मेरा धर्मगुरु है। इसी कारण मैंने इसे पहले नमन किया है। देव ने उत्तर दिया।

जिज्ञासा जाग उठी दोनों विद्याधरों की। देव अपना पूर्व वृत्तान्त सुनाने लगा

काशीपुर में दो सन्यासी रहते थे। उनकी बहने थी सुभद्रा और सुलसा। दोनों ही वेद-वेदागों की प्रकाड पंडिता थीं। अनेक वादी उनसे पराजित हो चुके थे। एक बार वाद-विवाद हेतु आया याज्ञवल्क्य नाम का सन्यासी। शर्त तय हुई कि हारने वाला विजयी का दासत्व स्वीकार करेगा। वाद हुआ। सुलसा पराजित होकर याज्ञवल्क्य दासी बन गई। तरुणी दासी सुलसा का सान्निध्य पाकर सन्यासी याज्ञवल्क्य की कामाग्नि प्रज्वलित हो गई। स्वामी का दासी पर पूर्ण अधिकार होता ही है। सन्यासी निरावाध काम सेवन करने लगा—परिणाम प्रगट हुआ एक पुत्र के रूप में। पुत्र ने उनको दुहरी विपत्ति में डाल दिया—एक तो निरावाध भोग में बाधा और दूसरी लोकापवाद। ऐसे कटक को कौन गले बांधे ? सन्यासी जी ने पुत्र को

एक पीपल के वृक्ष के नीचे छोड़ा और चल दिये मुलसा को साथ लेकर दूसरे स्थान को ।

सुभद्रा सन्यासी याज्ञवल्क्य की इस करतूत में अनभिज्ञ नहीं थी । उसने पुत्र को पीपल के वृक्ष के नीचे से उठाया और उसे पालने लगी । नाम रखा पिप्पलाद और उसे वेद-वेदांग का प्रकांड विद्वान बना दिया । उसकी ख्याति सुनकर वाद हेतु मुलसा और याज्ञवल्क्य भी आये । पिप्पलाद ने उन्हें पराजित कर दिया ।

जब उसे मालूम हुआ कि 'यही दोनों मेरे माता-पिता हैं तो उसे बहुत क्रोध आया । क्रोध की प्रचंड अग्नि में झुलसते हुए उसने मातृमेघ और पितृमेघ यज्ञ का प्रचार किया और मुलसा तथा याज्ञवल्क्य को यज्ञाग्नि में स्वाहा कर दिया ।

देव ने विद्याधरो को सवोधित करके कहा—उस समय मैं पिप्पलाद का शिष्य था और मेरा नाथ था वाग्बलि । उन यज्ञों की अनुमोदना और सहायक होने के कारण मैंने नरक के घोर कण्ठ झेले । वहाँ से निकला तो एक देश मे मेठा हुआ । जब रुद्रदत्त ने मुझे मारा तब इसी चारुदत्त ने मुझे नवकार मन्त्र सुनाया जिसके प्रभाव से मुझे देव पर्याय की प्राप्ति हुई । परम कल्याणकारी अहिंसा धर्म में रुचि जगाने वाला यह चारुदत्त मेरा धर्मगुरु है । इसी कारण मैंने प्रथम इसे नमस्कार किया ।

यह सम्पूर्ण वृत्तान्त सुनकर विद्याधर बोले—

—चारुदत्त तो हमारा भी उपकारी है । हमारे पिता को भी एक बार इसने बन्धनमुक्त किया था ।

सेठ चारुदत्त कुमार वसुदेव को सवोधित करके कहने लगा—इसके बाद देव ने मुझसे पूछा—

—भद्र ! मैं आपकी क्या सेवा करूँ ?

तब मैंने उसे यह कह कर विदा कर दिया—'योग्य समय पर आना ।' देव अन्तर्धान हो गया और विद्याधर मुझे अपने नगर शिव-मंदिर में ले गये । वहाँ उन्होंने मुझे बड़े सत्कारपूर्वक बहुत दिन तक

रखा । जब मैंने अपने नगर आने की इच्छा प्रकट की तो उन दोनों विद्याधरो ने मुझे अपनी वहन गधर्वसेना देते हुए बताया कि दीक्षा लेते समय हमारे पिता ने हमसे कहा था कि 'एक जानी ने गधर्वसेना का विवाह भूमिगोचरी यदुवशी क्षत्रिय के साथ होना बताया है । इसलिए इसे चारुदत्त को दे देना ।' अब आप इसे अपने साथ ले जाइये ।

मैंने भी सोचा कि ले चलूँ, मेरा क्या जाता है । किन्तु पुनः—

—मैं कैसे जानूँगा कि यही गधर्वसेना का पति है ।

विद्याधरो ने कहा—

—हमारी वहन वीणा-वादन और सगीत विद्या में अति निपुण है । इस विद्या में इसे पराजित करने वाला वसुदेव कुमार ही है और कोई नहीं ।

मैंने गधर्वसेना को साथ ले जाने की स्वीकृत दे दी । तभी वह पहले वाला देव^१ और विद्याधर मुझे विमान में विठाकर यहाँ लाये और मोती, माणिक आदि रत्न तथा करोड़ों स्वर्ण मुद्राएँ देकर अपने-अपने स्थानों को चले गये ।

प्रातः काल मैं अपने स्वार्थी मामा, पत्नी मित्रवती और अखण्ड-वेणी बधवाली^२ वेश्या वसन्तसेना से मिला और सुख से रहने लगा ।

हे वसुदेव कुमार ! यही है गधर्वसेना का वश परिचय और न बताने पर भी तुम्हारा नाम जानने का कारण । अब तुम वणिक् पुत्री समझ कर इसका निरादर मत करना ।

यह सपूर्ण कथा कहकर सेठ चारुदत्त चुप हो गया ।

गधर्वसेना का वश परिचय पाकर वसुदेव हर्षित हुए । उनकी प्रीति और भी बढ़ गई ।

—त्रिषष्टि० ८/२

—वसुदेव हिंडी, गन्धर्बदत्ता लभक

१ उस मेटे का जीव जिसे चारुदत्त ने मरते समय नवकार मन्त्र सुनाया था ।

२. चारुदत्त के वियोग में वसन्तसेना ने अपनी वेणी नहीं बाँधी थी । इसी-लिए उसे अखण्ड वेणीबध वाली कहा गया है ।

वसुदेव के अन्य विवाह

७.

—‘रथ को वेग से चलाओ ।’ लाल नेत्र करके गधर्वसेना ने सारथी को आज्ञा दी ।

इस आज्ञा का कारण था एक मातंगी की ओर कुमार वसुदेव का आकृष्ट होना । मातंगी भी उनकी ओर अनुरागपूर्वक देख रही थी । दोनों की ही यह कामपीडित दशा गधर्वसेना न देख सकी । स्त्री अपनी सपत्नी को वरदाग्त कर भी नहीं सकती । कैसे छिन जाने दे अपना एकाधिकार ?

गधर्वसेना अपने पति वसुदेव कुमार के साथ वसत उत्सव मनाने उद्यान जा रही थी । बीच में ही यह वाधा आ टपकी तो उसे रोष आगया ।

उद्यान में गधर्वसेना के साथ के वसन्त क्रीडा करके वसुदेव वापिस चपा नगरी लौटे । उसी समय एक वृद्धा मातंगी ने आशीष देकर उनसे कहा—

—मेरी बात ध्यान पूर्वक सुनो ।

—कहिए, क्या कहना चाहती हैं, आप ? वसुदेव ने —उत्तर दिया ।

मातंगी कहने लगी—

पूर्व में आदिजिन भगवान ऋषभदेव ने दीक्षा ग्रहण करते समय जब भरतक्षेत्र के राज्य का विभाजन किया था तब दैवयोग से नमि

और विनमि' वहाँ नहीं थे। दीक्षित ध्यान मग्न भगवान के पास जब वे राज्य की याचना करने लगे तो उस समय प्रभु दर्शनो के निमित्त आये धरणेन्द्र ने उन्हें वैताढ्य गिरि की उत्तर और दक्षिण दोनों श्रेणियों का अलग-अलग राज्य तथा गौरी प्रजप्ति अदि अडतालीस हजार विद्याएँ दी। नमि का पुत्र मातंग हुआ। उसके वंश में

१ नमि और विनमि विद्याधर वंश के जाटि पुरुष थे। इनकी कथा संक्षेप में इस प्रकार है —

प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव के दीक्षा ग्रहण करते समय प्रभु के साथ चार हजार अन्य राजा भी दीक्षित हुए थे। उनमें कच्छ और महाकच्छ भी थे। जब ये सभी क्षुधा-तृषा परीसह को न सह सके तो तापस होगए। इन्हीं कच्छ महाकच्छ के पुत्र थे नमि और विनमि।

प्रभु के दीक्षा अवसर पर ये दोनों भाई किसी कार्यवश अन्यत्र गये हुए थे। जब वापिस आए तो उन्होंने अपने पिता को तापस वेण में देखा।

वे दोनों राज्य न पाने से किञ्चित् दुःखी हुए। पर सोच-विचार कर भगवान ऋषभदेव के पान जा पहुँचे और राज्य की याचना करने लगे। प्रभु तो समार से निलिप्त थे अतः मौन हो गये। उनकी याचना का कोई उत्तर नहीं दिया। नमि-विनमि प्रभु के साथ ही लगे रहे। वे जहाँ-जहाँ गमन करते थे, दोनों भी उनके पीछे-पीछे चलते किन्तु अपनी राज्य-याचना की रट कभी न भूलते।

एक बार धरणेन्द्र प्रभु के दर्शनो के लिए आया तो इन्हें राज्य माँगते देखा। उसने बहुत समझाया कि भगवान के पास राज्य कहाँ रखा है, वे तो मसार से निम्पृह हैं किन्तु ये दोनों नहीं माने। प्रभु के प्रति अविचल भक्ति देखकर धरणेन्द्र प्रसन्न हो गया और उसने दोनों भाइयों को वैताढ्यगिरि की दोनों श्रेणियों का राज्य दे दिया साथ ही ४८००० विद्याएँ भी। [विस्तार के लिए देखिए त्रिपण्डित १/२ गुजराती अनुवाद पृष्ठ ६४-६७]

इस समय प्रहसित नाम का विद्याधर राजा है। उसकी हिरण्यवती नाम की स्त्री मैं हूँ। मेरे पुत्र का नाम सिंहदण्ड है और उसकी पुत्री है नीलयशा। वही नीलयशा तुमने उद्यान में जाते समय देखी थी।

मातंगी ने वसुदेव को सवोधित किया—

—हे कुमार ! नीलयशा तुम्हें देखकर कामपीडित हो गई है। तुम उसका पाणिग्रहण करो।

पूरी घटना सुनने के बाद वसुदेव कुमार बोले—

—विवाह का निर्णय अचानक कैसे हो सकता है ? शुभ लग्न आदि भी तो आवश्यक है।

—इस समय मुहूर्त शुभ ही है।

—कुछ समय के लिए ठहर जाओ।

—वह कन्या विलव नहीं सह सकती। उसकी इच्छा शीघ्र ही पूर्ण करिए, आपकी अति कृपा होगी।

वसुदेव इस आग्रह से कुछ चिढ़ से गए। उन्होंने रुखाई से उत्तर दिया—

—मैं आपको विचार कर उत्तर दूँगा। फिर कभी आइये मेरे पास।

मातंगी वसुदेव की रुखाई न सह सकी। उसके आग्रह का यह रुखा उत्तर उसे खल गया। कड़े स्वर में उसने प्रत्युत्तर दिया—

—मैं तुम्हारे पास आऊँगी या तुम मेरे पास, यह तो समय ही बताएगा।

यह कहकर मातंगी हिरण्यवती वहाँ से चली गई।

×

×

×

श्मशान में घोर रूप वाली मातंगी हिरण्यवती के सम्मुख स्वयं को पाकर वसुदेव कुमार अचकचा गये। तभी मातंगी का स्वर सुनाई पड़ा—हे चन्द्रवदन ! बहुत अच्छा किया, जो तुम यहाँ आये।

सोचने लगे वसुदेव—मैं यहाँ किस प्रकार आया ? मैं तो गन्धर्व-सेना के पास सो रहा था । इधर-उधर दृष्टि दौड़ाई तो पार्श्व में ही एक प्रेत खड़ा दिखाई पड़ा । विजली सी कौंधी मस्तिष्क में और उन्हें सब कुछ याद आ गया । वह जल क्रीड़ा से थक कर गन्धर्वसेना की वगल में सो रहे थे । तभी उन्हें ऐसा अनुभव हुआ कि कोई उनसे कह रहा है 'उठ, उठ' और फिर किसी ने उन्हें उठाया और ले चला । गहरी निद्रा में निमग्न होने के कारण वे प्रतिरोध न कर सके । इस प्रेत के माध्यम से ही हिरण्यवती विद्याधरी ने मुझे बुलवा मँगाया है । देखते-देखते प्रेत अन्तर्धान हो गया । वसुदेवकुमार को विचारमग्न देखकर हिरण्यवती पुन बोली—

—कुमार ! आप किस सोच में पड़ गये ?

—सोच रहा हूँ कि मुझे क्यों बुलाया गया है ?

—मुझे आप पहिचान तो गये ही होंगे ?

—हाँ !

—तो मेरी इच्छा भी जान गये होंगे ? नीलयशा से लग्न करिए ।

कुमार वसुदेव कुछ उत्तर देते उससे पहले ही नीलयशा अपनी सखियों सहित वहाँ आ पहुँची । उसकी पितामही (दादी) हिरण्यवती ने पौत्री नीलयशा से कहा—

—अपने पति को ले जाओ ।

पितामही की आज्ञा से नीलयशा कुमार वसुदेव को लेकर आकाश मार्ग से चली । तत्काल हिरण्यवती भी उनके साथ चल दी ।

दूसरे दिन प्रातः काल हिरण्यवती ने वसुदेव कुमार से कहा—

—कुमार ! मेघप्रभ वन से ढका हुआ यह ह्रीमान पर्वत है । इस गिरि पर ज्वलनवेग विद्याधर का पुत्र अगारक विद्याभ्रष्ट हुआ रह रहा है । पुन विद्याधरपति होने के लिए वह विद्या साधन कर रहा है । वैसे विद्या मिद्धि में उसे बहुत समय लगेगा किन्तु यदि आपके

दर्शन हो जायेगे तो उसे जल्दी ही विद्या सिद्ध हो जायेंगी । इसलिए दर्शन देकर उसका उपकार करिए ।

—अगरक को देखने की अभी आवश्यकता नहीं है ।—वसुदेव ने उत्तर दिया ।

हिरण्यवती उन्हें लेकर वैताढ्य गिरि पर शिवमंदिर नगर में गई । वहाँ से सिंहदष्ट राजा ने उन्हें अपने महल में ले जाकर नीलयगा का लग्न उनके साथ कर दिया ।

कुमार वसुदेव के विवाह को कुछ ही दिन व्यतीत हुए कि एक दिन उन्हें बाहर कोलाहल सुनाई पड़ा । कुमार ने द्वारपाल से इसका कारण पूछा तो वह बताने लगा—

यहाँ शकटमुख नाम का एक नगर है । उसमें राज्य करता था राजा नीलवान् । उसकी रानी नीलवती के उदर से एक पुत्री हुई नीलाजना और पुत्र नील । दोनों बहन-भाइयों में यह तय हो गया कि अपने पुत्र-पुत्रियों का विवाह आपस में करेंगे । नील का पुत्र हुआ नीलकण्ठ और नीलाजना की पुत्री नीलयशा । पहले वायदे के अनुसार नील ने अपने पुत्र नीलकण्ठ के लिए नीलयगा की याचना की । नीलयगा के पिता सिंहदष्ट ने बृहस्पति नाम के मुनि से पूछा तो उन्होंने बताया—‘नीलयशा का पति वसुदेव कुमार होगा ।’ इसीलिए नीलयगा का लग्न आपके साथ हुआ । विवाह का समाचार सुनकर नील युद्ध करने आया किन्तु सिंहदष्ट ने उसे पराजित कर दिया । यही कारण है इस कोलाहल का ।

वसुदेव कुमार द्वारपाल के इस कथन से सतुष्ट हो गए । एक बार उन्हें शरद ऋतु में विद्यासिद्धि और ओषधियों के लिए ह्नीमान पर्वत को विद्याधरो के समूह जाते दिखाई दिये । वसुदेव को भी विद्या सीखने की इच्छा जाग्रत हो आई । उन्होंने नीलयगा से कहा—‘मुझे विद्या सिखाओ’ नीलयशा राजी हो गई ।

नीलयशा और वसुदेव गये तो ह्नीमान पर्वत पर विद्यामिद्धि के लिए किन्तु करने लगे वहाँ रमण—इन्द्रिय सुख-भोग । भोग से तनिक निवृत्त हुए तो एक सुन्दर मयूर दिखाई पडा । उसे पकड़ने नीलयशा दौडी तो मयूर उसे अपनी पीठ पर विठा कर ने उडा । पीछे-पीछे वसुदेव भी दौडे । वे भूमि पर दौड रहे थे और मयूर आकाश मे उड रहा था । मयूर आकाश मे ही अदृश्य हो गया और वसुदेव एक नेहडे ने जा पहुँचे । गोपिकाओ ने सत्कारपूर्वक उन्हे रात्रि व्यतीत करने की आज्ञा दे दी ।

प्रात हुआ तो वसुदेव दक्षिण दिशा की ओर चल दिये । गिरि तट पर एक गाँव आया । वहाँ उच्च स्वर मे वेद ध्वनि सुन कर वसुदेव ने एक ब्राह्मण से इसका कारण पूछा । ब्राह्मण ने बताया—

रावण के समय मे दिवाकर नाम के एक विद्याधर ने अपनी पुत्री का विवाह नारद के साथ कर दिया था । उस वश मे इस समय सुरदेव नाम का ब्राह्मण हुआ । यही इस ग्राम का प्रमुख ब्राह्मण है । उसकी क्षत्रिया नाम की स्त्री से सोमश्री नाम की एक पुत्री हुई । सोमश्री वेद की प्रकाड विद्वान है । उसके विवाह के सबध मे कराल नाम के ज्ञानी से पूछा तो उसने कहा—‘जो इसे वेद मे जीत लेगा, वही इसका पति होगा ।’ उसी के परिणय के लिए अनेक युवक वेदाभ्यास कर रहे हैं ।

वसुदेव ने पूछा—

—यहाँ वेदाचार्य कौन है ?

—ब्रह्मदत्त उपाध्याय । —ब्राह्मण का उत्तर था ।

कुमार वसुदेव ने ब्राह्मण का वेश बनाया और ब्रह्मदत्त के पास जा पहुँचे । कहने लगे—

—मैं गाँतम गोत्री स्कन्दिल ब्राह्मण हूँ । कृपया मुझे वेदाभ्यास कराइये ।

ब्रह्मदत्त ने उन्हें शिष्य बना लिया। थोड़े ही दिनों में वसुदेव कुमार ने वेद के विद्वान बनकर सोमश्री को वाद में पराजित किया और उसके साथ विवाह करके मुखपूर्वक रहने लगे।

—त्रिषष्टि०।८२

—वसुदेव हिंडी, नीलयशा एव
सोमश्री लम्भक

२

विशेष—वसुदेव हिंडी में मातंगी के स्थान पर चाडाली शब्द आया है। इसी (नीलयशा) लम्भक में भगवान् ऋषभदेव का (पूर्वजन्मो महित) विस्तृत वर्णन है।

(१) सोमश्री के पिता का नाम सुरदेव के स्थान पर देवमेन है।

(२) सोमश्री लम्भक में नारद-पर्वत विवाद का विस्तृत वर्णन है।

वसुदेव ने इसका वर्णन करके सोमश्री के पिता को पिता को तत्त्व ज्ञान दिया।

उद्यान में इन्द्रगर्मा इन्द्रजालिक के आश्चर्यजनक करतबों को देखकर वसुदेव कुमार ठगे से रह गये। इस विशिष्ट विद्या को सीखने की इच्छा जागृत हुई। तमाशा खत्म होने पर बोले—

—भद्र ! यह विद्या मुझे भी सिखा दो ।

—सीख तो सकते हैं आप, किन्तु साधना थोड़ी कठिन है ।

—इन्द्रजालिक ने उत्तर दिया ।

—कुछ भी हो यदि आप सिखाएँ तो मैं अवश्य सीख लूँगा ।

—यदि आप दृढ प्रतिज्ञ हैं तो इस मानसमोहिनी विद्याको ग्रहण कीजिए ।

—इसकी साधना-विधि ?—वसुदेव ने पूछा ।

इन्द्रगर्मा बताने लगा—

—इस विद्या का साधन सायंकाल के समय प्रारम्भ किया जाता है और प्रातः सूर्योदय तक सिद्ध हो जाती है। समय तो केवल एक रात का ही लगता है परन्तु उपद्रव बहुत होता है। इस कारण किसी सहायक का होना आवश्यक है ।

—किन्तु मेरा तो कोई सहायक नहीं है। परदेशी का मित्र भी कौन हो सकता है ?

—मैं वनूँगा आपका सहायक । आप चिन्ता न करें । विद्या सिद्ध करना प्रारम्भ कर दें । मैं और मेरी स्त्री वनमालिका आपकी सहायता करेंगे ।—इन्द्रगर्मा ने आश्वासन दिया ।

आश्चर्य होकर वसुदेव विद्या-जाप करने लगे और सहायक बने इन्द्रगर्मा और उनकी पत्नी वनमालिका ।

रात्रि के अन्धकार में अपने अन्य अनुचरो की सहायता से इन्द्र-शर्मा ने जप करते हुए वसुदेव को शिविका में बिठाया और ले चला । वसुदेव समझे कि यह देवकृत उपद्रव है इसलिए वे जाप में ही लीन रहे ।

रात्रि बीती । सूर्योदय हुआ । वसुदेव शिविका से कूद पड़े । वे समझ गये कि यह उपसर्ग नहीं, इन्द्रशर्मा की चाल है । उन्हें कूदते देखकर इन्द्रशर्मा आदि भाग खड़े हुए ।

वसुदेव सध्या समय तृण गोपक नामक स्थान पर पहुँचे ओर एक खाली मकान में सो गये ।

अर्ध रात्रि के भयानक अन्धकार में एक भयानक राक्षस आया और उन्हें उठाकर पटक दिया । अकस्मात् प्रहार से वसुदेव की निद्रा टूट गई । जब तक वे सँभल पाते एक लात पड़ी, लुढ़ककर वसुदेव दूर जा गिरे ।

विद्युत् की सी फुर्ती में वे सीधे खड़े हो गये । उछलकर प्रतिद्वन्द्वी पर मुष्टि प्रहार किया । वज्र के समान भयकर आघात से वह प्रतिद्वन्द्वी दूर जा गिरा । अब सँभलने का अवसर न दिया वसुदेव ने । पैर पकड़ कर उठाया और जमीन पर दे मारा । एक बार नहीं, दो बार नहीं तब तक मारते रहे जब तक कि उसके प्राण ही न निकल गये । भयंकर चीखों से रात्रि का निस्तब्ध वातावरण भयंकर हो गया ।

प्रातः रवि किरणों के साथ ही नगर-निवासी निकले तो उस नर-पिशाच को मरा देखकर बड़े प्रसन्न हुए । वसुदेव का सम्मान किया । बड़े आदरपूर्वक उन्हें अपने पास रखा । कुमार ने पूछा—

—यह नर-पिशाच कौन है ?

उनमें से एक पुरुष बोला—

कलिग देश के काचनपुर नगर में जित शत्रु नाम का एक पराक्रमी राजा था । उसके पुत्र का नाम था सोदास । सोदास मास लोलुपी था । एक दिन भी उसे बिना मास के चैन नहीं पड़ता । उसका रसोइया नित्य प्रति उसके लिए एक मयूर का वध करता । एक दिन रसोई

मे से मयूर को वितली ले गई तो सोडये ने एक मृत गिणु का मास पकाकर खिला दिया। उस दिन से सोदाम को मानव-मास खाने की लत लग गई। उसका यह पाप कब तक छिपता ? एक दिन राजा को खबर लग गई तो उसने उसे अपने राज्य से निकाल बाहर कर दिया।

वह दुष्ट सोदास यहाँ आ बसा और रोज रात को पाँच-छह मनुष्यों को खा जाता था। आपने उसे मार कर हम लोगो को अभय कर दिया।

सब लोगो ने मिलकर वसुदेव को पाँच सौ कन्याएँ दी।

×

×

×

तृणशोषक स्थान पर एक रात्रि व्यतीत कर प्रातः श्री वसुदेव चल दिये। अचल ग्राम पहुँचे तो वहाँ सार्थवाह ने अपनी पुत्री मित्रश्री के साथ उनका विवाह कर दिया।^१

आगे चल कर वसुदेव वेदसाम नगर आये। वहाँ उन्हें वनमाला (वनमालिका, इन्द्रजालिक इन्द्रगर्मा की पत्नी) दिखाई पड़ी। वनमाला भी उन्हें देखकर बोली—‘इधर आओ, कुमार ! इधर आओ !’

यह कह कर वसुदेव को वह अपने घर में आई और अपने पिता से बोली—

—पिताजी ! यह वसुदेव कुमार है।

वसुदेव कुमार इन्द्रशर्मा और उसकी स्त्री के व्यवहार से चकित थे। एक ओर तो इन्द्रशर्मा कपटपूर्वक उनका हरण करना चाहता था और दूसरी ओर उसकी स्त्री वनमाला उन्हें आदरपूर्वक अपने घर लिवा लाई। उससे भी अधिक आश्चर्य हुआ उन्हें वनमाला के पिता द्वारा आदर-सत्कार पाकर। वे इस गौरखन्धे को समझना चाहते थे। उन्होंने वनमाला के पिता से कहा—

१ किसी ज्ञानी ने सार्थवाह को यह बताया था कि मित्रश्री का विवाह वसुदेव कुमार के साथ होगा। इसी कारण मित्रश्री का विवाह उनके साथ हुआ। [त्रिपट्टि ८/२ गुजराती अनुवाद पृष्ठ २३४]

—मैं आप लोगो के व्यवहार के रहस्य को नहीं समझ पाया ।

—कुमार ! हमारे व्यवहार मे कोई रहस्य नहीं है ।

—यह रहस्य नहीं तो ओर क्या है ? आपका जामाता मुझे कपट पूर्वक हरण करके न जाने कहाँ न जाना चाहता था । आपकी पुत्री आग्रहपूर्वक यहाँ न आई और आप मेरा आदर इतना अविकर रहे हैं कि

—कि क्या ? कुमार ! आगे कहिए ।

—कि मुझे इसम भी कोई पड्यन्त्र नजर आने लगा है ।

—पड्यन्त्र कुछ भी नहीं है ।

—तो इस व्यवहार का कारण ?

—राजाजा !

—राजाजा ? चौंक कर पूछा कुमार ने—इसका कारण बता सकेंगे, आप ?

—अवश्य । इसीलिए तो पुत्री वनमाला आपको लिवाकर लाई है । यह कह कर, वनमाला का पिता बताने लगा—

इस नगर के राजा का नाम है कपिल और उसकी एक पुत्री है कपिला । कपिला युवती हुई तो उसके वर के सवध मे राजा ने एक ज्ञानी से पूछा । उस ज्ञानी ने बताया—‘जो पुरुष तुम्हारे स्फुल्लिगवदन (घोड़े का नाम) अश्व का दमन करेगा वही कपिला का पति होगा ।’

राजा ने पुन पूछा—वह पुरुष इस समय कहाँ है ?

ज्ञानी ने बताया—समीप ही गिरिकूट ग्राम मे ।

यह जानकर राजा कपिल ने मेरे जामाता इन्द्रजालिक इन्द्रगर्मा को आपको यहाँ लाने के लिए भेजा किन्तु आप बीच मे ही शिविका से कूद कर न जाने कहाँ चले गये ? अब भाग्य से यहाँ आ गये हैं ।

अब तो आप समझ गये होंगे हम लोगो के व्यवहार का रहस्य ।

वसुदेव कुमार ने स्वीकृति मे गरदन हिला दी । इसके पश्चात् उन्होंने उम अश्व का दमन किया और कपिला के साथ विवाह ।

राजा कपिल और उनके साजे अशुमान ने वसुदेव को वही रोक लिया। वसुदेव भी कपिला के साथ सुखपूर्वक रहने लगे। परिणाम सामने आया—एक पुत्र। उस पुत्र का भी नाम रखा गया कपिल।

एक बार वसुदेव हस्तिशाला में जा निकले। वहाँ एक नए हाथी को देखकर उनका मन उस पर सवारी करने को मचल गया। क्षत्रियो के दो ही प्रमुख शौक होते हैं—एक नये-नये अश्वों पर सवारी करना और दूसरा हाथियों पर।

उछलकर वसुदेव हाथी पर जा चढ़े और हाथी उनके बैठते ही आकाश में उड़ने लगा। स्तम्भित रह गये वसुदेव। हाथी तो भूमि पर चलने वाला पशु है, आकाश में कैसे उड़ने लगा? वसुदेव जब तक सँभले तब तक हाथी उन्हें नेकर नगर से बहुत दूर निकल आया था। क्रोध में आकर वसुदेव ने उसके गडस्थल पर मुष्टिका प्रहार किया तो कुजर विह्वल होकर एक तालाब के किनारे जा गिरा।

वसुदेव कूद कर दूर खड़े हो गये। इसी समय हाथी ने रूप बदला और एक मनुष्य अपनी गरदन सहलाता हुआ सामने खड़ा था। कुमार ने डपटकर पूछा—

—कौन हो तुम? क्या नाम है तुम्हारा?

—विद्याधर नीलकण्ठ।^१

जब तक कुमार दूसरा प्रश्न पूछते नीलकण्ठ आकाश में उड़ गया।

वसुदेव उसे देखते ही रह गये। अब क्या हो सकता था? वहाँ से घूमते-घामते वे सालगुह नगर आ पहुँचे। सालगुह नगर का राजा था भाग्यसेन। भाग्यसेन को वसुदेव ने धनुर्वेद सिखाया।

भाग्यसेन के बड़े भाई मेघसेन ने आक्रमण किया तो वसुदेव ने उसे पराजित कर दिया।

१ यह विद्याधर नीलकण्ठ नीलयशा के मामा नील का पुत्र था। यही नीलयशा से विवाह करने आया था जिसे नीलयशा के पिता सिंहदत्त ने पराजित कर दिया था।

मेघसेन ने अपनी पुत्री अश्वसेना और भाग्यसेन ने अपनी पुत्री पद्मावती देकर उनका सम्मान किया।

बहुत समय तक रहने के बाद वे वहाँ से चले तो भद्रिलपुर आ पहुँचे। भद्रिलपुर का राजा पुद्ग पुत्रहोन मर गया था। इस कारण उसकी पुत्री पुद्गा पुरुषवेग में वहाँ का गमन कर रही थी। कुमार को देख कर पुद्गा आकर्षित हो गई। अपनी ओर अनुरागवती जान कर वसुदेव ने उससे विवाह कर लिया।

पुद्गा के गर्भ से एक पुत्र उत्पन्न हुआ। इसका नाम भी रखा गया पुद्ग। यही पुत्र भद्रिलपुर का राजा बना।

कुमार वसुदेव और रानी पुद्गा का समय बड़े आनन्द और सुख से व्यतीत हो रहा था। किन्तु उस में बाधक बनकर आया विद्याधर अगरक।

अगरक विद्याधर वसुदेव से शत्रुता रखता था क्योंकि उन्हीं के कारण तो उसका राज्य छिन जाने वाला था।^१ उसने एक रात सोते हुए वसुदेव का हरण किया और गंगा नदी में फेक दिया।

—त्रिपण्टि० ८/२

—वसुदेव हिंडी मित्रश्री धनश्री लभक-

कपिला लभक

पद्मा लभक

अश्वसेना लभक

पुद्गा लभक



१ अगरक की शत्रुता के कारण का विस्तृत वर्णन देखिए इमी पुस्तक के 'अध्याय ५ वसुदेव का वीणावादन' तथा त्रिपण्टि ८/२ गुजराती अनुवादक पृष्ठ २२३ पर।

२ पद्मा के पिता का नाम वसुदेव हिंडी में अभग्नसेन दिया है।

रात्रि के अधिकार में वसुदेव गंगा नदी के बहाव के साथ बहते रहे। प्रातः का सुनहरा प्रकाश फैला तो वे ईलावर्द्धन नगर के समीप थे।

नदी के जल से निकल कर उन्होंने पंचपरमेष्ठी का ध्यान किया और नगर में जा पहुँचे। कोई ठिकाना नहीं था परदेश में उनका। घूमते-घामते एक सार्थवाह की दुकान के सम्मुख जा खड़े हुए। सार्थवाह ने उनसे पूछा—

—क्या इच्छा है, परदेशी ? क्या चाहिए ?

—चाहिये तो कुछ नहीं। यदि आपकी आज्ञा हो तो मैं आपकी दुकान पर बैठ कर कुछ देर विश्राम कर लूँ।

सार्थवाह भला आदमी था। उसने देखा परदेशी थका हुआ है। सूरत शकल से कुलीन घराने का मालूम पड़ता है। उसने वहाँ बैठने की इजाजत दे दी।

वसुदेव सिकुड़-सिमट कर एक ओर बैठ गये।

उनका बठना था कि दुकान पर ग्राहकों का ताँता लग गया। एक जाता, दो आ जाते, दो जाते, चार आ जाते। शाम को सूर्य डूबा तो सार्थवाह ने अपना हिसाब मिलाया। देखा एक लाख सोनैय्या का शुद्ध लाभ। हैरत में रह गया वह। इतना मुनाफा पहले कभी नहीं हुआ। आज क्या विगेप बात हो गई ? अचानक ही भाग्य कैसे खुल गया ? स्मृति हो आई—एक परदेशी आया था। देखा तो वसुदेव वहाँ चुपचाप बैठे थे।

विद्युत् सी कौंधी सार्थवाह के मस्तिष्क में—इसी महापुरुष के पुण्य का प्रभाव है। उसका विश्वास जम गया।

कुमार वसुदेव ने देखा कि सार्थवाह हिसाब निला चुका है। अब वह दूकान बन्द करके घर जाने वाला है तो बोले—

—सेठजी ! आपकी बड़ी कृपा हुई। अब मैं चलता हूँ।

ध्यान भग सा हुआ सार्थवाह का तुरन्त पूछ बैठ—

—कहाँ जाओगे, इस समय ?

—कही भी पडकर सो रहूँगा।—वसुदेव ने तुरन्त उत्तर दिया।

—नहीं, नहीं, कही जाने की आवश्यकता नहीं। आज से तुम मेरे साथ ही रहोगे।

वसुदेव को क्या एतराज था। उन्हें तो परदेग में किसी आश्रय की आवश्यकता थी ही। सार्थवाह ने भी अपना सबसे सुन्दर रथ मँगाया और उसमें बिठाकर अपने घर ले गया। कुछ दिन बाद उसने अपनी पुत्री रत्नवती का विवाह भी उनके साथ कर दिया। जिस पुरुष से लाभ हो, उसका सम्मान तो किया ही जाता है।

एक बार इन्द्र महोत्सव के समय वसुदेव अपने ससुर (सार्थवाह) के साथ एक रथ में बैठकर महापुर नगर गये। नगर के बाहर ही अनेक प्रासाद बने हुए थे। वसुदेव ने पूछा—

—क्या यह कोई दूसरा नगर है ?

सार्थवाह से उत्तर दिया—

—नहीं, यह दूसरा नगर तो नहीं है। ये प्रासाद तो निमन्त्रित राजाओं के लिए बनाए गये थे।

—निमन्त्रण किस लिए ?

—राजकन्या के स्वयंवर हेतु।—सार्थवाह ने आगे बताया—यहाँ का राजा है सोमदत्त और उसकी एक युवती पुत्री है सोमश्री। उसी के स्वयंवर के लिए ये अनेक राजा निमन्त्रित किये गये थे। किन्तु उनके अचातुर्य के कारण उन्हें विदा कर दिया और अब ये महल

खाली पड़े हैं। केवल राजा का अत पुर ही इन्द्रोत्सव मनाने के लिए यहाँ ठहरा हुआ है। आज वह भी चला जायगा।

यह वाते करने-करते वसुदेव कुमार इन्द्रस्तम्भ के पास जा पहुँचे। वसुदेव ने इन्द्रस्तम्भ को नमन किया। राजा का अत पुर भी उसी समय स्तम्भ को नमन करके राजमहल की ओर चल दिया।

राजकुमारी का रथ राजमार्ग पर महल की ओर मथर गति से चला जा रहा था। अचानक ही हाथी की मदभरी चिघाड़ सुनकर घोड़े विदक कर उछले और सरपट दौड़ने लगे। रथ को झटका लगा तो राजकुमारी गेद के समान उछली और राजमार्ग पर लुढ़क गई। कर्णभेदी चिघाड़े और अचानक गिर जाने से सोमश्री अचेत हो गई।

राजा का हाथी मत्तवाला होकर अपने बाँधने की जजीर को कीला सहित उखाड़ कर चिघाड़ता हुआ भागा चला आ रहा था। भय के कारण राजमार्ग सुनसान हो गया। सभी लोग अपने-अपने घरों में जा छिपे थे। प्राण किसे प्यारे नहीं होते ?

वसुदेव ने देखा राजकुमारी अरक्षित पड़ी है। गजराज समीप आता जा रहा है। जीवन और मृत्यु में कुछ कदम का ही फासला है। उनका क्षात्र तेज जाग उठा। तुरन्त अपने रथ से कूदे और हाथी की ओर दौड़ पड़े।

समीप पहुँच कर हाथी को ललकारा। मत्त गजराज ने सूँड उठा कर जोर की चिघाड़ मारी और चढ़ दौड़ा वसुदेव पर। अब उसका लक्ष्य राजकुमारी नहीं, वसुदेव था।

कुमार वसुदेव अपने कौशल से हाथी को वश में करने लगे।

गजराज और वसुदेव में डधर पैतरेबाजी चल रही थी और उधर राजपुत्री अचेत पड़ी थी। बड़े कौशल से वसुदेव ने हाथी को वश में किया और राज-पुत्री को उठाकर समीप के एक घर में ले गये। वहाँ अपने उत्तरीय से व्यजन करके उसे सचेत किया।

राजकुमारी के सचेत होते ही वसुदेव वहाँ से चल दिये और अपने

ससुर कुबेर सार्थवाह के साथ लोट गये । राजकुमारी उन्हें जाते देखती रह गई ।

कुबेर सार्थवाह के घर वसुदेव कुमार भोजन आदि में निवृत्त हुए उसी समय एक प्रतिहारी वहाँ आई और उनसे कहने लगी—

—कुमार ! आपको राजमहल में बुलाया है, चलिए ।

—क्यों ? मेरा क्या काम वहाँ ?—वसुदेव कुमार ने पूछा ।

—आपका ही तो काम है ?—प्रतिहारी ने मुस्करा कर कहा ।

—स्पष्ट बताओ ।—वसुदेव के यह पूछने पर प्रतिहारी कहने लगी—

—राजकुमारी सोमश्री को स्वयंवर में योग्य पति की प्राप्ति हो जायगी यही विचार करके स्वयंवर की योजना की गई थी किन्तु उसमें एक विकट बाधा आ पड़ी । इस कारण स्वयंवर हुआ ही नहीं ।

—क्यों क्या बाधा आ पड़ी ?

—राजकुमारी ने मौन साध लिया ।

—मौन का कारण ?

—मर्वाणयति के केवलज्ञान का महोत्सव मनाने हेतु जाते हुए देवों को देखकर सोमश्री को जातिस्मरण ज्ञान हो गया और उसने बोलना बन्द कर दिया ।

—जातिस्मरण ज्ञान और बोलने का क्या संबंध ?

—हैं । आप पूरी बात सुनिये—यह कहकर प्रतिहारी वसुदेव कुमार को बताने लगी—

राजकुमारी को मौन देखकर सभी चिंतित हो गये । मैं उसकी दासी भी हूँ और सखी भी । मैंने एकान्त में उससे मौन का कारण पूछा तो वह कहने लगी—‘पिछले जन्म में महाशुक्र देवलोक में भोग नाम का देव था । उसने मेरे साथ चिरकाल तक प्रणय किया । हम दोनों में प्रगाढ़ प्रेम हो गया । एक समय वह मेरे साथ नदीश्वर आदि द्वीपों की तीर्थ यात्रा और भगवान का जन्मोत्सव करके अपने स्वर्ग को जा रहा था । हम दोनों ब्रह्म देवलोक तक पहुँचे कि उसका आयुष्य पूर्ण हो

गया। मैं शोकार्त उसे खोजती-खोजती भरतक्षेत्र के कुरुदेश में पहुँच गई। वहाँ एक केवलज्ञानी को देखकर मैंने पूछा—

—सर्वज्ञ प्रभु! देवलोक में च्यवकर मेरा पति कहाँ उत्पन्न हुआ है?

- हरिवंश के एक राजा के घर।—प्रभु ने बताया।

—अब मुझे वह पति रूप में प्राप्त होगा या नहीं?—मैंने पुनः प्रश्न किया।

—तुम भी स्वर्ग से च्यव कर राजकुमारी होगी और तब वह तुम्हें हाथी से वचायेगा, वही तुम्हारा पति होगा।—भगवान ने समाधान कर दिया।

इसलिए हे सखी! अब इस स्वयंवर से क्या लाभ?

यह कहकर राजकुमारी चुप हो गई।

प्रतिहारि वसुदेव को सर्वोद्घित करके कहने लगी—

कुमार! मैंने यह सब बातें राजा को बता दी। इसी कारण स्वयंवर में आये सभी राजाओं को आदर सहित विदा कर दिया गया और स्वयंवर नहीं हुआ। आप ने हाथी से राजकुमारी को वचाया है, इस कारण आप ही उसके पति हैं। चलिए और उसके साथ विवाह कीजिए।

वसुदेव कुमार ने सोचा 'केवली के वचन अन्यथा नहीं होते' और वे प्रतिहारि के साथ राजमहल में जा पहुँचे। सोमश्री के साथ राजा सोमदत्त ने उनका विवाह कर दिया। दोनों पति-पत्नी सुख-भोग करने लगे।

—त्रिषष्टि० ८।२

—वसुदेव हिंडी सोमश्री लभक

प्रातः वसुदेव की नीद खुली तो सोमश्री जैय्या पर नहीं थी। 'कहाँ चली गई इतने सवेरे ?' सोचा—सम्भवतः जल्दी उठ कर चली गई होगी। कुछ समय और बीता किन्तु सोमश्री नहीं दिखाई दी। अब उन्हें चिन्ता हुई। डर-उधर बहुत खोजा, परन्तु सब व्यर्थ। कोई पता नहीं लगा। दिन व्यतीत हुआ, रात आई। वसुदेव की बेचैनी बढ़ती गई। इस द्विविधा और चिन्ता में तीन दिन गुजर गए। आखिर राजमहल के कक्ष में कब तक शोकमग्न बैठे रहते ? उद्विग्न से उठ कर उपवन में आये।

उपवन में देखा तो सोमश्री एक स्थान पर स्थिर चित्त आसन लगाकर बैठी है। समीप जाकर पूछा—

—प्रिये ! मेरे किस अपराध का दण्ड दिया तुमने ? तीन दिन तक कहाँ खोई रही ?

—नाथ ! आपके लिए ही मैंने तीन दिन तक मौन व्रत लिया था। अब इस देवता की पूजा करके मेरा पुनः पाणिग्रहण करो, जिससे यह नियम पूरा हो जाय।—सोमश्री ने उत्तर दिया।

वसुदेव अपनी प्रिया सोमश्री के इस कथन से भावविभोर हो उठे। उनके हृदय में विचार आया 'कितना कष्ट सहा है, इसने मेरे लिए।' उन्होंने वही किया जो सोमश्री ने कहा।

मदिरा का पात्र देते हुए सोमश्री ने कहा—'नाथ ! यह देवता का प्रसाद है।' वसुदेव ने वह प्रसाद जी भर कर पिया और सोमश्री ने भी। इसके बाद कार्दपिक देवों के समान दोनों रति सुख में लीन हो गए।

रतिश्रान्त सोमश्री और वसुदेव शय्या पर सो गये ।

रात्रि के अन्तिम प्रहर में वसुदेव की नींद खुली । देखा तो सोमश्री के स्थान पर कोई अन्य स्त्री सोई हुई है । जगाकर पूछने लगे—

—सुन्दरी ! तुम कौन हो ?

—आपकी पत्नी ! —स्त्री ने उत्तर दिया ।

चौक पड़े वसुदेव । एकदम मुख से निकला—

—मेरी पत्नी ? कब हुआ तुम्हारा विवाह मेरे साथ ?

—आज ही तो दिन में रात को ही भूल गये ।—मुस्कराकर कहा स्त्री ने ।

—वह तो वह तो सोमश्री थी । तुम कहाँ से आ टपकी ? क्या रहस्य है यह ?

रहस्य जानना चाहते हैं आप, तो सुनिये । वह स्त्री कहने लगी—

दक्षिण श्रेणी में सुवर्णाभि नगर का राजा है चित्रांग । उसकी रानी अगारवती के उदर से मानसवेग नाम का पुत्र और वेगवती नाम की पुत्री मैं हुई । राजा चित्रांग ने अपने पुत्र मानसेवग को राज्य भार देकर दीक्षा ग्रहण कर ली ।

मानसवेग ने निर्लज्ज होकर तीन दिन पहले रात्रि के समय आपकी पत्नी सोमश्री का हरण कर लिया । उसने अनेक प्रकार से उसकी खुगामद की । मुझसे भी कहलवाया किन्तु सोमश्री ने पतिव्रत धर्म का पालन किया और उसकी याचना ठुकरा दी ।

तीन दिन तक उसकी दृढ़ता देखकर मैंने उसे अपनी सखी मान लिया । उसी की प्रेरणा से मैं आपके पास आई । किन्तु आपको देखते ही काम-पीड़ित हो गई ।

‘कुलीन कन्याएँ विवाह से पहले किसी पुरुष के साथ काम सेवन नहीं करती ।’ यह सोचकर मैंने सोमश्री का रूप रख कर आप से विवाह कर लिया । अब आप मेरे धर्मानुमोदित पति हैं ।

यही है मेरा रहस्य ।

वसुदेव वेगवती की चतुराई पर चकित रह गये ।

अन्य व्यक्ति भी प्रातः सोमश्री के वजाय वेगवती को देखकर विस्मय करने लगे। पति आज्ञा से वेगवती ने सोमश्री के हरण को घटना सबको बता दी।

×

×

×

मानसवेग सोमश्री का हरण तो कर ले गया किन्तु उसकी कामेच्छा भी पूरी न हुई और वहन वेगवती भी चली गई। वह क्रोध से धधकने लगा। काम विगड जाने पर प्राणी को क्रोध आता ही है। उसने वसुदेव को मारने का निश्चय कर लिया।

एक रात को ले उड़ा सोते हुए वसुदेव को। वसुदेव को जैसे ही ज्ञात हुआ कि कोई विद्याधर उन्हें लिए जा रहा है, उन्होंने एक जोर-दार मुष्टि-प्रहार किया। मानसवेग विकल हो गया। घबड़ा कर उसने वसुदेव को छोड़ दिया।

मेघबिन्दु के समान वसुदेव जा गिरे विद्याधर चडवेग के कंधे पर। चडवेग गंगा नदी में खड़ा होकर विद्या सिद्ध कर रहा था। वसुदेव का स्पर्श होते ही उसे तुरन्त विद्या सिद्ध हो गई। अञ्जलि बाँधकर बोला—

—महात्मन् ! आपने मेरा बड़ा उपकार किया है। मैं आपका कृतज्ञ हूँ।

वसुदेव तो समझ रहे थे कि यह पुरुष क्रोधित होकर दो-चार खरी-खोटी सुनाएगा किन्तु यहाँ तो उल्टा ही हुआ। यह पुरुष विनम्र वचन बोल रहा है। वसुदेव ने मधुर और विनयपूर्ण स्वर में कहा—

—भाई ! मुझे लज्जित मत करो। मैं जान-बूझ कर तुम्हारे ऊपर नहीं गिरा। फिर भी मेरे कारण तुम्हें जो कष्ट हुआ उसके लिए हृदय से क्षमा-प्रार्थी हूँ।

—नहीं, जो विद्या मुझे दीर्घकाल से सिद्ध नहीं हो रही थी वह आपके स्पर्श मात्र से सिद्ध हो गई। मैं आपका कृतज्ञ हूँ। मैं आपको क्या हूँ ?

वसुदेव विद्याधर की विनम्रता का रहस्य समझ गए। उन्होंने उससे कहा—‘यदि आप देना ही चाहते हैं तो आकाशगामिनी विद्या

दे दीजिए ।' विद्याधर ने विद्या दी । वसुदेव वहाँ से चलकर कनखल गाँव के बाहर विद्या मिट्ट कराने लगे और चडवेग अपने स्थान की ओर चला गया ।

वसुदेव विद्या-माधन में मग्न थे । उसी समय विद्युद्देव राजा की पुत्री मदनवेगा उधर से निकली । वसुदेव के सुन्दर रूप को देखकर नोहित हो गई । उसने तुरन्त कुमार को उठाया और वैताद्वय गिरि के पुष्प शयन उद्यान में ले पहुँची । वसुदेव अपने जप में लीन रहे, डिगे नहीं ।

मदनवेगा समीप ही अपने नगर अमृतधार नगर में चली गई ।

प्रातः काल मदनवेगा के तीनों भाइयों—दधिमुख, चडवेग और चडवेग^१ ने आकर वसुदेव को नमस्कार किया । तीनों भाई आग्रह-पूर्वक उन्हें अपने नगर में ले गये और मदनवेगा के साथ उनका विवाह विधिपूर्वक कर दिया ।

एक दिन दधिमुख ने कहा—

—कुमार ! मेरे पिता को वधन से छुड़ाओ ।

—किसके बन्धन में है तुम्हारे पिता ?

—दिवन्तिलक नगर के राजा त्रिगिखर के बन्धन में ।

—कारण ?

—हमारी वहन मदनवेगा ही इसका कारण है । आप पूरी बात सुनिए ।

दधिमुख कहने लगा—

राजा त्रिगिखर का एक पुत्र है सूर्यककुमार । उसके लिए हमारे पिता से त्रिगिखर ने मदनवेगा की याचना की । हमारे पिता ने उनकी याचना ठुकरा दी । कारण था चारण ऋद्धि धारी मुनि के वचन—
'मदनवेगा का पति हरिवंश में उत्पन्न वसुदेव कुमार होगा । वह

१ यह चडवेग विद्याधर वही था जिसने वसुदेव को आकाश-गामिनी विद्या दी थी ।

चडवेग के ऊपर आकाश में गिरेगा । उसके स्थान मात्र में इसे विद्या सिद्धि हो जायेगी ।’

याचना ठुकराए जाने के कारण बलवान राजा त्रिशिखर हमारे पिता विद्युद्वेग को बाँध ले गया ।

अपने वंश का परिचय देते हुए दधिमुख ने आगे बताया—

हमारे वंश का प्रारंभ नमि राजा से हुआ है । उसका पुत्र पुलस्त्य हुआ । इसी वंश में मेघनाद नाम का राजा हुआ जिसे उसके जामाता सुभूम चक्रवर्ती ने वैताड्य गिरि की उत्तर और दक्षिण दोनों श्रेणियों का राजा बना दिया था । साथ ही उसे ब्रह्मास्त्र, आग्नेयास्त्र आदि अनेक दिव्य अस्त्र भी दिये । इसी वंश में रावण, विभीषण आदि हुए । विभीषण के वंश में हमारे पिता विद्युद्वेग ने जन्म लिया ।

अनुक्रम से वे सभी दिव्यास्त्र हमारे पास हैं । उन्हें आप ग्रहण करिए । क्योंकि दिव्यास्त्र महाभाग्यवान् के हाथ में सफल होते हैं और मदभागी के पास निष्फल ।

वसुदेव ने वे सभी दिव्यास्त्र विधिपूर्वक ग्रहण कर लिए ।

X

‘मदनवेगा जैसी सुन्दरी एक साधारण भूमिगोचरी मनुष्य के साथ व्याह दी गई’ मुनकर राजा त्रिशिखर के तन-वदन में आग लग गई । क्या उसका विद्याधर पुत्र स्पर्क मदनवेगा के योग्य नहीं था ?

त्रिशिखर युद्ध हेतु चड आया । दधिमुख आदि विद्याधरों ने इन्द्रास्त्र वसुदेवको दिया । वसुदेव ने इन्द्रास्त्र से त्रिशिखर का शिरच्छेद कर दिया और दिवन्तिलक नगर में जाकर राजा विद्युद्वेग को वन्धन-मुक्त करा लिया ।

इसके बाद मदनवेगा से उनका अनाधृष्टि नाम का पुत्र प्राप्त हुआ ।

—त्रिषष्टि० ८/२

—वसुदेव हिंडी, वेगवती और मदनवेगा लभक

विशेष—मदनवेगा लभक के अन्तर्गत रामायण की कथा दी है और उसमें रावण के पूर्वजों का वर्णन करते हुए उनका नाम सहस्रग्रीव, शतग्रीव, पचास-ग्रीव आदि बताया है ।

एक कोटि द्रव्य दान का विचित्र परिणाम

मदनवेगा अपने पति वसुदेव से लूठ कर अन्तर्गृह में दूसरी गैय्या पर जा सोई । न वह वहाँ से वसुदेव को देख सकती थी और न वसुदेव उसे । बीच में कई दीवारे बाधक जो थी ।

रूठने का कारण था वसुदेव का मदनवेगा को वेगवती कह कर संबोधित करना । स्त्री नहीं चाहती कि उसका पति सपत्नी का नाम भी ले ।

वसुदेव को भी मदनवेगा के रूठने से दुःख तो हुआ पर अब हो भी क्या सकता था ? जवान से निकली बात और कमान से निकला वाण ! वापिस तो आ नहीं सकता । वे भी खेदखिन्न होकर अपनी गैय्या पर पड़े रहे ।

डधर पत्नी रूठी हुई, उधर पति खेदखिन्न । लाभ उठाया त्रिगिखर राजा को पत्नी मूर्पणखा ने । विद्याधरी ने अपने पति की मृत्यु का बदला लेने का अच्छा अवसर देखा । मदनवेगा का रूप बनाया और वसुदेव के पास आ गई । मीठे और खुशामद भरे वचनों से वसुदेव को मोहित कर लिया ।

विद्याधरी वसुदेव को लेकर आकाश में उड़ गई । बड़े प्रसन्न थे कुमार कि प्रिया मान गई । किन्तु वे ठगे जा रहे थे और विद्याधरी रुग रही थी ।

जिस स्थान पर वसुदेव की गैय्या थी उसे विद्यावल से जलाकर मूर्पणखा ने राख की ढेरी बना दिया ।

हँसते, मुमकराते, खिलखिलाने वसुदेव आकाश में विद्याधरी के साथ चले जा रहे थे—विद्याधरी के अक में बैठे थे वे ।

अचानक विद्याधरी की मुख मुद्रा रौद्र हुई । एक धक्का लगा और वसुदेव आकाश से भूमि की ओर रिंगने लगे । सिट्ठी-पिट्ठी गुम हो गई उनकी । हर्ष का स्थान आश्चर्य ने ले लिया । पहले क्षण की आँखों की चमक भय में बदल गई ।

विद्याधरी मूर्धणखा ने तो उनको मारने का पूरा प्रवन्ध कर दिया था । इतनी ऊँचाई से गिर कर कोई बच सकता है क्या ? किन्तु 'जाको राखै साडयाँ' उसके बचने का कोई न कोई उपाय निकल ही आता है । वसुदेव भी गिरे तिनको फूम के ढेर पर अक्षत गरीर । कही कोई खरोच भी नहीं, चोट की तो कौन कहे ? पल्ला झाडकर खड़े हो गये । मानो आकाश से न गिरे हो वरन् मो कर उठे हो ।

चलकर समीप के ग्राम में आये और पूछा तो ज्ञात हुआ 'पाम ही राजगृही नगरी है और वहाँ का राजा है प्रबल प्रतापी जरामंध ।'

जरामंध । जाना-पहचाना नाम था वसुदेव का । चल दिए नगरी की ओर । राजगृही में पहुँचे तो बैठ गये पासा^१ खेलने । पासे के खेल में एक कोटि (करोड़) सुवर्ण द्रव्य जीत गये । इतने धन का क्या करे ? अतः याचकों को दान दे दिया ।

उनके इस विचित्र व्यवहार की सूचना राजपुरुषों (राज्य के कर्मचारी सिपाही आदि) को मिल गई । वे तुरन्त आये और वसुदेव को पकड़कर ले चले । वसुदेव ने ऐतराज किया—

—भाई ! मैंने कौन सा अपराध किया है जो मुझे पकड़ रहे हो ?

—तुम्हारा अपराध अक्षम्य है । राजसेवकों ने उत्तर दिया ।

- १ पासा एक प्रकार का जूआ था जो कौड़ियों से खेला जाता था । इसका प्रचलन मध्यकाल तक रहा और अब भी कहीं-कहीं खेला जाता है । विशेषकर राजाओं का यह प्रमुख व्यसन था ।

—यही तो पूछ रहा हूँ कि मेरा अपराध क्या है ? मुझे क्यों वन्दी बनाया जा रहा है ?

—राजाजा ह आपको पकड़ने की ।

—क्या जूआ खेलना अपराध है या याचको को दान देना ?

—इन दोनों में से अलग-अलग तो कोई अपराध नहीं है किन्तु एक कोटि स्वर्ण द्रव्य पामे के खेल में जीतना और याचको को देना अवश्य घोर अपराध है ।

विस्मित होकर वसुदेव ने पूछा—

—तुम्हारी बातों में कोई रहस्य छिपा हुआ है ?

प्रमुख राजसेवक ने उत्तर दिया—

—हाँ भद्र ! इसमें महाराज जरासंध के जीवन का रहस्य छिपा है । किसी जानी ने उसे बताया है कि 'जो पुरुष यहाँ आकर एक कोटि स्वर्ण द्रव्य पामे के खेल में जीते और उसे ज्यों की त्यों याचको को दान दे दे, उसका पुत्र तुम्हारा काल होगा ? अब समझ गये अपना अपराध ? व्यर्थ की बातें नहीं, चुपचाप हमारे साथ चलते रहो ।

वसुदेव की समझ में अपना अपराध आ गया । राजकर्मचारी उन्हें समीप के एक पहाड़ पर ले गये । चमड़े की पट्टियों से कस कर बाँधा और उछाल कर फेंक दिया । परिणाम जानने की आवश्यकता तो थी ही नहीं । 'निश्चय ही मर जायेंगा' यत्र मोच कर राजकर्मचारी सतुष्ट होकर तत्काल लौट गये ।

पहाड़ में गिरे वसुदेव कुमार तो भूमि तक न पहुँच सके । बीच में ही कुछ ऐसा चमत्कार हुआ कि उनकी दिशा बदल गई । अर्धा दिशा की वजाय तिगली दिशा में बहने लगे । कुछ समय तक बहते रहने के बाद एक पर्वत शिखर पर जाकर टिक गये ।

आधार मिलते ही वसुदेव ने डधर-डधर दृष्टि दोड़ाई । उन्हें वेगवती के पाँव दिखाई दिये । चर्म-बधनों को पराक्रमी वसुदेव ने कच्चे सूत की तरह तोड़ डाला और आगे बढ़कर वेगवती को अक में भर लिया । पूछने लगे—

—प्रिये । तुमने मुझे किस प्रकार प्राप्त किया ?

वेगवती की अश्रुधारा वह रही थी । बड़ी कठिनाई से आँसू रोक कर रुँधे गले से आप-वीती कहने लगी—

—स्वामी । जिस समय मैं शय्या से उठी तो आप मुझे दिग्बाई न दिये । मैं रुदन करने लगी । उस समय प्रज्जप्ति विद्या ने आकर मुझे आपके हरण और आकाश से गिरने का समाचार सुनाया । मैंने अपने हृदय में विचार किया कि 'आपके पास किमी मुनि की वताई हुई प्रभाविक विद्या है । कुछ समय पश्चात् स्वयं ही आ मिलेंगे ।' किन्तु जब आप काफी दिनों तक नहीं आये तो मैं आपकी खोज में निकली । डूँढते-डूँढते सिद्धायतन में पहुँची तो आप मदनवेगा के साथ थे । मुझे अप्रत्यक्ष रूप से आपके साथ लगी रही । आप दोनों के पीछे-पीछे मैं अमृत-धार नगर में आई । आपके मुख में मदनवेगा के वजाय अपना नाम सुनकर मुझे प्रसन्नता हुई कि आप मुझे भूले नहीं हैं । मदनवेगा के रुठ कर अतर्गुह में चने जाने के बाद जब त्रिगिखर की पत्नी मूर्पणखा ने मदनवेगा के रूप में आपका अपहरण किया तो मैं भी उसके पीछे-पीछे गई । जब उसने आपको राजगृही नगरी के बाहर गिराया तो मैं मानसवेग का रूप रखकर आपको वचाने दौड़ी लेकिन उस दुष्टा ने मुझे देख लिया और विद्या बल से मुझे मार भगाया । उसमें भयभीत होकर मैं समीप के एक चैत्य में दौड़ी-दौड़ी जा रही थी । उस समय भूल में किमी मुनि का उल्लघन हो गया और मेरी सारी विद्याएँ नष्ट हो गई ।

तभी मेरी धायमाता मुझे मिली । मैंने अपना पूरा वृत्तान्त उसे सुना दिया । जब आपको जरामध के सैनिकों ने पर्वत में नीचे गिराया तो मेरी धायमाँ ने ही आपको वचाकर मेरे पास तक पहुँचाया ।

वेगवती की निष्ठा में वसुदेव बहुत प्रभावित हुए । पूछा—

—यह कोन सा स्थान है ?

—नाथ । यह ह्रीमान पर्वत का पचनद तीर्थ है ।

वसुदेव और वेगवती दोनों कुछ देर तक तो सुख-दुःख की बातें

करते रहे और फिर वहाँ से चल कर एक तापस के आश्रम में जा पहुँचे ।

तापस के आश्रम में दोनों सुखपूर्वक रहने लगे ।

×

×

×

एक दिन वेगवती को नदी में बहती हुई एक युवती दिखाई पड़ी । उसका अग-अग पाग से बँधा हुआ था । उसकी प्रेरणा से वसुदेव ने उस कन्या को नदी में निकाला और बधनमुक्त किया । कुछ समय बाद सचेत होकर कन्या वसुदेव से बोली—

—हे महात्मन् ! आपके प्रभाव से मेरी विद्या आज सिद्ध हो गई । मैं आपकी बहुत कृतज्ञ हूँ ।

वसुदेव ने पूछा—

—सुन्दरी ! तुम हो कौन और विद्यासिद्धि कारण क्या है ?

कन्या ने अपना परिचय बताया—

वैताढ्य गिरि पर गगनवल्लभ नगर है । इसमें पहले विद्याधर राजा नमि का वंशधर कोई विद्युर्दृष्ट राजा राज्य करता था । उसने किसी मुनि को कायोत्सर्ग में लीन देखा । घोर पाप का उदय आगया था उसका इसीलिए परम शांत और निस्पृही मुनि को देखते ही अपने अनुचरो से बोला—‘यह कोई उत्पाती है । इसे वरुणालय में ले जाकर मार डालो ।’

अनुचरो को स्वामी की आज्ञा मिली और वे मुनिराज को मारने लगे । परम धीर मुनिश्री इस उपसर्ग से तनिक भी खिन्न न हुए वरन् शुकलध्यान में लीन हो गये । उपसर्ग होते रहे और मुनि गुणस्थान चढते रहे । नवाँ, दशवाँ और बारहवाँ पार कर तेरहवाँ गुणस्थान प्राप्त कर लिया । वे केवली हो गये ।

उनका कैवल्योत्सव मनाने धरणेन्द्र आया तो उसने सभी अनुचर विद्याधरो और विद्युदृष्ट को विद्याभ्रष्ट कर दिया ।

विद्याहीन विद्याधर का जीवन तृणवत् होता है । अनुचरो ने धरणेन्द्र ने विनती की—

—हे देवेन्द्र ! यह मुनि कौन है, हमको तो मालूम नहीं । विद्या-धर राजा विद्युदृष्ट ने 'यह उत्पाती है' कह कर हमसे यह अकार्य कराया है । हम निर्दोष हैं, क्षमा करो ।

धरणेन्द्र ने उन्हें प्रताड़ना दी—

—निर्दोष तो तुम भी नहीं हो । जैन श्रमणों पर उपसर्ग करने वाला अपराधी ही होता है । चाहे वह किसी अन्य की प्रेरणा में उपद्रव करे या स्वयं ।

—क्षमा ! देवेन्द्र क्षमा ॥ विद्याधरो का कातर स्वर गूँजा ।

दया आ गई धरणेन्द्र को । उसके मुख से निकला—

—ठीक है । तुम दुवांग विद्या सिद्ध कर लो । परन्तु याद रखना अर्हन्त और उनके अनुयायियों से तनिक भी द्वेष किया तो सदा-सदा के लिए विद्याविहीन हो जाओगे ।

—सभी विद्याएँ पुनः प्राप्त हो जायेगी हमको ? विद्याधरो ने पूछा ।

—नहीं । दुर्मति विद्युदृष्ट को प्रज्ञप्ति आदि महा विद्याएँ कभी सिद्ध नहीं होगी । उसके वगधरो को भी नहीं ।

—देवेन्द्र ! कोई अन्य उपाय बताइये । विद्याहीन विद्याधर का जीवन मृत्यु से भी बुरा होता । अनुचरो ने अनुनय की ।

—मैं कैवल्योत्सव मनाने जा रहा हूँ इसलिए किसी का अहित नहीं करना चाहता । विद्युदृष्ट के किसी वगधर को यदि किसी केवली श्रमण अथवा महापुण्यवान जीव के दर्शन हो जायँ तो उने विद्या सिद्ध हो सकती है ।

यह कह कर धरणेन्द्र मुनि का कैवल्योत्सव मनाने चला गया । उसके बाद उसके वग में केतुमती नाम की कन्या हुई ।

केतुमती विद्या सिद्ध कर रही थी । उसी समय वासुदेव पुण्डरीक ने उससे विवाह कर दिया । परिणामस्वरूप उसे विद्या सिद्ध हो गई ।

वह सुन्दर कन्या वसुदेव को सवोधित करके बोली—

—हे महाभाग ! मैं भी विद्याधर विद्युदृष्ट के वग में उत्पन्न हुई हूँ ।

मेरा नाम बालचन्द्रा है। आपके प्रभाव से ही मुझे विद्या सिद्ध हुई है। अब मैं आपके वश में हूँ। आप चाहे तो मेरा परिणय करे। अथवा मैं क्या करूँ मुझे बताइये।

वसुदेव ने उसका सारा वृत्तान्त सुनकर उत्तर दिया—

—सुन्दरी! मुझे कुछ नहीं चाहिए। तुम्हें विद्या सिद्ध हो गई। तुम्हारा परिश्रम सफल हुआ। मुझे इसी में प्रसन्नता है।

बालचन्द्रा ने जब बहुत आग्रह किया तो वसुदेव ने कहा—इस वेगवती को विद्या दो।

—वेगवती! तुम मेरे साथ गगनवल्लभ नगर चलो और विद्या ग्रहण करो। बालचन्द्रा ने वेगवती से कहा।

किन्तु वेगवती पति से विलग होना नहीं चाहती थी। बड़ी कठिनाई से तो उसका मिलन हो पाया था। उसके हृदय के एक कोने में विद्या-प्राप्ति की लालसा भी थी क्योंकि मुनिराज का उल्लघन हो जाने से वह विद्याहीन हो चुकी थी। उसने बहुत आग्रह किया कि बालचन्द्रा उसे यही विद्या प्रदान करे परन्तु जब बालचन्द्रा ने विवगता दिखाई तो वह भी मजबूर होगई।

पति की आज्ञा लेकर वेगवती तो बालचन्द्रा के साथ गगनवल्लभ नगर चली गई और वसुदेव तापस के आश्रम में रहने लगे।

—त्रिषष्टि० ८/२

—वसुदेव हिंडी, बालचन्द्रा लम्भक

—हम जैसे पुसत्वहीनो को धिक्कार है ।

—एक बार नहीं सौ बार । तुम धिक्कार की बात कह रहे हो, मैं तो कहता हूँ मर जाना ही अच्छा है ।

—मरना भी तो बहादुर ही जानते है । हम जैसे कायर तो रण छोड़कर भाग ही सकते हैं ।

—एक ने सब को मार भगाया । जीवन तो ऐसे ही पराक्रमियों का है । हम जैसे डरपोको का क्या ?

—सच कहते हो, पृथ्वी के भार है हम तो ।

दो नये तापस परस्पर वार्तालाप कर रहे थे । वसुदेव को उनकी बातों में रुचि हो आई । उन्होंने पूछा—

—आप लोग क्यों इतने खेदखिन्न हो रहे हैं ?

नये तापसों में से एक ने बताया —

श्रावस्ती नगरी में निर्मल चरित्र वाला एणीपुत्र, नाम का एक राजा है । उसने अपनी रतिरूपा युवा पुत्री प्रियगुसुन्दरी के स्वयंवर में अनेक राजाओं को निमंत्रित किया । हम भी उसमें सम्मिलित हुए । राजकुमारी ने किसी का वरण नहीं किया तो राजा लोग क्रोध में भर गये । उन्होंने युद्ध प्रारंभ कर दिया किन्तु एणीपुत्र की वीरता तो देखो । उस अकेले ने ही सब को मार भगाया । कोई पहाड़ में जा छिपा तो कोई वन में और हम दोनों यहाँ तापस बन कर आ गये । अपनी इस कायरता को ही धिक्कार रहे थे ।

उसकी बात सुनकर वसुदेव ने कहा—

—तापस ! सब पुण्य का प्रभाव है और पुण्य होता है धर्मसेवन से । सच्चा धर्म है जैनधर्म, भगवान् अर्हन्त सर्वज्ञ द्वारा उपदिष्ट । उसी

का सेवन करो । उसका फल अचिन्त्य है । चित्त को शांति मिलेगी और लोक-परलोक सुधरेगा । इस लोक में मान-सम्मान और यश की प्राप्ति होगी तथा जीवनोपरात मुक्ति ।

दोनों नये तापसों ने रुचिपूर्वक जैनधर्म अंगीकार कर लिया ।

×

×

तापसों की बात सुनकर वसुदेव के हृदय में भी श्रावस्ती नरेश एणीपुत्र को देखने की इच्छा जाग्रत हुई । एक पराक्रमी दूसरे पराक्रमी से मिलना चाहता ही है । वसुदेव भी श्रावस्ती नगरी जा पहुँचे । वहाँ उद्यान में एक तीन द्वारों वाला देवगृह दिखाई दिया । उसका मुख्य द्वार वत्तीस अर्गलाओं (साँकलो, जजीरो) से आवेष्टित था अतः उसमें से तो प्रवेग करना असंभव ही था अतः वे दूसरे छोटे द्वार से अन्दर गये । अन्दर जाते ही उन्हें देवमूर्ति तो कोई दिखाई नहीं पड़ी । हाँ, तीन मूर्तियाँ अवश्य वहाँ थी—एक मुनि की, दूसरी श्रावक की और तीसरी एक तीन पैर वाले पाड़े (भैस के वच्चे) की ।

वसुदेव इन मूर्तियों का रहस्य नहीं समझ पाये । उन्होंने एक ब्राह्मण से पूछा—इसका रहस्य क्या है ?

ब्राह्मण ने बताया—

पहले यहाँ जितशत्रु नाम का राजा राज्य करता था । उसका पुत्र था मृगध्वज । नगर में एक श्रेष्ठो था कामदेव ।

श्रेष्ठ कामदेव एक बार नगर के बाहर अपनी पशुशाला में गया । वहाँ दडक नाम के ग्वालें ने कहा—

—सेठजी ! आपकी इस भैस (महिषी) के पाँच पाड़े मैं पहले ही मार चुका हूँ किन्तु यह छठा पाड़ा भद्र स्वरूपी है । जब से उत्पन्न हुआ है भय से काँपता रहता है । इस कारण मैंने मारा नहीं है । आप भी इसे अभय दीजिए ।

दया करके सेठ कामदेव उसे नगरी में ले आया और राजा से अभय की याचना की । राजा जितशत्रु ने अभय देते हुए आज्ञा दी—

—यह पाडा मपूर्ण नगरी में जहा चाहे स्वेच्छापूर्वक घूमता रहे ।
कुछ दिन बाद कुमार मृगध्वज ने पाडे का एक पैर काट दिया ।
राजा को पता चला तो उसने पुत्र को नगर में बाहर निकाल दिया ।
कुमार मृगध्वज ने श्रामणी दीक्षा ग्रहण करली ।

पाँव बटने के अठारहवें दिन पाडे की मृत्यु हो गई और बाबीसवें दिन मृगध्वज को केवलज्ञान प्राप्त हुआ । देव, असुर, मुर, राजा, मंत्री आदि सभी उनकी वदना हेतु आये । देवना के अन्त में राजा जितशत्रु ने पूछा—

—आपका पाडे के साथ क्या वैर था कि उसका पाँव काट लिया ?
केवली मृगध्वज ने फरमाया—

पहले अश्वग्रीव नाम का प्रतिवासुदेव (अर्द्धचक्री) था । उसका एक मंत्री था हरिष्मश्रु । राजा जैन धर्मावलम्बी था और मंत्री अर्हन्त धर्म विरोधी । उन दोनों में परस्पर वाद-विवाद होता । धीरे-धीरे उनका वैर बढ गया । वासुदेव त्रिपुष्ट के हाथों मृत्यु पाकर दोनों सातवें नरक गये । अनेक भवों में भ्रमण करते हुए अश्वग्रीव का जीव तो मैं मृगध्वज हुआ और हरिष्मश्रु का जीव यह पाडा । पूर्व वैर के कारण ही मैंने इसका पैर काटा था । वह पाडा मरकर रोहिताक्ष नाम का असुर हुआ है । यह देखो वह मुझे वदन करने आ रहा है । ससार का नाटक बडा विचित्र है ।

इसके पश्चात् असुर लोहिताक्ष ने केवली मृगध्वज का वदन किया ।

ब्राह्मण ने वसुदेव को सम्बोधित किया—

भद्र ! उसी लोहिताक्ष असुर ने ये तनि मूर्तियाँ इस देवगृह में स्थापित कराई — एक मुनि मृगध्वज की, दूसरी श्रेष्ठि श्रावक काम-देव की और तीसरी तीन पाँववाले पाडे की । इसी कारण इस के तीन द्वार रखे और मुख्य द्वार को बत्तीस साँकलो से जकड दिया ।

वसुदेव ब्राह्मण की बात ध्यान से सुनकर बोले—

द्विजश्रेष्ठ ! क्या तब से ये साँकल अब तक खुली नहीं ?

ब्राह्मण ने बताया—

इसका भी एक रहस्य ही है। कामदेव सेठ की परंपरा में इस समय कामदत्त सेठ हैं। उसकी पुत्री है बन्धुमती। बन्धुमती के विवाह के सम्बन्ध में एक जानी ने बताया है 'जो इस देवालय के मुख्यद्वार को उधाड़ (खोल) देगा, वही इसका स्वामी होगा'। देखे कौन पुण्यशाली इसे उधाड़ता है।

वसुदेव ने संपूर्ण वृत्तान्त सुन कर देवालय का मुख्यद्वार उधाड़ दिया। कामदत्त सेठ ने अपनी पुत्री बन्धुमती का विवाह उनके साथ कर दिया। विवाह उत्सव देखने राजा के साथ राजपुत्री प्रियगुसुंदरी भी आई। वसुदेव को देखते ही उसके अग में कामदेव समा गया।

द्वारपाल ने आकर वसुदेव को राजा एणीपुत्र का निर्मल चरित्र और राजपुत्री की दगा बताकर आग्रह किया—'कल प्रातः काल आप राजमहल में अवश्य आइये।'।

वसुदेव द्वारपाल की बात सुनकर चुप हो गये और द्वारपाल उनके मौन को स्वीकृति समझ कर चला गया।

उसी दिन वसुदेव ने एक नाटक देखा। उसमें कथानक था—'नर्मि के वन में पुरुहूत राजा हुआ। एक दिन वह हाथी पर सवार होकर जा रहा था कि उसकी दृष्टि गौतम ऋषि की पत्नी अहल्या पर पड़ी। पुरुहूत काम पीड़ित हो गया और उसने अहल्या को आश्रम में ले जाकर उसके साथ रतिक्रीड़ा की। उसी समय गौतम ऋषि आ गये। उन्होंने क्रोधित होकर उसका लिंग छेद कर दिया।

इस कथानक ने वसुदेव के हृदय में भय की एक लकीर खींच दी। वे प्रियगुसुन्दरी के पास नहीं गये। अपनी पत्नी बन्धुमती के साथ ही सो गये।

आधी रात के समय अचानक उनकी नीद खुल गई। शयन कक्ष में उन्हें एक देवी दिखाई दी। वे सोचने लगे—'यह कौन है?'

उन्हें विचारमग्न देखकर देवी ने कहा—

—वत्स ! तुम क्या सोच रहे हो ?

—मैं यह सोच रहा हूँ कि आप कौन हैं और मेरे पास किस प्रयोजन से आई हैं ?—वसुदेव ने उत्तर दिया ।

—वही बताने आई हूँ । मेरे साथ चलो । यह कहकर देवी ने उनका हाथ पकड़ा और अगोक वन में ले गई । वहाँ पहुँच कर कहने लगी—मेरी बात ध्यान देकर सुनो ।

इस भरतक्षेत्र के श्रीचंदन नाम के नगर पर अमोघरेता नाम का राजा राज्य करता था । उसकी रानी श्री चारुमति और पुत्र चारुचन्द्र । उसी नगर में रहती थी वेण्या अनतसेना और उसकी पुत्री कामपताका ।

राज अमोघरेता ने एक बार यज्ञ किया । यज्ञ के उपाध्याय थे कौशिक और तृणविन्दु । यज्ञमंडप में आयोजन किया गया नृत्य का । नृत्य करती हुई वेण्यापुत्री कामपताका ने अपने नृत्य कौशल से राज-कुमार चारुचन्द्र और उपाध्याय कौशिक दोनों का मन मोह लिया ।

कुमार चारुचन्द्र ने कामपताका को अपने वश में करके विवाह कर लिया ।

दोनों उपाध्यायों ने राजा को बहुत से मधुर और स्वादिष्ट फल दिये । वे फल राजा ने जीवन में पहली बार देखे थे । उसने पूछा—‘ऐसे सुन्दर अद्भुत फल आप कहाँ से लाये ? तब उन्होंने हरिवंश की उत्पत्ति और भोगभूमि से लाये गये कल्पवृक्ष का वर्णन किया ।

कौशिक ने यज्ञ समाप्त होने पर वेण्यापुत्री कामपताका को माँगा । उसे विश्वास था कि उसकी इच्छा अवश्य पूरी होगी किन्तु राजा ने कह दिया—‘कामपताका ने कुमार चारुचन्द्र के साथ विवाह कर लिया है । अब दूसरा पति होना असंभव है ।’ उपाध्याय कौशिक ने क्रोध में आकर श्राप दिया—‘उसके साथ क्रीड़ा करते ही कुमार की मृत्यु हो जायेगी ।’

मन्त्रमति राजा अमोघरेता को इसी कारण वैराग्य हो गया । अपने पुत्र चारुचन्द्र को राज्य देकर वह तापस के आश्रम में जाकर रहने लगा । उसके साथ उसकी अज्ञात गर्भा रानी भी थी । समय पाकर

उसके गर्भ के लक्षण प्रकट हुए और उसने एक पुत्री को जन्म दिया। पुत्री का नाम रखा गया ऋषिदत्ता। ऋषिदत्ता अनुक्रम से युवती हुई और उसने किसी चारण मुनि के पास श्राविका के वत ग्रहण कर लिए। उसकी माता और धात्री (पालन-पोषण करने वाली) की मृत्यु हो गई।

एक बार राजा शिलायुध मृगया खेलते-खेलते उधर आ निकला और ऋषिदत्ता को देखकर कामपीडित हो गया। ऋषिदत्ता ने भी उसका अतिथि सत्कार किया। शिलायुध ने एकात में ले जाकर ऋषिदत्ता के साथ अनेक प्रकार से कामक्रीडा की। ऋषिदत्ता ने उस समय शका प्रगट की—

—राजन् ! मैं सद्यः स्नाता हूँ। यदि गर्भ रह गया तो क्या होगा ?

राजा ने आश्वासन दिया—

—मैं इक्ष्वाकु वंशी श्रावस्ती नरेश शिलायुध का पुत्र शिलायुध हूँ। यदि तुम्हारे पुत्र हो जाय तो मेरे पास आ जाना। मैं उसे राजा बना दूँगा।

इतने में सेना आ पहुँची और शिलायुध अपनी नगरी की ओर चल दिया।

ऋषिदत्ता की आशंका सत्य हुई। उसने गर्भ धारण कर ही लिया था। योग्य समय पर उसने पुत्र प्रसव किया। प्रसव में ही ऋषिदत्ता की मृत्यु हो गई और वह ज्वलनप्रभ नागेन्द्र की अग्रमहिषी बनी। वह अग्रमहिषी मैं ही हूँ।

पुत्री की मृत्यु हो जाने पर उसका पिता तापस अमोघरेता पुत्र को लेकर बहुत देर तक रोता रहा। मैंने अपने अवधिज्ञान से पूर्व वृत्तान्त जान लिया। पुत्र मोह के कारण मैं मृगीरूप में वहाँ आई और स्तनपान कराके उसे बड़ा किया। इसी कारण उस बालक का नाम एणीपुत्र पड़ा।

कौशिक तापस भी मरकर दृष्टिविष सर्प बना और उसने पूर्व वैर के कारण तापस अमोघरेता को डस लिया। मैंने अपने पिता

अमोघरेता का सर्पविष दूर किया और सर्प को प्रतिवोध दिया । वह सर्प मरकर वल नाम का देव हुआ ।

मैने ऋषिदत्ता का रूप रखकर अपने पुत्र को साथ लिया और श्रावस्ती जा पहुँची । राजा गिलायुध को पुत्र देने का प्रयास किया किन्तु वह तो मुझे भूल ही गया था । तब मैने पुत्र तो उसी के पास छोड़ा और आकाश में उड़कर नभोवाणी की—

हे राजा गिलायुध ! वन में रहने वाली निर्दोष कन्या ऋषिदत्ता का तुमने भोग किया था, उसी का फल है यह बालक । ऋषिदत्ता प्रसव काल में ही मर कर देवी बनी है । मैं ही वह देवी हूँ । पुत्र मोह के कारण ही मैने मृगी का रूप रखकर इसका पालन किया है । अतः यह एणीपुत्र के नाम से विख्यात है ।

राजा को वीथी घटना याद आ गई । उसने अपने पुत्र एणीपुत्र को राज्य पर विठाया और स्वयं दीक्षा लेकर स्वर्ग गया ।

एणीपुत्र ने सतान के लिए अट्टमभक्त तप करके मुझे प्रसन्न किया । तब यह प्रियगुसुन्दरी नाम की कन्या मेरे प्रसाद से उत्पन्न हुई ।

प्रियगुसुन्दरी के स्वयंवर में सम्मिलित राजाओं को भी एणीपुत्र मेरी सहायता से ही पराजित कर सका था ।

वसुदेव को सवोधित करके देवी ने कहा

—हे वीर ! प्रियगुसुन्दरी तुम्हें पाने के लिए अट्टमभक्त तप कर रही है । मेरी प्रेरणा से ही द्वारपाल तुम्हें बुलाने आया था किन्तु तुम अज्ञानवश गये नहीं । अब जाकर उसके साथ विवाह करो ।

कुमार वसुदेव शांतिपूर्वक देवी की बातें सुनते रहे । अभी वे कुछ निर्णय नहीं कर पाये थे कि देवी का स्वर पुनः सुनाई पड़ा—

—वत्स ! विचार करने की आवश्यकता नहीं । प्रियगुसुन्दरी का लग्न तुम्हारे साथ हो यह विधि का विधान है । हाँ, यदि तुम चाहो तो भुज्जसे कोई वरदान माँग लो ।

—अभी तो कुछ नहीं चाहिए जब स्मरण करूँ तब आने की कृपा करना । —वसुदेव ने उत्तर दिया ।

—तो तुम्हें प्रियगुसुन्दरी से लग्न स्वीकार है ?—देवी ने पुष्टि चाही ।

—आपकी इच्छा और विधि के विधान उत्पन्न कैसे हो सकता है ? मुझे स्वीकार है । —वसुदेव ने स्वीकृति दी ।

देवी ने भी वसुदेव की इच्छा मान ली । उसने वचन दिया—‘जब भी तुम मुझे बुलाओगे, मैं आऊँगी ।’

इसके बाद देवी ने वसुदेव का हाथ पकड़ा और अशोक वन से उठाकर बन्धुमती के गयन कक्ष में ले आई ।

देवी अतर्धान हो गई और वसुदेव बन्धुमती की बगल में लेट गये ।

प्रातः काल द्वारपाल के साथ वसुदेवकुमार प्रियगुसुन्दरी के पास गये । राजकुमारी उन्हें देखकर कमलिनी की भाँति खिल गई । वसुदेव ने बड़े हर्ष के साथ गाधर्व विवाह किया ।

द्वारपाल ने अठारह दिन बाद उन दोनों के विवाह की बात राजा एणीपुत्र को बताई ।

राजा इस विवाह से प्रसन्न हुआ और वसुदेव तथा प्रियगुसुन्दरी दोनों को अपने महल में ले गया ।

वसुदेव और प्रियगुसुन्दरी—दोनों पति-पत्नी सुख से रहने लगे ।

—त्रिषष्टि० ८।२

—वसुदेव हिंडी, बन्धुमती लम्भक
प्रियगुसुन्दरी लम्भक

—हे सखि ! तुम किस कारण दुखी हो ?

—क्या करोगी, मेरे दु ख को जान कर ?

—तुम्हारा कष्ट मिटाने का उपाय । वताओ तो सही क्या दु ख है तुम्हें ?

—पति-वियोग से बढकर दु ख और क्या हो सकता है ?

यह बातें हो रही थी पति-वियुक्ता सोमश्री और प्रभावती में ।

प्रभावती वैताढ्यगिरि पर अवस्थित गध समृद्धनगर के राजा गधारपिगल की पुत्री थी । वह घूमते-घामते मुवर्णाभ नगर आ पहुँची । वहाँ दु ख सतप्त सोमश्री दिखाई पड़ी तो उसे सहानुभूति हो आई । उसने उसके साथ सखीपना जोड़ लिया ।

प्रभावती ने पूछा—

—सखि ! कौन है तुम्हारा पति ? मुझे वताओ तो मैं उसे ले आऊँ ।

—एक वार इस मानसवेग की बहन वेगवती भी गई थी इसी अभिप्राय से, सो अब तक नहीं लौटी । अब तुम जरूर ले आओगी ।

सोमश्री के शब्दों में छिपे व्यग को प्रभावती समझ गई । पर स्वयं पर काबू रख कर बोली—

—सभी एक सी नहीं होती, सोमश्री ।

—हाँ, होती तो नहीं, पर कामदेव को भी लज्जित करने वाले सुन्दर युवक को देखकर कामपीडित तो सभी हो जाती है ।

—बहुत निराश हो गई हो तुम । मुझ पर विश्वास करो । उनका नाम बता दो ।

प्रभावती के आग्रह पर सोमश्री ने वसुदेव का नाम बता दिया ।

गवार्गपिगल की पुत्री प्रभावती वहाँ से उड़ी और वसुदेव को खोजते-खोजते श्रावस्ती नगरी आ पहुँची। उसने वसुदेव का हरण किया और सोमश्री के पास पहुँचा दिया।

सोमश्री प्रसन्न हो गई पति को देखकर। किन्तु सुवर्णाभि नगर में वसुदेव का रहना भी निरापद न था और सोमश्री को लेकर वहाँ से निकल जाना भी असंभव।

वसुदेव ने अपना रूप दूसरा बनाया और सोमश्री के साथ रहने लगे।

रूप तो बदल लिया था वसुदेव ने किन्तु अपनी उपस्थिति, कैसे छिपा सकते थे। मानसवेग को जात हो ही गया कि एक नया पुरुष सोमश्री के पास रहने लगा है। उसे यह कब सहन होता। बड़े कौशल से उसने वसुदेव को बाँध लिया।

चुष्पाप ही नहीं बँध गये वसुदेव। उन्होंने सघर्ष भी किया और गौर भी मचाया। कोलाहल को मुनकर अन्य विद्याधर आ गये। उन्होंने बीच में पड़कर वसुदेव को बधन मुक्त करा दिया।

बधनमुक्त हुए वसुदेव तो विवाद करने लगे मानसवेग से। वह भी क्यों पीछे रहता, उसने भी जमकर प्रत्युत्तर दिये। वाद-विवाद का मूल था सोमश्री। तर्क-वितर्क में कोई कम नहीं था किन्तु निर्णय कौन करे? मानसवेग के राज्य में तो निष्पक्ष न्याय हो नहीं सकता था। सभी का निर्णय उसके पक्ष में ही होता। अतः तय हुआ कि वैजयन्ती नगरी के राजा बलसिंह को इस विवाद का पत्र बनाया जाय।

मानसवेग और वसुदेव दोनों पहुँच गये राजा बलसिंह के पास पत्र निर्णय कराने। सूर्यक आदि अन्य विद्याधर राजा भी एकत्रित हुए। पचायत बैठी और दोनों को अपना-अपना पक्ष प्रस्तुत करने का अवसर मिला।

पहले बोला मानसवेग—

—सोमश्री मेरे लिए कल्पी गई थी किन्तु वसुदेव ने छलपूर्वक उससे विवाह कर लिया।

—नहो इसके पिता ने ही मुझे दिया था। मैंने कोई छल नहीं किया। छल तो इस मानसवेग ने किया है जो सोती हुई मेरी परिणीता पत्नी सोमश्री को निर्लज्जतापूर्वक उठा लाया।

—और अपनी वहन वेगवती भी मैंने ही तुम्हे दी थी, न ! उसके साथ क्यों सम्बन्ध कर लिया।

—वेगवती मेरी विवाहिता पत्नी है। सभी जानते हैं। और सोमश्री का हरण जग-जाद्विर है। अन्तिम बात यह है कि सोमश्री से ही पूछ लिया जाय कि कौन उसका पति है और वह किसके साथ रहना चाहती है।

वसुदेव के इस तर्क का उत्तर किसी के पास नहीं था। सभी जानते थे कि मानसवेग ने सोमश्री का हरण किया है और उसे बलपूर्वक रोके हुए है।

जब मनुष्य बातों में पराजित हो जाता है तो खीझ कर हाथ चलाने लगता है। यही विद्याधर समूह ने किया। मानसवेग युद्ध को तत्पर हुआ तो उसके साथ नीलकण्ठ,^१ अगारक^२, सूर्पक^३ आदि विद्याधर भी आ गये।

एक ओर अनेक विद्याधर और दूसरी ओर विद्याहीन अकेले वसुदेव। इस अन्याय को वेगवती की माता अगारवती न देख सकी। उसने वसुदेव को दिव्य धनुष और बाणों से भरे दो तरकस दिये। प्रभावती ने प्रज्ञप्ति महाविद्या दी।

दिव्य अस्त्रों से सुसज्जित पराक्रमी वसुदेव ने विद्याधरों को लीला मात्र में ही पराजित कर दिया। मानसवेग को बंदी बना कर सोमश्री के आगे ला पटका।

१ नीलकण्ठ की शत्रुता वसुदेव से नीलयज्ञा के कारण थी।

२ अगारक की शत्रुता का कारण अशनिवेग विद्याधर की पुत्री श्यामा से विवाह था।

३ सूर्पक विद्याधर की शत्रुता का कारण मदनवेगा से वसुदेव का विवाह था।

स्त्री अन्याय नहीं देख सकती तो माँ पुत्र का मरण भी नहीं । पुत्र को वधनग्रस्त देखकर अगारवती का मातृस्नेह उमड़ आया । सोमश्री के हरण के कारण वह पुत्र से नाराज थी । इमीलिए उसने न्याय पथ के अनुयायी वसुदेव को दिव्यास्त्र दिये । माता अगारवती का यह कार्य अपने पुत्र को दंडित करने-जैसा था । उसने वसुदेव से कहा—

—वत्स ! मानसवेग को दण्ड मिल चुका । अब इसे वधनमुक्त कर दो ।

वसुदेव मातृ हृदय की अवहेलना न कर सके । उन्होंने मानसवेग के वधन खोले और अगारवती से कहा—

—आपके आदेश का पालन हुआ । मानसवेग धर्म और न्याय-पूर्वक अपने राज्य का पालन करे । हमे जाने की आज्ञा दीजिए ।

अगारवती से स्वीकृति लेकर वसुदेव सोमश्री के साथ विमान में बैठकर महापुर आ गये और सुखपूर्वक रहने लगे ।

×

×

×

कदाग्रही व्यक्ति अपनी नीचता से वाज नहीं आता । एक बार तो सूर्यक वसुदेव से पराजित हो ही चुका था किन्तु फिर भी उसने शत्रुता का भाव नहीं त्यागा । एक दिन अश्व का रूप धारण करके वसुदेव का हरण कर ले जाने लगा किन्तु एक मुष्टि प्रहार भी न सह सका । एक मुक्के में ही विह्वल होकर निकल भागा । आधार रहित होकर वसुदेव भी गंगा की धारा में गिर पड़े । वहाँ से निकल कर चले तो एक तापस के आश्रम में जा पहुँचे ।

आश्रम में एक स्त्री अपने कंठ में अस्थियों की माला पहने खड़ी थी । वसुदेव ने कौडियों की, शंखों की, रुद्राक्ष और तुलसी आदि की माला तो तापस स्त्रियों को पहने देखा था किन्तु मानव-अस्थियों की माला ? यह पहली ही घटना थी । उत्सुकतावश उन्होंने तापसियों से उस स्त्री का परिचय पूछा । एक तापस ने बताया—

‘यह जितशत्रु राजा की स्त्री नदिपेणा है । किसी सन्यासी ने इसे

वग मे कर लिया था। मन्थासी को तो राजा ने मार डाला किन्तु यह इसके मंत्र के प्रभाव से मुक्त नहीं हो पाई। अब भी उसकी अस्थियों की माला कठ मे धारण किये हैं।'

वसुदेव ने अपने मंत्र बल का चमत्कार दिखाया और नदिपेणा को स्वस्थ कर दिया। उसने अस्थियों की माला उतार फेंकी और अपने पति जितशत्रु की इच्छा करने लगी।

जितशत्रु ने इस उपकार के बदले वसुदेव को अपनी वहन केतुमती दी।

एक दिन जरामध के द्वारपाल डिभ ने आकर जितशत्रु से कहा—
—राजन् ! मेरे स्वामी ने कहलवाया है कि नदिपेणा को स्वस्थ करने वाला हमारा उपकारी है। उसे हमारे पास भेजो।

जितशत्रु ने यह बात स्वीकार की। उसने वसुदेव से कहा—
—भद्र ! नदिपेणा राजा जरामध की वहन है। उसके स्वस्थ होने में वह बहुत प्रसन्न हुआ है। तुम्हें पुरस्कृत करने हेतु तुलाया है। तुम जाओ।

वसुदेव को जरामध और जितशत्रु की बात युक्तिसंगत लगी। वे द्वारपाल के साथ रथ में बैठकर राजगृही नगरी पहुँचे। नगर में प्रवेश करते ही रक्षको ने उन्हें बाँध लिया। विस्मित होकर वे कहने लगे—

—यह कैसा पुरस्कार मिल रहा है, मुझे ? मैंने जरामध की वहन को स्वस्थ किया और उसने मुझे बन्दी बना लिया।

रक्षको ने बताया—

—किसी ज्ञानी ने राजा जरामध को बताया था कि नदिपेणा को स्वस्थ करने वाले पुरुष का पुत्र तेरा काल होगा। इसीलिए तुमको बाँधा गया है।

—अब क्या करोगे तुम लोग ? मुझे जरामध के सामने पेश करोगे।

—नहीं ! उसकी आवश्यकता नहीं है। हम लोगो को आदेश है कि तुम्हें वधस्थल पर ले जाकर मार दिया जाय।

यह कह कर रक्षक उन्हें वधस्थल पर ले गये । वहाँ नुष्टिक आदि मल्ल उन्हें मारने के लिए तैयार खड़े थे ।

×

×

×

राजगृही नगरी में वसुदेव की मृत्यु सामने खड़ी थी और गध-समृद्ध नगर में उनके विवाह की वातचीत चल रही थी । राजा गधारपिंगल को एक विद्या बता रही थी कि 'उमकी पुत्री प्रभावती का विवाह वसुदेव से होगा ।' पुनः राजा ने पूछा—'इस समय वसुदेव कहाँ हैं' तो विद्या ने उत्तर दिया—'राजगृही नगरी के वधस्थल पर खड़ा है ।'

राजा गधारपिंगल ने तुरत भगीरथी नाम की धात्री भेजी । आनन-फानन में धात्री वसुदेव के पास पहुँची । उसने अपने विद्यावल से नुष्टिक आदि को सभ्रमित किया और वसुदेव को ले उठी । जिन्दगी और मौत में कितना कम फासला होता है ।

वसुदेव प्रभावती के साथ विवाह करके मुख में रहने लगे ।

उन्होंने अन्य विद्याधर कन्याओं से भी विवाह किया और सुको-शला का परिणय करके उसके महल में निविधन रूप से मुख-भोग में लीन हो गये ।

—त्रिषष्टि० ८।२

—वसुदेव हिंडी, प्रभावती लभक



अशोक वृक्ष के पल्लव जैसे रंग की नयनाभिराम रक्तवर्णी चोच, चरण और लोचन वाला एक राजहंस राजकुमारी कनकवती के महल पर आ बैठा। गने में सुन्दर स्वर्ण धुवुरुओं की माला तथा उसकी मद-मद चाल ने राजकुमारी का मन मोह लिया।

राजकुमारी कनकवती पेढालपुर नगर के राजा हरिश्चन्द्र और रानी लक्ष्मीवती की अनुपम सुन्दरी पुत्री थी। जिस समय वह उत्पन्न हुई, पूर्व जन्म के स्नेह के कारण धनपति कुवेर ने कनक (स्वर्ण) की वर्षा की, इसी कारण उसका नाम कनकवती रखा गया। कनकवती जितनी रूपवती थी उतनी ही गुणवती भी। स्त्रियोचित चौंसठ कलाओं में वह निष्णात थी।

उसकी दृष्टि राजहंस के कंठ पर जाकर अटक गई। विचार करने लगी—‘यह राजहंस अवश्य ही किसी पुण्यवान पुरुष का पालतू है; अन्यथा गले में स्वर्ण माला कहाँ से आती?’

राजहंस तब तक गौख में उतर आया और धीरे-धीरे इस प्रकार चहलकदमी करने लगा मानो नृत्य ही कर रहा हो। राजकुमारी का मन उससे विनोद करने को मचल उठा। हसगामिनी कनकवती उस हंस को पकड़ने के लिए धीरे-धीरे अचक-पचक कदम रखती हुई बढ़ी—कही आवाज न हो जाय और हंस उड़ जाय। हंस भी कुछ कम नहीं था वह भी कनकवती की गतिविधियों पर नजर रखे था। ज्यों ही राजपुत्री ने उसे पकड़ने के लिए हाथ बढ़ाया त्यों ही फुदक कर आगे बढ़ गया।

राजकुमारी उसे पकड़ने का प्रयास करती और वह फुदक कर आगे बढ़ जाता, कभी पीछे लौट आता तो कभी बाये दाये जा बैठता। कुछ देर तक विनोद करने के बाद हंस राजकुमारी के हाथों में आ गया।

हंस को पकड़ कर राजपुत्री प्रसन्न हुई और उसकी सुकोमल चिकनी देह पर हाथ फेरने लगी।

राजकुमारी इस सुख को स्थायी करने के लिए लालायित हुई। उसने अपनी मखी से कहा—

—एक सोने का पिंजरा लाओ। क्योंकि बिना पिंजरे के यह उड़ जायेगा।

सखी पिंजरा लेने चली गई। अब दो ही रह गये—राजहंस और राजकुमारी। मानवी भाषा में राजहंस बोला—

—पिंजरे में वन्द क्यो करती हो, राजकुमारी! मुझे छोड़ दो। मैं तुम्हें प्रिय समाचार सुनाऊंगा।

पक्षी को मनुष्य की भाषा बोलते देखकर कनकवती विस्मित रह गई। स्नेहपूर्वक मधुर वचन कहने लगी—

—अरे हंस! तू तो बड़ा रहस्यमयी निकला। बता वह प्रिय समाचार क्या है?

—प्रिय समाचार प्रिय का समाचार होता है, युवती के लिए। वही मैं लाया हूँ।

कनकवती के मन में गुदगुदी होने लगी। मुख लज्जा से लाल हो गया पर ऊपरी मन से बोली—घट् ।

राजहंस कहने लगा—

—सुन्दरी! तुम्हारा स्वयंवर होने वाला है। इसीलिए मैं यहाँ आया हूँ कि जैसे तुम्हारी सुन्दरता अनूपम है और गुण अप्रतिम वैसे ही यदुवगी वसुदेव कुमार का रूप और पराक्रम अद्वितीय है। तुम दोनों की जोड़ी ही उचित रहेंगी। तुम उसी के गले में वरमाला डालना।

यह चन्द्रातप विधाघर है। वड़े प्रेम से वसुदेव ने उसका आलिंगन किया और पूछने लगे—

—मित्र ! अर्ध रात्रि को कैसे कष्ट किया यहाँ आने का ?

चन्द्रातप कहने लगा—

—समय कम था, इसीलिए आपके विश्राम ने विघ्न डाला।

—क्या ?

—हाँ, आज कृष्ण पक्ष की दशमी है और गुक्ल-पक्ष की पचमी को उसका स्वयंवर होने वाला है। आप अवश्य चलिए वह आपको चाहती है।

वसुदेव प्रसन्न हो गये। पूछा—

—तुमने यह कौतुक किस प्रकार किया ?

विद्याधर चन्द्रातप ने बताया—

—हे यदुत्तम ! आपको कनकवती का रूप बताने के बाद मैं पेढालपुर पहुँचा। विद्या-बल ने आपका एक चित्र पट बनाया और राजपुत्री के अक में डाल दिया। आपके चन्द्रमुख को वह चकोरी की भाँति देखने और आह भरने लगी। उसने मुझसे कहा—‘इस सुन्दर युवक को स्वयंवर में अवश्य लाना।’ इसलिए आपका वहाँ पहुँचना जरूरी है।

हँस कर वसुदेव बोले—

—तुमने अपना कौशल दिखा ही दिया। ठीक है, कल सुबह मैं स्वजनो की आज्ञा लेकर प्रमदवन आ जाऊँगा। तुम मुझे तैयार मिलना।

विद्याधर चन्द्रातप यह सुनकर अतर्धान हो गया और वसुदेव अपनी शेंग्या पर आ सोए।

दूसरे दिन स्वजनो से आज्ञा लेकर वसुदेव और चन्द्रातप पेढालपुर की ओर चल दिये।

पेढालपुर में राजा हरिश्चन्द्र ने वसुदेव को आदरपूर्वक लक्ष्मी-रमण उद्यान में निर्मित भवन में ठहरा दिया।

वसुदेव ने लक्ष्मीरमण उद्यान के नामकरण के सम्बन्ध में लोक

चर्चा मुनी कि 'एक वार इसी उद्यान मे तीर्थंकर भगवान नमिनाथ का समवसरण लगा था। उस समय देवी लक्ष्मी ने उनके समक्ष बहुत ही मनोरम नृत्य रास किया। तभी मे इस उद्यान का नाम लक्ष्मीरमण पड गया है।

'प्रभु की समवसरण भूमि मे ठहरा हूँ' यह जान कर उन्हे अपार हर्ष हुआ। वे मन ही मन प्रभु वन्दना करने लगे। उसी समय वहाँ एक विमान उतरा। विमान दिव्य-मणियों से विभूषित था। मणियों की चमक आँखो को चुँधिया रही थी। उसमे से एक प्रमुख देवता अपने अनुचरो सहित उतरा। वसुदेव ने उसमे से उतरे एक देव से पूछा—

—यह किसका विमान है ?

—धनद कुवेर का।

—किस अभिप्राय से पृथ्वी पर आये है ?

—अर्हन्त भगवान की वन्दना करने के वाद कनकवती के स्वयंवर मे सम्मिलित होने के लिए।

कुमार वसुदेव सोचने लगे—'धन्य है जिनेन्द्र भगवान् कि देव भी इसकी वन्दना करते हैं। और इस कनकवती का भाग्य क्या कहिए कि देव लोग भी इसके स्वयंवर मे सम्मिलित होने के लिए आए है।'

वे इन्ही विचारो मे मग्न थे कि कुवेर भगवान की वन्दना करके बाहर निकला। वहाँ उसने वसुदेव को देखा। वह सोचने लगा—'यह पुरुष देवोत्तम आकृति वाला है। मनुष्यो और विद्याधरो मे तो ऐसा रूप मिलता नही।'

विमान मे बैठेउठे उसने कुछ निर्णय किया और अगुली से वसुदेव को बुलाने लगा।

'मैं मनुष्य हूँ और यह परम आर्तुत तथा महर्द्धिक देव है' मन मे विचारते हुए वसुदेव उत्सुकतापूर्वक उसके पास जा पहुँचे। कुवेर ने मधुर वचनो से उनका स्वागत किया। वसुदेव ने विनीत स्वर मे पूछा—

—आज्ञा दीजिए। मैं आपका क्या काम करूँ ?

—भद्र ! मेरे दूत बनना स्वीकार करो ।

—कहाँ जाना होगा ?

—राजा हरिश्चन्द्र की पुत्री कनकवती के महल में ।

वसुदेव सोचने लगे । तभी कुवेर ने कहा—

—किस दुविधा में पड़े हो ?

—मैं सोच रहा हूँ कि उसके महल तक कैसे पहुँच सकूँगा ।
द्वारपाल ही रोक देंगे ।

—मैं तुम्हें अदृश्य होने की विद्या तथा अस्खलित वेग की शक्ति देता हूँ ।

—तब ठीक है । क्या कहना होगा ?

—तुम कहना कि देवराज इन्द्र का उत्तर दिशा का लोकपाल घनद कुवेर तेरे प्रणय की इच्छा करता है । तू मानुषी तो है ही, उससे विवाह करके देवी बन ।

कुवेर के इन शब्दों से वसुदेव के हृदय को धक्का सा लगा । किन्तु उन्होंने अपने मन के भाव मुख पर नहीं आने दिए । प्रगट में बोले—
‘जैसी आपकी आज्ञा ।’

कुमार वसुदेव अपने भवन में गये और राजसी वस्त्र उतार कर साधारण वस्त्र धारण करके लौटे । कुवेर ने पूछा—

—भद्र ! यह क्या ? तुम इस साधारण वेश में ?

—दूत के लिए यही वेश उचित है ।

—सभी जगह आडवर का सत्कार होता है ।

—किन्तु दूत के लिए उसके वचन ही आभूषण हैं ।

वसुदेव के इस उत्तर से कुवेर प्रसन्न हो गया । उसने आशीर्वचन कहे—
तुम्हारा कल्याण हो ।

कुवेर का अभिवादन करके वसुदेव कनकवती के महल की ओर चल दिये ।

अस्खलित गति वाले वसुदेव अदृश्य रूप से राजमहल के प्रथम कक्ष में पहुँचे। वहाँ उन्हें बहुत सी स्त्रियों का समूह दिखाई दिया। उसे उल्लघन करते दूसरे, तीसरे, चौथे, पाँचवे, छठे और सातवे कक्ष में जा पहुँचे। उनकी नजरे कनकवती को ढूँढ रही थी किन्तु वह कहीं भी दिखाई न दी। वे एक स्थान पर खड़े सोचने लगे—‘क्या करूँ ? किस तरह कनकवती का पता लगाऊँ ? किसी से पूछता हूँ तो मेरा रहस्य खुल जायगा।’

वसुदेव यही सोच रहे थे कि उत्तम वेश वाली एक दासी पीछे के द्वार से आई। उसे देखते ही वहाँ उपस्थित अन्य स्त्रियों ने पूछा—

—राजकुमारी कनकवती कहाँ है और क्या कर रही है ?

—अभी तो प्रमदवन के प्रासाद (महल) में अकेली बैठी हैं।—
नवागन्तुक दासी ने उत्तर दिया।

राजकुमारी का पता मिल चुका था वसुदेव को। तुरन्त वहाँ से चले और प्रमदवन जा पहुँचे। प्रमदवन में सात-मजिला प्रासाद था। एक-एक करके सातों मजिल पार हुई तो एक सिंहासन पर बैठी राजकुमारी दिखाई दी। हाथ में उन्हीं का चित्रपट था। वह बार-बार चित्र देखती और लम्बी-लम्बी साँसे भरती।

कुमार वसुदेव उसके सम्मुख जाकर प्रगट हो गये। कनकवती की दृष्टि सामने खड़े पुरुष की ओर उठी। वह सन्भ्रमित होकर कभी

चित्र को देखती और कभी सामने खड़े वसुदेव को । एकाएक वह प्रसन्न होकर उठ खड़ी हुई और अजलि बाँध कर बोली—

—मेरे पुण्य योग से तुम यहाँ आ गये । मैं तुम्हारी दासी हूँ ।

यह कहकर कनकवती उन्हें नमन करने को तत्पर हुई । बीच में ही उसे रोक कर वसुदेव बोले—

—स्वामिनी दास को नमन करे, यह अनुचित है ।

—कौन दास ? कौन स्वामिनी ? मुझे स्वामिनी कहकर लज्जित न करिये । मैं तो आपकी दासी हूँ ।

—पहले मेरा परिचय तो जान लीजिए ।

—जानती हूँ आप यदुवशो वसुदेव कुमार हैं । इससे ज्यादा और क्या जानना शेष रह जाता है ?

—परिचय तो मेरा यही है किन्तु इस समय मैं तुम्हारे पास कुवेर का दूत बनकर आया हूँ ।

—कुवेर का दूत ?—आश्चर्यचकित होकर कनकवती ने पूछा—
क्या सदेश है उनका ?

वसुदेव कहने लगे—

—देवराज इन्द्र का उत्तर दिशा का स्वामी (लोकपाल) धनद कुवेर तुम्हारा परिणय करना चाहता है । मैं उनका दूत हूँ । मेरी प्रार्थना है कि तुम उसकी पटरानी बनना स्वीकार करो ।

राजकुमारी चिन्ता में पड़ गई । एक ओर कुवेर की याचना और दूसरी ओर उसके हृदय में वसे वसुदेव कुमार । किन्तु उसने तुरन्त निर्णय लिया और बोली—

—मैं कुवेर को प्रणाम करती हूँ किन्तु मानवी का सवध देवों से नहीं हो सकता । वे महर्द्धिक सामानिक देव हैं और मैं साधारण स्त्री ।

—तुमने कुवेर की इच्छा उल्लंघन किया तो मुसीबत में पड़ जाओगी ।

—नहीं कुवेर परम आर्हत है । किसी पूर्वजन्म के सम्बन्ध के कारण वे मुझ पर अनुरक्त हुए हैं किन्तु अर्हन्त प्रभु के इस वचन के

अनुसार कि 'औदारिक शरीर की दुर्गन्ध सामानिक देव नहीं सह पाते' वे मुझसे विवाह नहीं कर सकते ।

—वे तो इसी अभिप्राय से यहाँ आये हैं ।

—आप उन्हें अरिहन्त प्रभु के वचनों का स्मरण कराके मेरा प्रणाम कह देना और यह भी बता देना कि कनकवती मन-वचन-काय से वसुदेव की ही पत्नी है ।

वसुदेव ने पुनः समझाया—

—कनकवती ! भली भाँति सोच लो ! देवों की इच्छा अनुल्लघनीय होती है ।

—अनुल्लघनीय तो अर्हन्त प्रभु की वाणी ही है । मानवी (मनुष्य स्त्री) के लिए देव पूज्य और आदर योग्य तो हो सकते हैं किन्तु पति बनने योग्य नहीं, उसका पति तो मनुष्य ही हो सकता है । —कनकवती ने समझाते हुए आगे कहा—

—आपका दूत कार्य समाप्त हुआ ।

राजकुमारी के दृढ़ उत्तर को सुनकर वसुदेव अदृश्य होकर वहाँ से चल दिये । कुवेर के पास आकर पूरा वृत्तान्त सुनाने को हुए तो कुवेर ने उन्हें रोक कर कहा—

—मुझे सब मालूम है, कुछ कहने की आवश्यकता नहीं ।

वसुदेव कुमार चुप हो गये । कुवेर ने अपने अन्य अनुचरों के समक्ष उनकी प्रशंसा की

—यह पुरुष निर्मल चरित्र वाला है ।

प्रसन्न होकर कुवेर ने वसुदेव को सुरेन्द्रप्रिय नाम का दिव्य गध वाला देवदूष्य वस्त्र, सूरप्रभ नाम का मुकुट, जलगर्भ नाम के दो कुडल, शशिमयूख नाम के दो केयूर (बाजू बन्ध), अर्घ शारदा नाम की नक्षत्रमाला,^१ सुदर्शन नाम के विचित्र (रुचिर) मणि-जटित

१ यह सत्ताइस मोतियों से बना हार होता है । आकाशस्थ नक्षत्रमाला में भी सत्ताइस नक्षत्र हैं । इसी कारण नक्षत्रमाला में सत्ताइस मोती होते हैं ।

दो कगन, स्मरदारुण नाम का कटिसूत्र,^१ दिव्य पुष्पमाला और विनेपन दिए।

इन दिव्य वस्त्रालकारों से विभूषित होकर वसुदेव दूसरे कुबेर ही लगने लगे। उपस्थित सभी देव वसुदेव की प्रशंसा करने लगे।

कुबेर का आगमन ऐसी साधारण घटना नहीं थी कि राजा हरिश्चन्द्र को ज्ञात न होती। हरिश्चन्द्र राजा ने भी कुबेर को अजलि वद्ध होकर प्रणाम किया और बोला—

—देव ! आपके आगमन से मेरा नगर पवित्र हो गया। मेरे और मेरी पुत्री के अहोभाग्य कि आप उसके स्वयवर में पधारे। आप स्वयवर अवश्य देखिए।

—मैं इसी अभिप्राय से आया हूँ। —कुबेर ने राजा को आश्वासन दिया।

आश्वस्त होकर राजा हरिश्चन्द्र ने शीघ्र ही स्वयवर की व्यवस्था कराई।

स्वयवर मंडप सज गया। अनेक देशों के राजा वहाँ उत्तम वेश-भूषा में आ विराजे। तभी कुबेर ने अपने दिव्य विमान में बैठ कर प्रवेश किया। सभी ने उठ कर उसका स्वागत किया। कुबेर अपने लिए निर्मित एक उच्चासन पर बैठ गया। अपने पास ही उसने वसुदेव कुमार को एक दूसरे सिंहासन पर बिठा लिया। अपनी नामांकित अर्जुन जाति के स्वर्ण की एक मुद्रा वसुदेव को देकर बोला—

—भद्र ! इसे पहन लो।

वसुदेव ने कनिष्ठिका^२ में वह मुद्रा धारण कर ली। मुद्रिका के प्रभाव से उनका रूप कुबेर का सा हो गया। अब स्वयवर मंडप में दो कुबेर दिखाई देने लगे। उपस्थित लोग कहने लगे—

—अहो ! धनद कुबेर अपने दो रूपों में उपस्थित है।

१ कटिसूत्र—कमर में पहने जाने वाला पुरुषों का आभूषण।

२ कनिष्ठिका हाथ की चौथी यानी सब से छोटी अंगुली को कहा जाता है।

उसी समय रूप और गुण की खानि राजकुमारी कनकवती ने हाथ में वरमाला लेकर मद-मद कदमों से मडप में प्रवेश किया। सभी राजा सावधान हो गये। कनकवती एक-एक करके राजाओं को देखती जा रही थी। जिसके सामने वह आती वह फूल जाता और जब वह आगे बढ़ जाती तो पिचक जाता मानो गुब्बारे की हवा निकाल दी गई हो। कनकवती संपूर्ण स्वयंवर मडप में घूम गई किन्तु उसे मन का मीत न दिखाई दिया। सायकाल की कमलिनी के समान उसका मुख म्लान हो गया। वह खड़ी रह गई।

जब किसी राजा के गले में वरमाला नहीं पड़ी तो वे सोचने लगे—
'क्या हमारे रूप, वेग, चेष्टा आदि में कोई कमी है ?'

राजकुमारी को किकर्तव्यविमूढ देखकर पात खड़ी सखी ने कान में कहा—

—देर क्यों कर रही हो ? किसी भी पुरुष के गले में माला डाल दो।

—कैसे डाल दूँ किसी के भी कंठ में माला ? जिसको हृदय में बसाया वह तो दिखाई देता ही नहीं।

—एक बार पुन ध्यान से देखो। —सखी ने उत्साहित किया।

कनकवती की दृष्टि एक-एक राजा पर घूमने लगी। जब कुवेर पर दृष्टि पड़ी तो देखा कि वे मुस्करा रहे हैं। इससे भी अधिक आश्चर्य उसे तब हुआ जब उसे दो कुवेर दिखाई पड़े। उसकी अन्तः-रात्मा से आवाज उठी—'यह कुवेर की ही लीला है। इन्हीं ने वसुदेव का रूप परिवर्तित कर दिया है।' तुरन्त कुवेर को जाकर प्रणाम किया और कातर स्वर में बोली—

—हे देव ! मुझसे ऐसा मजाक मत करो। मेरे पति को प्रकट कर दो।

अपनी इसी भव की पत्नी^१ की कातरता देख कर कुवेर वसुदेव

१ कनकवती अपने इस जन्म में पहले इसी कुवेर की पत्नी थी। वह स्वर्ग में च्युत होकर कनकवती के रूप में उत्पन्न हुई थी। इसी कारण वह कुवेर के लिए उसके इसी जन्म की पत्नी थी।

से बोले—

—भद्र ! वह अर्जुन जाति के स्वर्ण^१ से निर्मित मेरी मुद्रिका उतार दो ।

वसुदेव ने मुद्रिका उतारी तो चमत्कार सा हुआ । उनका अपना स्वरूप प्रगट हो गया । प्रसन्न होकर कनकवती ने वरमाला उनके कंठ में डाल दी ।

उसी समय कुवेर की आज्ञा से आकाश में देव-दुःसुभी वजने लगी । अप्सराएँ नृत्य और गायन करने लगी । आकाश वाणी हुई—

—अहो ! इस राजा हरिश्चन्द्र की पुत्री कनकवती धन्य है कि इसने लोक-प्रधान पुरुष का वरण किया ।

कुवेर की आज्ञा से देवियों ने वसुधारा वरसाई ।

वसुदेव और कनकवती के विवाह की तैयारियाँ होने लगी । स्वयंवर में उपस्थित सभी राजा रोक लिए गये । सभी विवाह कार्य में उत्साहपूर्वक भाग लेने लगे ।

जहाँ धनद कुवेर स्वयं उपस्थित हो वहाँ किस वस्तु की कमी हो सकती है ?

ब्रूमधाम से विवाह सम्पन्न हुआ ।

स्वयंवर में उपस्थित सभी राजा विदा हो गये किन्तु राजा हरिश्चन्द्र ने आग्रहपूर्वक कुवेर रोक लिया । वे भी कनकवती के प्रति मोह होने के कारण रुक गये ।

मोह का बन्धन^२ अदृश्य होते हुए भी सर्वाधिक शक्तिशाली होता है ।

—त्रिषष्टि ८/३



१ अर्जुन जाति का स्वर्ण समवत किमी अन्य स्थान पर प्राप्त होने वाला विजेष प्रकार का स्वर्ण है ।

२ कनकवती और कुवेर के पिछले जन्मों के मवध तथा मोह के बन्धन का पूरा वृत्तान्त नल-दमयन्ती उपाख्यान में है ।

इच्छा पूरी होने में व्यवधान शत्रुता का जनक होता है। सूर्यक^१ भी वसुदेव से शत्रुता का भाव रखता था। एक रात्रि को वह कनकवती के महल से सोते हुए वसुदेव को विद्या बल से ले जाने लगा। मार्ग में वसुदेव की नींद टूटी तो उन्होंने उम पर मुष्टिका प्रहार किया। विह्वल होकर सूर्यक ने उन्हें छोड़ दिया और वे गोदावरी नदी में जा गिरे। नदी पार करके कोल्लालपुर पहुँचे और वहाँ के राजा पद्मरथ की पुत्री पद्मश्री के साथ विवाह कर लिया।

वहाँ से उनका हरण नीलकण्ठ विद्याधर ने किया किन्तु वह भी मार्ग में छोड़कर भाग गया। वसुदेव चपापुरी के समीप मरोवर में गिरे। नगर में आये तो मन्त्री ने अपनी कन्या उन्हें दे दी।

सूर्यक ने वसुदेव का पीछा अब भी न छोड़ा। उसने उनका पुनः अपहरण कर लिया। फिर मुक्के की चोट से विह्वल हुआ और छोड़ कर भागा। वसुदेव गंगा नदी में गिर पड़े। नदी को पार करके साधारण पथिकों के समान एक पल्ली में पहुँचे। पल्लीपति ने अपनी

१. सूर्यक दिवस्तिलक नगर के विद्याधर राजा त्रिगिखर का पुत्र था। वह विद्युद्देव की पुत्री मदनवेगा से विवाह करना चाहता था किन्तु मदनवेगा का विवाह वसुदेव से हो गया। इसी कारण वह वसुदेव से शत्रुता रखता था।

२. नीलकण्ठ विद्याधर की शत्रुता का कारण सिंहद्वार की पुत्री नीलयशा थी। उसका भी विवाह नीलकण्ठ से न होकर वसुदेव से हो गया था।

जरा नाम की पुत्री के साथ उनका विवाह कर दिया। जरा से वसुदेव के जराकुमार नाम का पुत्र हुआ।

पल्ली से वसुदेव चले तो अवति सुन्दरो, सूरसेना, नरद्वेपी तथा अन्य अनेक राजकन्याओं के साथ विवाह सम्बन्ध स्थापित किये।

× × ×
एक बार वसुदेव कहीं चले जा रहे थे। मार्ग में किसी देवी ने आकर कहा—

—हे वसुदेव ! मैं तुम्हें रुधिर राजा की पुत्री रोहिणी के स्वयंवर में पहुँचाए देता हूँ क्योंकि तुम्हें वहाँ जाकर अन्य वादकों के साथ ढोल (पटह) बजाना है।

वसुदेव कुछ कह पाते इससे पहले ही देव उन्हें स्वयंवर मंडप में ले पहुँचा और उनके गले में ढोल डाल दिया। अब वसुदेव को गाने में पड़ा ढोल बजाना ही पड़ा। अन्य वादकों में वे भी सम्मिलित हो गए।

स्वयंवर मंडप अरिष्टपुर में लगा हुआ था। वहाँ जरासंध आदि अनेक राजा विराजमान थे। समुद्रविजय भी अपने भाइयों सहित इस स्वयंवर में सम्मिलित हुए थे।

साक्षात् चन्द्रप्रिया रोहिणी के समान सुन्दर रूप वाली रुधिर पुत्री रोहिणीकुमारी ने सखियों के साथ स्वयंवर मंडप में प्रवेश किया। उसके हाथों में वरमाला आकागन्ध नक्षत्रमाला के समान सुशोभित हो रही थी।

राजकुमारी की रूप-राशि से प्रभावित होकर सभी राजा सँभल कर बैठ गए। अनेक प्रकार की चेष्टाओं द्वारा वे रोहिणी को आकर्षित करने लगे। रोहिणी उन पर दृष्टिपात करती और आगे चल देती। उसे कोई राजा जँचा ही नहीं।

वसुदेव का वेश बदला हुआ था। उनके ढोल बजाने का ढग कुछ अलग ही था। विगिष्ट ताल-लय में कुछ शब्द निकल रहे थे। रोहिणी के कानों में वे शब्द पड़े—‘हे मृगनयनी ! यहाँ आओ। हरिणी की भाँति इधर-उधर मत भ्रमो। मैं तुम्हारे योग्य पति हूँ।’

ये शब्द सुनकर रोहिणी के कान खड़े हुए। उसने पुनः ध्यान डेकर सुना। यही शब्द ये। कोई भ्रान्ति नहीं। उसके कदम ढोल बजाने वाले वादक की ओर उठ गए। क्षण भर का आँखें मिल्नी और वरमाला ढोल-वादक के कंठ में सुशोभित होने लगी।

‘अनेक क्षत्रिय राजाओं के समक्ष एक वादक के गले में वरमाला’। स्तम्भित रह गए सभी उपस्थित जन। कुछ को क्रोध आया तो किसी-किसी को परिहास भी मूझा। कोमला के राजा दन्तवक्र में नहीं रहा गया वे कह उठे—खूब शिक्षा दी राजा रुधिर आपने कन्या को। क्या उत्तम वर चुना है।

किसी दूसरे की आवाज आई—पति ढोल बजाया करेगा और राजकुमारी सुन-सुन कर प्रमत्त होती रहेगी।

—ऐसा मनोरंजन करने वाला दूसरा कहाँ मिलेगा? —तीसरी दिशा से आवाज उठी।

—अरे, पुत्री ही क्यों पिता भी वाद्य-संगीत का आनन्द लिया करेंगे? —कुछ राजा बोल पड़े।

—हाँ भाई। हम लोग में ऐसी योग्यता कहाँ? —किसी ने फट्ती कम दी।

—ऐसी योग्यता न मही किन्तु इस वादक में रोहिणी को छीन लेने की योग्यता तो है ही। —दन्तवक्र ने टेढ़े दाँत करके कहा।

दन्तवक्र के इन शब्दों में परिहास का वानावरण गभीरता में बदल गया। हँसी के फव्वारे बन्द हो गए। नीरवता छा गई। राजा रुधिर का गभीर स्वर गूँजा—

—सम्माननीय राजाओं। स्वयंवर का नियम है कि जिसके गले में वरमाला पड़ गई वही कन्या का पति हो गया, चाहे वह कोई भी क्यों न हो? वर के चयन में कन्या पूर्ण स्वतंत्र होती है। आप लोग रोप न करें।

—तो क्या अपने अपमान पर बुनियाँ मनाएँ। इस ढोलची के गले का ढोल अपने गले में डाल कर गलियों में इस गाथा को गाते फिरें कि

हम क्षत्रियो के बीच से एक ढोल वादक राजकन्या रोहिणी को ले गया और हम लोग देखते ही रह गए । —राजाओ ने भ्रुकुटी टेढ़ी करके उत्तर दिया ।

न्यायवेत्ता विदुर ने कुपित राजाओं को शान्त करने की इच्छा से कहा—

—राजाओं ! आप लोगो का कथन उचित है । किन्तु इस पुरुष का कुल-शील तो जान ही लेना चाहिए ।

—अपना कुल-शील बताने के लिए मेरी भी भुजाएँ फड़क रही हैं । कोई आगे तो बढ़े मेरी पत्नी रोहिणी की तरफ—चीर कर दो कर दूँगा । —वादक के वेश में छिपे हुए वसुदेव बोल उठे ।

वसुदेव के इन शब्दों से आग में घी पड़ गया । विदुर की शान्ति स्थापित करने की चेष्टा धरी की धरी रह गई । क्षत्रियो को ऐसे शब्द कहाँ सहन हो सकते थे और वह भी एक ढोलची के मुख से । भरतार्द्ध के स्वामी प्रतिवासुदेव का चेहरा क्रोध से तमतमा गया । उसके कुपित मुख से विषवाण निकले—

—राजाओं ! पहले तो रुधिर राजा ने हमारा अपमान कराया और दूसरे वरमाला कंठ में पड़ने से यह ढोलची भी ढोल के समान ही बजने लगा है । इसे राजकन्या प्राप्त होने से सतोष नहीं हुआ वरन् घमड़ बढ़ गया । इसका दिमाग सातवें आसमान पर चढ़ गया है । राजा रुधिर का रुधिर बहा दो और इस वादक के गले में पड़ी वरमाला को फाँसी का फंदा बना दो ।

जरासंध के शब्दों ने चावुक का सा काम किया । सभी राजा शस्त्र निकाल कर वादक पर झपटने को तत्पर हुए ।

वादक ने मुस्करा कर कहा—

—ऐसे नहीं ।

—तो कैसे ? राजा उसकी व्यगपूर्ण मुस्कान से चकित थे ।

—तुम सबसे अकेले युद्ध करने में मजा नहीं आएगा । सभी अपनी सेना और ले आओ तो कुछ देर तो युद्ध चले । —वसुदेव के शब्दों में तीखा व्यंग था ।

व्यग का उत्तर दिया जरासध ने—

—इसके गर्व को चूर्ण करना ही होगा । सभी राजा अपनी-अपनी सेना सजा कर मैदान में आ डटे ।

×

×

×

जरासध की प्रेरणा से समुद्रविजय आदि सभी राजाओं की सेना मैदान में आ जमी । राजा रुधिर भी अपनी सेना लेकर मुकावले में आ खड़ा हुआ ।

दधिमुख विद्याधर^१ सारथी सहित रथ ले आया और उस पर वसुदेव सवार हो गए । वसुदेव ने भी वेगवती की माता अगारवती द्वारा दिए गए धनुष आदि अस्त्रों को धारण कर लिया ।^२

जरासध का कटक और राजाओं के समूह को सर्वोचिन करके वसुदेव ने कहा—

—हाँ अब कुछ समय तक तो तुम लोग टिक ही सकोगे ।

वसुदेव की इस बात का उत्तर दिया जरासध की सेना ने हल्ला बोल कर । पहले आक्रमण में ही राजा रुधिर की सेना भग हो गई । विजय से फूल कर राजा शत्रुजय वसुदेव की ओर मुड़ा । विद्याधर दधिमुख ने स्वयं सारथी का भार सँभाला और वसुदेव का रथ शत्रुजय के सामने ला खड़ा किया । शत्रुजय ने गर्वित होकर शस्त्र प्रहार किया

१ दधिमुख विद्याधर राजा विद्युद्वेग का पुत्र और मदनवेगा (वसुदेव की पत्नी) का भाई था । वसुदेव ने विद्याधर विद्युद्वेग को दिवस्तिलक नगर के राजा त्रिगुण को मार कर उसके बन्दीगृह से मुक्त कराया था । साले-बहनों के सम्बन्ध और कृतज्ञता के कारण दधिमुख वसुदेव के लिए रथ लेकर आया ।

२ वेगवती (वसुदेव की पत्नी) की माता ने नीलकण्ठ, अगारक, सूर्यक आदि विद्याधरों से युद्ध करने के लिए एक दिव्य धनुष और दो दिव्य तरकस दिये थे ।

किन्तु उसका वार खाली गया और वसुदेव का जो पहला वार पडा तो पराजित हो गया बेचारा। दन्तवक्र सामने आया तो वसुदेव ने उसका मुँह फेर दिया और वह पीठ दिखा कर भागा। शल्य-राजा के फेफड़े फूल गए। वह विकल होकर लम्बी-लम्बी साँसे लेने लगा। हाथ-पैर ऐसे काँपने लगे कि गस्त्र ही हाथ से गिर पड़े और फिर उठाने की उसकी हिम्मत ही न हुई।

इसी प्रकार सभी राजा दुर्द्वर्ष वसुदेव की विकट मार से घबड़ा कर बगले झाँकने लगे।

अपने कटक का पराभव और प्रतिद्वन्द्वी की विलक्षण शक्ति देख कर जरासघ समुद्रविजय से बोला—

—यह कोई साधारण वादक नहीं है। इसने तो अकेले ही सभी राजाओं का पराभव कर दिया। अब आप ही युद्ध में उतरो और इसका काम तमाम कर दो। इसको मारते ही राजकन्या रोहिणी तुम्हारी हो जायगी।

समुद्रविजय ने उत्तर दिया—

—राजन् ! पर-स्त्री मुझे नहीं कल्पती। किन्तु आपकी इच्छा मानकर मैं इस बलवान पुरुष से युद्ध करूँगा।

यह कहकर समुद्रविजय युद्ध में उतर पड़े।

दोनों भाइयों में अनेक प्रकार के अस्त्रों से युद्ध होने लगा। बहुत देर तक युद्ध होने पर भी जय-पराजय का निर्णय न हो पाया। समुद्र विजय सोचने लगे—‘यह कैसा वीर है जो अभी तक वश में नहीं आया ? क्या मैं इसे न जीत सकूँगा।’

भाई के मुख पर आई चिन्ता को लकीरो को वसुदेव ने पढ़ लिया। वे भ्रातृप्रेम से व्याकुल हो गए। अग्रज का पराभव वह कर नहीं सकते थे। अतः उन्होंने एक वाण छोड़ा जिस पर लिखा हुआ था—
‘छद्म (कपट वेश बदल कर) रूप में निकला हुआ आपका सबसे छोटा भाई वसुदेव आपको प्रणाम करता है।’

वाण समुद्रविजय के चरणों में आ गिरा। उन्होंने वाण पर लिखे अक्षरों को पढ़ा तो हर्ष विह्वल हो गए। अस्त्र-शस्त्र वही छोड़े और

‘वत्स’ ‘वत्स’ कहते हुए वसुदेव की ओर दौड़ पड़े मानो गाय चिरकाल से बिछड़े अपने वत्स (बछड़े) से ही मिलने जा रही हो। वसुदेव ने भी अस्त्र-शस्त्रों के बधन तोड़े और बछड़े के समान ही अग्रज के चरणों में जा गिरे।

प्रेम विह्वल अग्रज ने अनुज को उठाया और अक से लगा लिया। समुद्रविजय की भुजाओं का दृढ़ बधन अनुज की पीठ पर कस गया।

बहुत देर तक दोनों भाई लिपटे रहे। दोनों की आँखों से प्रेमाश्रु वह रहे थे।

इस दृश्य को देखकर जरासध वहाँ आया और वसुदेव को देखकर हर्षित हुआ। उसका कोप शांत हो गया।

युद्ध वन्द हो गया। प्रेम का वातावरण छा गया। राजा रुधिर को दशवे दशार्ह वसुदेव दामाद के रूप में मिले। उसकी वाछे खिल गईं।

विवाहोत्सव सपन्न होने पर जरासध तथा अन्य राजा अपने-अपने स्थानों को चले गए किन्तु यादवों को कस सहित राजा रुधिर ने आग्रहपूर्वक वही रोक लिया। वे भी वहाँ एक वर्ष के लिए रुक गए।

एकान्त में वसुदेव ने रोहिणी से पूछा—

—प्रिये ! इतने बड़े-बड़े राजाओं को छोड़ कर मुझ ढोल बजाने वाले को ही क्यों चुना ?

रोहिणी ने पहले तो मुस्कान बिखेरी और फिर उत्तर दिया—

—आप कितने ही छिपो, मैं पहचान गई थी।

—क्या ?—चकित हुए वसुदेव।

—हाँ, मैं पहचान गई थी कि आप दशवे दशार्ह और मेरे पति हैं।

—कैसे ?—वसुदेव की उत्सुकता बढ़ी।

—विद्या से।—रोहिणी ने उनकी उत्सुकता और बढ़ाई।

—वताओ, हमें भी तो मालूम हो कौन सी विद्या है तुम्हारे पास।

—वसुदेव की उत्सुकता आग्रह में बदल गई।

रोहिणी ने पति को मुस्करा कर देखा और बोली—

—मैं हमेशा प्रज्ञप्ति विद्या को पूजती हूँ। एक बार उसने मुझे बताया—‘दशवाँ दशार्ह तुम्हारा पति है। वह तुम्हारे स्वयंवर में ढोल वादक के वेश में आएगा।’ वस मैंने आपको पहचान गई और आपका वरण कर लिया।

वसुदेव की जिज्ञासा शांत हो गई।

×

×

×

एक बार समुद्रविजय आदि सभी राजसभा में बैठे थे। उसी समय एक अघेड स्त्री आशीष देती हुई आकाश से उतरी। उपस्थित जन उसकी ओर देखने लगे। स्त्री वसुदेव से बोली—

—मैं बालचन्द्रा की माता धनवती हूँ। मेरी पुत्री सब कामों में निपुण है किन्तु तुम्हारे वियोग में सब कुछ भूल गई है। इसलिए मैं तुम्हें लेने आई हूँ।

धनवती की बात सुनकर वसुदेव की दृष्टि अग्रज समुद्रविजय की ओर उठ गई। अग्रज ने अनुज की मनोभावना पहचानी। वे मद स्मित पूर्वक बोले—

—जाओ। परन्तु पहने की तरह गायब मत हो जाना, शीघ्र वापिस लौटना।

वसुदेव कुछ कह पाते उससे पहले ही धनवती ने कह दिया—

—आप चिन्ता न करें, मैं इन्हें शीघ्र ही विदा कर दूँगी। आप जाने की आज्ञा दीजिए।

—आप तो विदा कर ही देंगी। परन्तु यह भी तो वचन दे। यदि बीच में ही कहीं दूसरी जगह रुक गया तो

—शीघ्र ही जाऊँगा।—वचन देना ही पड़ा वसुदेव को।

—तो जाओ।—समुद्र विजय ने आज्ञा दे दी।

अग्रज की आज्ञा पाकर वसुदेव अवेड स्त्री धनवती के साथ जाने को तत्पर हुए तभी समुद्रविजय ने कहा—

—हम लोग शौर्यपुर में तुम्हारी प्रतीक्षा करेंगे ।

वसुदेव ने सिर झुकाकर उसकी इच्छा स्वीकार की और धनवती के साथ गगनवल्लभ नगर जा पहुँचे । विद्याधर पति काचनदण्ड ने अपनी पुत्री वालचन्द्रा का विवाह बड़े सम्मानपूर्वक वसुदेव के साथ कर दिया ।

राजा समुद्रविजय आदि सभी यादव कस के साथ शौर्यपुर लौट आए और उत्सुकतापूर्वक वसुदेव की प्रतीक्षा करने लगे ।

×

×

×

कुछ दिन गगनवल्लभ नगर में रहकर वसुदेव अपनी स्त्री वालचन्द्रा को लेकर वहाँ से चल दिये ।

उन्होंने अन्य स्थानों से भी अपनी सभी स्त्रियों को साथ लिया और विद्याधरों के पत्तिवद्ध विमानों के साथ शौर्यपुर जा पहुँचे ।

आगे बढ़ कर अग्रज समुद्रविजय ने अनुज का स्वागत किया और दृढ आलिंगन में बाँध लिया ।

कुछ दिन तक सभी विद्याधरों का स्वागत सम्मान करके विदा कर दिया गया ।

एकान्त में समुद्रविजय ने वसुदेव से पूछा—

—यहाँ से निकले तुम्हें सौ वर्ष हो गए । किस प्रकार व्यतीत हुआ यह समय ।

वसुदेव ने इन सौ वर्षों का पूरा हाल कह सुनाया ।

भाभियों ने परिहास किया—

—देवरजी ! क्या किया परदेश में रहकर, हमारे लिए क्या लाये ?

—आपके लिए । इतनी सारी देवरानियाँ ।—कहकर हँस पड़े वसुदेव ।

भाभियो ने भी साथ दिया और वातावरण हँसी की खिलखिला-हटो से गूँज गया ।

—त्रिषष्टि० ८।४

—उत्तर पुराण ७०।३०७-३१७

—वसुदेव हिंडी पद्मावती लम्भक
रोहिणी लम्भक

१ उत्तर पुराण में रोहिणी के पिता का नाम हिरण्य वर्मा और माता का नाम पद्मावती लिखा है और उन्हें अरिष्टपुर का राजा बताया है ।

(श्लोक ३०७)

सरलचित्त अग्लानमन
सेवा की समभाव ।
वसुदेव के चरित्र पर
दीपित दिव्य प्रभाव ॥

जैन कथामाला

भाग ३२

श्रीकृष्ण कथा—

द्वारिका का वैभव

हस्तिनापुर के श्रेष्ठी के पुत्र का नाम था ललित । ललित स्वभाव से भी ललित था और रूप में भी । माता का अति लाडला और पिता की आँखों का तारा ।

ललित की माता ने पुनः गर्भ धारण किया । अबकी बार उसे सताप रहने लगा । ज्यो-ज्यो गर्भ की अभिवृद्धि हुई त्यो-त्यो माँ की कषाय-वृद्धि । सेठानी को इतनी घृणा थी अपने गर्मस्थ शिशु से कि वह किसी न किसी प्रकार उसका प्राणान्त कर ही देना चाहती थी । गर्भपात के लिए उसने अनेक औषधियों का सेवन किया, मन्त्र-तन्त्रों का प्रयोग किया किन्तु सब निष्फल । 'मर्ज' बढ़ता गया ज्यो-ज्यो दवा की' वाली उक्ति चरितार्थ हो रही थी कि 'गर्भ बढ़ता गया ज्यो-ज्यो उसे गिराने की चेष्टा की ।' गर्मस्थ शिशु भी पूरी आयु लेकर आया था—अकाल ही कैसे मरण कर जाता ?

सेठजी भी सेठानी की इन हरकतों से अनजान नहीं थे, पर वे करते भी क्या ? सेठानी दासियों के जरिये यह सब काम करा लेती । ललित भी अपनी माता के इन कृत्यों को भली-भाँति जानता था । दोनों पिता-पुत्र मौन होकर उस घड़ी की वाट जोह रहे थे जब कि शिशु का जन्म होना था ।

वह घड़ी भी आई । सेठानी ने पुत्र प्रसव किया । वह सतापित तो पहले से ही थी । घृणा के मारे उसने पुत्र का मुख देखकर अपना मुँह विचका लिया । तुरन्त दासी को बुलाया और कहा -

—इसे ले जाकर किसी निर्जन स्थान पर छोड़ आओ ।

दासी ने स्वामिनी की आज्ञा का पालन किया और शिशु को वस्त्र में लपेट कर चल दी। दासी लपकी-लपकी चली जा रही थी शिशु को अक में छिपाए, किसी निर्जन स्थान की खोज में। निर्जन स्थान तो मिला नहीं; मिल गये सेठजी वीच में ही।

स्वामी को सामने देखते ही दासी सहम गई। उसने शिशु को और भी जोर से चिपकाया, मानो भागा जा रहा हो उसके अक से निकल कर—हाथों से छूट कर। दवाव पड़ा तो शिशु रो उठा। पोल खुल गई दासी की। सेठजी ने कड़े स्वर में पूछा—

—यह क्या कर रही है ? किस का बच्चा है यह ? कहाँ ले जा रही है ?

—जी, आप ही का बच्चा है। सेठानी जी ने निर्जन स्थान पर छोड़ आने को कहा है।—दासी ने स्वामिनी की रहस्यमयी आज्ञा बता दी।

सेठजी जानते-तो सब थे ही किन्तु उन्हें यह बात पसन्द नहीं आई कि नवजात शिशु को इस तरह अरक्षित छोड़ दिया जाय। उन्होंने शिशु अपने हाथों में ले लिया और दासी से कहा—

—जाओ, कह देना कि तुमने अपना कर्तव्य पूरा कर दिया।

दासी का कर्तव्य समाप्त हुआ तो सेठजी का शुरू। सेठानी से तो पुत्र का पालन करने की आज्ञा ही करना व्यर्थ था। वे गुप्त रीति से उसको पालने लगे। नाम रखा गगदत्त।

माँ के प्यार के अभाव में ही गगदत्त बड़ा होने लगा। ललित को भी यह बात ज्ञात हो गई। वह भी अपने छोटे भाई को प्रेम से खिलाता। गगदत्त धीरे-धीरे किशोर हो गया।

एक बार वसन्तोत्सव आया तो बड़े भाई का प्रेम जोर मारने लगा। पिता से बोला—पिताजी ! गगदत्त को कभी अपने साथ बिठा कर खिलाया नहीं।

पुत्र के भ्रातृप्रेम को देखकर पिता का दिल भर आया। बोले—

—वत्स ! दिल तो मेरा भी तरसता है। पर क्या करूँ तुम्हारी माता ।

—आप उसकी चिन्ता मत कीजिए । मैं ऐसा प्रबन्ध करूँगा कि माता को कुछ पता ही नहीं लगेगा ।

पिता ने आज्ञा दी—

—ऐसा यत्न हो सके तो इससे ज्यादा प्रसन्नता की बात और क्या होगी ?

ललित को आज्ञा मिल गई । उसने एक परदे के पीछे छोटे भाई गगदत्त को बिठाया । दोनों पिता-पुत्र परदे के इस तरफ और गगदत्त उस ओर । माता प्रेम से भोजन परोस रही थी । पिता-पुत्र उसकी नजर बचाकर अपने भोजन का कुछ अंग पीछे को खिसका देते । गगदत्त उसे लेता और मुख में रख कर प्रसन्न होता । आज जीवन में पहली बार उसे माँ के हाथ में बना अमृतोपम भोजन मिल रहा था । कल्पना के स्वर्ग में विचर रहा था गगदत्त ।

क्रूर प्रकृति से गगदत्त का यह क्षणिक सुख भी न देखा गया । वायु का एक प्रवल झोका आया और गगदत्त के सुख को ले उड़ा । परदा उड़ा और रहस्य खुल गया । प्रसन्नता से झूमती हुई माँ की मुख-मुद्रा रौद्र हो गई । झपाटे से उठी और बाल पकड़ कर खींच लिया गगदत्त को ।

उसने न कुछ पूछा और न सुना; लगी मारने । गगदत्त के मुख का ग्रास मुख में रह गया और हाथ का छूट कर जमीन पर गिर गया । माँ के प्यार का प्यासा गगदत्त गोवत्स की तरह डकराने लगा । पिता और भाई ने बचाने का प्रयास किया तो सेठानी ने उनको भी तिरस्कृत कर दिया । उसकी आँखों से ज्वाला निकल रही थी और मुख से विप । उसके चलते हुए हाथ और पैर नागिन की पूँछ के समान लग रहे थे ।

अच्छी तरह मार-कूट कर माँ ने पुत्र को एक कोठरी में बन्द कर दिया ।

दया आई पिता को । उसने अपने बड़े पुत्र ललित की सहायता से उसे बाहर निकाला और सेठानी से छिपा कर किसी दूसरे स्थान पर

ले गये। गगदत्त को उन्होंने नहलाया, धुलाया और प्यार के मरहम से उसके मार के घावों को भरने का प्रयास किया। किशोर गगदत्त भी पिता और भाई के प्यार में पड़कर अपनी मार की पीड़ा भूल गया।

×

×

×

एक साधु गोचरी के लिए धूमते-फिरते सेठजी के घर आये। पुत्र ने उनसे पूछा—

—गुरुदेव ! गगदत्त पर माता के क्रोध का कारण क्या है ? सेठजी ने भी प्रश्न किया—

—मैंने अपने जीवन में कभी भी सेठानी का ऐसा भयकर और रौद्र रूप नहीं देखा। बड़े पुत्र ललित को तो लाड करती हैं और छोटे पुत्र गगदत्त को देखते ही क्रोध में जल उठती हैं, नागिन की तरह बल खाती हैं।

—नागिन ही तो थी पिछले जन्म में वह !—गुरुदेव ने बताया।

—ऐसे भयकर वैर का कारण ? सेठजी ने प्रश्न किया तो मुनि-राज बताने लगे—

एक गाँव में दो भाई रहते थे—एक बड़ा और दूसरा छोटा। दोनों भाई गाड़ी लेकर गाँव से बाहर निकले, लकड़ी लाने। जंगल से उन्होंने काट-काट कर लकड़ी भरी और वापिस गाँव की ओर चल दिये।

बड़ा भाई आगे-आगे पैदल चल रहा था और छोटा भाई पीछे-पीछे गाड़ी हाँकता ला रहा था। बड़े भाई को एक सर्पिणी दिखाई दी। उसने छोटे भाई को चेतावनी दी—

—यहाँ मार्ग में सर्पिणी पड़ी है। गाड़ी बचाकर हाँकना।

सर्पिणी ने यह सुन कर माना कि बड़ा भाई मेरा उपकारी और मित्र है।

छोटा भाई गाड़ी लिए आ पहुँचा। उसने सर्पिणी को देखकर कहा—

—बड़े भाई ने तुझे बचा लिया लेकिन मैं तेरे ऊपर ही गाड़ी चलाऊँगा। जब तेरी हड्डी टूटने की कड़-कड़ की आवाज मेरे कानों में पड़ेगी तो बड़ा मजा आयेगा।

नागिन ने छोटे भाई को अपना शत्रु माना।

जब तक नागिन बचने का प्रयास करती छोटे भाई ने गाड़ी की गति बढ़ा दी। नागिन पर मे पहिया फिर गया। कड़-कड़ हड्डी टूटने की ध्वनि आई और नागिन के प्राण पखेरू उड़ गये।

साधुजी ने सेठ को संबोधित किया—

—सेठजी वह नागिन ही तुम्हारी स्त्री हुई और बड़ा भाई तुम्हारा बड़ा पुत्र ललित तथा छोटा भाई गगदत्त। पूर्वभव के वैर के कारण ही सेठानी गगदत्त को देख कर आग बबूला हो जाती है क्योंकि पूर्व-जन्म के सम्बन्ध अन्यथा नहीं होते।

मुनिराज के मुख से अपने पूर्वजन्म को जान कर ललित ससार से विरक्त हो गया। सेठजी के हृदय में भी मवेग उत्पन्न हुआ। दोनों पिता-पुत्रों ने समय ग्रहण किया और कालधर्म पाकर महाशुक्र देव-लोक में उत्पन्न हुए।

कुछ समय पश्चात् गगदत्त ने भी मुनि पर्याय ग्रहण की। अन्त समय माता के अनिष्टपने की स्मृति करके विश्ववल्लभ (भरत-क्षेत्र का स्वामी) होने का निदान करके मरण किया।

तपस्या के प्रभाव से गगदत्त भी महाशुक्र देवलोक में देव बना।

×

×

×

आयुष्य पूर्ण करके ललित का जीव वसुदेव की रानी रोहिणी के गर्भ में अवतरित हुआ। उस समय रोहिणी रानी ने वलभद्र की माता को दिखने वाले चार उत्तम स्वप्न देखे। अनुक्रम से गर्भ काल पूरा हुआ और रोहिणी ने चन्द्रमा के समान गीतलतादायक और गौरांग पुत्र प्रसव किया।

राजा समुद्रविजय आदि सभी ने पुत्र-जन्मोत्सव बड़े समारोह-

पूर्वक मनाया। पुत्र का नाम रखा गया राम किन्तु वह वलभद्र के नाम से प्रख्यात हुआ।

सबको प्रसन्न करते हुए कुमार वलभद्र बड़े हुए। गुरु कृपा एवं निर्मल बुद्धि ने उन्होंने समस्त विद्या और कलाएँ अल्पकाल में ही सीख ली।

—त्रिषष्टि० ८।५

—उत्तर पुराण ७२।२७८-२८७

विशेष—उत्तरपुराण में वलदेव, वासुदेव श्रीकृष्ण तथा देवकी के अन्य छह पुत्रों के पूर्वज देवकी के पूर्वजों के साथ ही दिये गये हैं। वहाँ वलदेव और वासुदेव के पूर्वजों के नाम, उनके माता-पिता के नाम और जन्म स्थान में अन्तर है। संक्षेप में घटना इस प्रकार है—

इसी भरतक्षेत्र के मलयदेश में पलाशकूट गाँव में यक्षदत्त नाम का एक गृहस्थ रहता था। उसकी स्त्री का नाम यक्षदत्ता था। उनके दो पुत्र हुए यक्ष और यक्षिल। यक्ष क्रूर स्वभाव का था और यक्षिल दयावान। यक्ष वर्तनो भरी गाड़ी एक अन्धे सर्प पर चला देता है। सर्प मरकर नदयशा नाम की स्त्री हुआ। उसका विवाह कुरुजागल देश के हस्तिनागपुर नगर के राजा गगदेव के साथ हुआ। जब यक्ष का जीव उसके गर्भ में आया तो राजा उसके प्रति उदासीन हो गया। अतः उसने रेवती धाय के द्वारा पुत्र को उत्पन्न होते ही अपनी वहन बन्धुमती के यहाँ पहुँचवा दिया। उसका नाम निर्नामिक पड़ा। माता के दुर्व्यहार से निर्नामिक प्रव्रजित हो गया और उसने स्वयंभू वासुदेव की ममृद्धि देखकर निदान कर लिया। मरण करके वह महाशुक विमान में देव हो गया। नदयशा भी प्रव्रजित हुई। वह भी स्वर्ग गई और वहाँ से च्यव कर देवकी हुई और उसी के गर्भ से निर्नामिक ने कृष्ण के रूप में जन्म लिया।

छोटा भाई यक्षिल भी प्रव्रजित हुआ और मर कर महाशुक देव लोक में उत्पन्न हुआ वहाँ से च्यवकर रोहिणी के गर्भ में वलभद्र के रूप में उत्पन्न हुआ।

स्वच्छन्द विहारी मुनि नारद समुद्रविजय की राजसभा में पधारे। उनके सम्मान में सभी उपस्थित जन खड़े हो गए। कंस भी उस समय उपस्थित था। सब का अनुकरण करते हुए उसने भी सम्मान प्रकट किया। कुछ समय तक इधर-उधर की बातें करके नारदजी चले गए। तब कंस ने महाराज समुद्रविजय से पूछा—

—यह कौन था ? जिसके सत्कार में आप भी खड़े हो गए।

समुद्रविजय ने नारद का परिचय बताया—

पहले इस नगर के बाहर यज्ञयज्ञा नाम का एक तापस रहता था। उसकी स्त्री का नाम था यज्ञदत्ता और पुत्र का नाम सुमित्र। सुमित्र की पत्नी थी सोमयज्ञा। कोई जम्भूक देव आयु पूर्ण करके सोमयज्ञा की कुक्षि से पुत्र रूप में उत्पन्न हुआ। बालक नाम नारद रखा गया।

तापस एक दिन उपवास करता था और दूसरे दिन भोजन। एक दिन वह नारद को अगोक वृक्ष के नीचे छोड़कर वन में फल-फूल इकट्ठे करने चला गया। उस समय वह बालक (नारद) जम्भूक देवताओं की दृष्टि में पड़ा। उनका पूर्वजन्म का मोह जाग्रत हो गया। वे नारद को उठाकर वैताड्य गिरि पर ले गए। वहाँ की एक कन्दरा में बालक का लालन-पालन हुआ।

नारद आठ वर्ष की आयु में प्रज्ञप्ति आदि महाविद्याओं को सिद्ध करके आकाशचारी हो गया। यह नारद वर्तमान अवसर्पिणी काल का नौवाँ नारद है और इस भव से इसे मुक्ति प्राप्त हो जायेगी।

कंस चुप-चाप बैठा सुन रहा था। नारद का पूरा वृत्तान्त सुनकर उसे पुनः उत्सुकता हुई—

—यह सपूर्ण वृत्तान्त—नारद का भूत-भविष्य आपको कैसे ज्ञात हुआ, किसने बताया ?

—त्रिकालज्ञानी मुनि मुप्रतिष्ठ ने मुझे यह सब बताया था ।—समुद्रविजय ने आगे कहा—किन्तु नारद स्वभाव से ही कलहप्रिय, अवज्ञा से कुपित होने वाला, स्वच्छन्द विहारी, सर्वत्र पूजित और एक स्थान पर न टिकने वाला होता है ।

नारद का यह परिचय जान कस सतुष्ट हुआ ।

×

×

×

एक वार कस ने वसुदेव को बड़े आग्रह और प्रेम से मथुरा बुलाया । उसके आग्रह को वसुदेव ने स्वीकार किया और मथुरा आ गए । कस ने उनका बहुत आदर-सत्कार किया ।

जीवयशा के साथ कस बैठा हुआ वसुदेव से बातें कर रहा था । एकाएक वह बोल उठा—

—आपने मुझ पर सदा ही स्नेह रखा है । अब मेरी एक बात और मानिए ।

—कहो ।

—मृत्तिकावती नगरी का राजा देवक मेरा काका लगता है । उसकी पुत्री देवकी से आपको विवाह करना पड़ेगा ?—कस ने साग्रह कहा ।

वसुदेव ने अपनी स्वीकृति दे दी । कस हर्षित हो गया । दोनों मृत्तिकावती नगरी की ओर चल दिये । मार्ग में उन्हें नारदजी मिले । दोनों ने भली-भाँति उनका सत्कार किया । नारदजी ने पूछा—

—तुम लोग कहाँ जा रहे हो ?

वसुदेव ने बताया—

—अपने सुहृद इस कस के साथ मृत्तिकावती के राजा की पुत्री देवकी से विवाह करने ।

नारद जी प्रसन्न होकर बोले—

—यह तुम विल्कुल ठीक कर रहे हो । क्योंकि विधाता निर्माण

तौ करता है किन्तु योग्य को जोड़ता नहीं। विधाता निर्माता तो है, परन्तु साथ ही अपडित भी।

—कैसे ?

—वह केवल सम्बन्ध निश्चित करता है, जोड़ता तो मनुष्य है।

वसुदेव नारद की बात सुनकर चुप हो गए और गम्भीरता से विचार करने लगे। तब नारद ने ही पुन कहा—

—वसुदेव तुमने अनेक मानव और विद्याधर कन्याओं से विवाह किया है किन्तु देवकी उन सबसे उत्तम है। विधाता ने ही देवकी का सम्बन्ध तुम्हारे साथ निश्चित किया है। अब तुम जाकर उसे जोड़ो।

यह कह कर नारदजी वहाँ से चले गए। वसुदेव और कस ने भी अपनी राह ली।

नारदजी सीधे देवकी के कक्ष में पहुँचे और उसके समक्ष वसुदेव के रूप-गुण की चर्चा इस ढंग से की कि वह मुग्ध होकर वसुदेव के ही नाम की माला फेरने लगी।

×

×

×

कस और वसुदेव राजा देवक के सम्मुख पहुँचे तो उसने बड़े प्रेम और उत्साह से उनका आदर किया। कस ने वसुदेव का परिचय देते हुए अपने आने का प्रयोजन बताया। राजा देवक कुछ देर तक गम्भीरता पूर्वक सोचता रहा और फिर बोला—

—कस ! यद्यपि तुम्हारी माँगनी उचित है। वसुदेव का कुल-शील भी ऊँचा है, किन्तु इस प्रकार अचानक ही विवाह का प्रस्ताव मुझे कुछ जँचा नहीं।

—तो क्या इच्छा है आपकी ?—कस ने पूछा।

—मैं इस विषय पर कुछ समय तक सोचना चाहता हूँ।—देवक ने उत्तर दिया।

राजा देवक का उत्तर कुछ इस प्रकार का था कि कस और वसुदेव वहाँ से उठकर अपने शिविर की ओर चल दिए। देवक भी गम्भीर मुख-भुद्रा में अन्त पुर जा पहुँचा। रानी देवी ने पूछा—

—स्वामी ! आज आप किस विचार में डूबे हैं ?

—एक विचित्र बात हुई ।—देवक ने उत्तर दिया ।

—वह क्या ? —देवी ने उत्सुकता प्रकट की तो राजा ने बताया—

—आज कस अपने साथ शौर्यपुर के राजकुमार दशवे दशार्ह वसुदेव को लेकर आया और उसने देवकी की याचना की ।

वसुदेव का नाम सुनते ही देवकी के कान खड़े हो गए । उसके गालों पर लाली दौड़ गई । रानी देवी ने पूछा—

फिर आपने क्या उत्तर दिया ?

—उत्तर क्या देता ? कह दिया विचार करके बताऊँगा ।

—और विचार क्या किया ?

—मुझे तो इस प्रकार से याचना करना कुछ रचा नहीं, इन्कार कर दूँगा ।—राजा देवक के मुख से निकला ।

‘इन्कार’ शब्द सुनते ही देवकी की आँखें डबडबा आईं । उसके मुख पर उदासी छा गई । रानी देवी की प्रसन्न मुख-मुद्रा मलिन हो गई । ‘घर बैठे दामाद मिलने’ की प्रसन्नता तिरोहित हो गई । राजा देवक ने माँ-बेटी की यह दशा देखी तो बोला—

—मैंने तो अपना विचार मात्र प्रगट किया था, निर्णय तो तुम्हारी सम्मति से ही होगा ।

—मेरी सम्मति ! मेरी राय में तो हमें वसुदेव से अच्छा वर दूसरा नहीं मिलेगा; तुरन्त हाँ कर देनी चाहिए ।

‘जैसी तुम्हारी इच्छा’ कहकर राजा देवक ने मंत्री को भेजकर कस और वसुदेव को बुलवाया । इनका प्रेमपूर्वक स्वागत करके पुत्री देने का निर्णय बता दिया ।

देवकी को जैसे मुँह माँगा वरदान मिला । वह आनन्द विभोर हो गई ।

शुभ मुहूर्त में वसुदेव के साथ देवकी का विवाह सम्पन्न हो गया । पाणिग्रहण सस्कार के समय देवक ने विशाल सपत्ति के साथ दस गोकुलों के अधिपति नन्द को भी गायों के साथ समर्पित कर दिया ।

राजा देवक से विदा होकर कस, वसुदेव नन्द आदि के साथ मथुरा लौट आया। उसने अपना हर्ष प्रगट करने के लिए बहुत बड़ा उत्सव मनाने का निश्चय किया।

×

×

×

कस की आज्ञा से मथुरा नगरी दुलहिन की तरह सज गई। सभी ओर उल्लास और राग-रग छाया हुआ था। नगरवासियों के मुख चमक रहे थे और हृदय झूम रहे थे।

अन्त पुर मे कस की रानी जीवयशा भी वेभान थी मदिरा के नशे मे। उसके कदम लडखडा रहे थे। आँखे मुँदी जा रही थी। वह मदिरा के नशे मे चूर थी। उसी समय मुनि अतिमुक्तक^१ पारणे हेतु पधारे। जीवयशा की यह दशा देखकर वे लौटने लगे तो मदान्ध रानी बोल पड़ी—

—अरे देवर ! कैसे लौट चले ? आज तो आनन्द मनाने का दिन है। आओ मेरे साथ नाचो, गाओ।

और मदिरा के नशे मे चूर जीवयशा उनके सामने आ खड़ी हुई। निस्पृह सत रुक गए। जीवयशा ही पुन बोली—

—नही बोलते ! अरे कुछ तो कहो। इसे पीओ, मजा आ जायेगा।

जीवयशा ने मदिरा का पात्र आगे बढ़ा दिया। मौन होकर मुनि रानी की इन अभद्र चेष्टाओं पर विचार कर रहे थे। रानी की विह्वलता बढ़ती जा रही थी। उस पर मदिरा का रग चढ़ा हुआ था। वह कुत्सित चेष्टाएँ करने लगी। निस्पृह मुनि ने बहुत प्रयास किया कि किसी प्रकार उसके चगुल से निकल जायँ किन्तु कहाँ मुनिश्री का

१ यह कस के पिता महाराज उग्रसेन के पुत्र थे। जब कस ने बलात् मथुरा पर अपना शासन स्थापित करके पिता को बन्दी बना लिया था तब इन्होंने विरक्त होकर श्रामणी दीक्षा स्वीकार कर ली थी।

तपस्या से कृष्ण शरीर और कहाँ पोष्टिक भोजन से पुष्ट कस-रानी और फिर मदिरा से मतवाली । मुनि निकल न सके ।

मुनिश्री के मुख से गभीर वाणी निकली—

—जिसके निमित्त यह उत्सव हो रहा है और तुम मतवाली बन गई हो उसी का सातवाँ पुत्र तुम्हारे पति का काल होगा ।^१

श्रमण अतिमुक्तक के ये सीधे-सादे शब्द जीवयशा को कठोर वज्र से लगे । उसका नशा हिरन हो गया । भयभीत होकर उसने महामुनि का मार्ग छोड़ दिया । निस्पृह सत अपने धीर-गम्भीर कदमों से चले गए और जीवयशा उन्हें टुकुर-टुकुर ताकती रह गई ।

मुनि के चने जाने के बाद जीवयशा जैसे सचेत हुई । अब उसे 'पति-रक्षा की चिन्ता सताने लगी । तुरन्त पति को एकात में बुलाकर अतिमुक्तक मुनि की भविष्यवाणी सुना दी ।

कस के मुख पर चिन्ता की रेखाएँ उभर आई । कुछ देर तक सोचता रहा और उठ कर वसुदेव के पास चला गया ।

१ उत्तर पुराण के अनुसार मुनि अतिमुक्तक ने तीन भविष्यवाणियाँ की—

१ देवकी का पुत्र अवश्य ही तेरे पति को मारेगा । (श्लोक ३७३)

२ तेरे पति को ही नहीं पिता को भी मारेगा । (श्लोक ३७४)

३ देवकी का पुत्र समुद्र पर्यन्त पृथ्वी का पालन करेगा । (श्लोक ३७५)

वही इसके आगे इतना उल्लेख और है —

किसी दूसरे दिन अतिमुक्तक मुनि आहार के लिए देवकी के घर गए । तब देवकी ने पूछा—‘हम दोनों दीक्षा ग्रहण करेंगे या नहीं ।’ इस पर मुनि ने उत्तर दिया ‘तुम लोग इस प्रकार बहाने से क्यों पूछते हो ? तुम्हारे सात पुत्र होंगे, उनमें से छह तो दूसरी जगह पलेंगे और सयम ग्रहण करके मुक्त हो जायेंगे । सातवाँ पुत्र अर्द्धचक्री होकर पृथ्वी का चिरकाल तक पालन करेगा ।’ (श्लोक ३८०-३८३)

वसुदेव से कस की चिन्ता छिपी न रही। उन्होंने स्नेह से पूछा—

—कस ! ऐसे मुअवसर पर तुम्हे क्या चिन्ता लग गई ? मुझे बताओ। मैं अवश्य दूर करूँगा।

अजलि बाँध कर कस बोला—

—आपने मुझ पर अनेक उपकार किए हैं। मुझे अस्त्र-शस्त्र की शिक्षा देकर योग्य बनाया। राजा जरासंध से जीवयशा दिलवाई। मैं आपके उपकारों से दवा हुआ हूँ, किन्तु अब भी मेरा मन नहीं भरा। एक उपकार और कर दीजिए।

—क्या चाहते हो ? स्पष्ट कहो। मैं तुम्हारी इच्छा अवश्य पूरी करूँगा।

—मेरी इच्छा है कि आप देवकी के सात गर्भ जन्मते ही मुझे दे दें।

देवकी भी दोनों की बातें सुन रही थी। वह भ्रातृप्रेम से विभोर होकर बोली—

—भैया ! कैसी बात करते हो, जैसे तुम्हारा मुझ पर कोई अधिकार ही न हो ? मेरे और तुम्हारे पुत्र में क्या कोई अन्तर है ? तुम्हारे ही प्रयास से मुझे वसुदेव जैसे पति मिले हैं। हमारे दोनों के संयोग से जो पुत्र हो, उन्हें तुम ले लेना।

वसुदेव ने भी कहा—

—प्रिये ! अधिक कहने से क्या लाभ ? तुम्हारे सात गर्भ जन्म लेते ही कस को दे दिए जाएँगे। कहो कस ! अब तो प्रसन्न हो।

अपनी प्रसन्नता व्यक्त करते हुए कस बोला—

—आपकी बड़ी कृपा है। आप जैसा कोई दानी नहीं और मुझ जैसा कोई लेने वाला नहीं।

इसके पञ्चात् सभी आनन्दोत्सव मनाने लगे। कस की इच्छा पूरी हो चुकी थी।

×

×

×

कुछ दिन पञ्चात् वसुदेव को मुनि की भविष्यवाणी जात हुई तो उनके मुख से पञ्चात्ताप पूर्ण गव्द निकले—

—कस ने मुझे छल लिया ।

देवकी को भी बहुत दुःख हुआ । परन्तु अब हो क्या सकता था ? दोनो ही वचनबद्ध थे ।

कस ने भी इस कारण कि वे कही निकल न जाएं उन दोनो पर पहेरदार बिठा दिए ।

अब देवकी और वसुदेव की दशा कस के बन्दी^१ की सी थी ।

—त्रिपिट० ८/५

—उत्तर पुराण ७०/३६६-३८३

—वसुदेव हिंडी, देवकी लभक

१ श्रीमद्भागवत के अनुसार कस द्वारा देवकी और वसुदेव को बन्दी बनाए जाने की घटना इस प्रकार है —

एक बार वसुदेवजी अपनी नव-विवाहिता पत्नी देवकी के साथ मथुरा नगरी से जाने को रथ में सवार हुए । उस समय बहिन के प्रति प्रेम और वसुदेव के प्रति आदर प्रदर्शित करने के लिए कस स्वयं उनके रथ का सारथी बना । जिस समय वह रथ को चला रहा था तभी उसे आकाशवाणी सुनाई दी—‘अरे मूर्ख ! जिसको तू रथ में बड़े प्रेम से बिठा कर ले जा रहा है उसी देवकी का आठवाँ गर्भ तुझे मारेगा ।’ यह सुनते ही कस ने देवकी के केश पकड़ लिए । तब वसुदेव ने कहा—‘हे सौम्य ! इस देवकी से तो तुम्हें कोई भय नहीं है । इस समय इसे मारना भी उचित नहीं है । मैं तुम्हें इसके सभी गर्भों को सौंपने का वचन देता हूँ ।’ इस बात को स्वीकार करके कस ने देवकी के केश छोड़ दिये और उन दोनो को बन्दी बना लिया ।

(श्रीमद्भागवत १०/१/३०-५६)

उदारता और सहृदयता का ऐसा कटु परिणाम आयेगा—वसुदेव को स्वप्न में भी इसकी कल्पना नहीं थी। किन्तु जो कुछ भाग्य में लिखा था वह अनचाहे भी होगया। नियति पर मन को टिकाकर देवकी और वसुदेव अब कस की निगरानी में बंदी का सा जीवन बिताने लगे। कस के पहरेदार बराबर दोनों पर नजर रखते थे। देवकी जब गर्भ धारण करती और पुत्र प्रसव करती उसी समय भद्रिलपुर निवासी नाग गाथापति की स्त्री सुलसा भी पुत्र प्रसव करती। दोनों का समय एक ही होता। देवकी के पुत्र जीवित होते और सुलसा के पुत्र मृत; किन्तु हरिणगमेपी देव अपनी वचनबद्धता के कारण उनको बदल दिया करता। देवकी के जीवित पुत्र सुलसा के अंक में खेलने लगे और सुलसा के मृत-पुत्रों को देवकी से छीनकर कस ने उनकी अन्तिम क्रिया करा दी।

इस प्रकार मृतवत्सा सुलसा^१ देवकी के उदर से उत्पन्न छह पुत्रों

-
१. (क) सुलसा जब बालिका ही थी तब किसी निमित्तज्ञ ने बताया कि यह कन्या मृतवत्सा (मरे हुए पुत्रों को जन्म देने वाली) होगी। सुलसा वाल्यावस्था से ही हरिणगमेपी देव की उपासिका थी। वह प्रतिदिन प्रातः काल स्नान, कौतुक मंगल आदि कर भोगी साड़ी से ही देव की उपासना करती।

उसकी भक्ति से हरिणगमेपी देव प्रसन्न हुआ। कस ने देवकी के पुत्रों को मारने का निश्चय किया है—यह जानकर उसने सुलसा की इच्छा पूर्ति का वचन दिया।

(अनीकयशा, अनन्तसेन, अजितसेन, निहितारि, देवयशा और गन्धसेन) की किलकारियो और बाल-लीलाओ से स्वयं को धन्य समझने लगी और देवकी जीवित पुत्रों को जन्म देकर भी हतभागिनी बनी रही। अपने को मृतवत्सा मानती रही—यही तो था भाग्य का चमत्कार।

एक रात देवकी ने स्वप्न में सिंह, अग्नि, गज, ध्वजा, विमान और पद्म सरोवर देखे। उसी समय मुनि गगदत्त का जीव महाशुक्र देवलोक में अपना आयुष्य पूर्ण करके उसकी कुक्षि में अवतरित हुआ। गर्भ अनुक्रम से बढ़ने लगा।

भाद्रपद मास की कृष्ण पक्षी अष्टमी की अर्द्ध रात्रि को देवकी ने एक श्यामवर्णी पुत्र को जन्म दिया। पुत्र-जन्म के साथ ही उसके समीप रहने वाले देवताओं ने कस के चौकीदारों को निद्रामग्न कर दिया।

देवकी ने पति को बुलाकर कहा—

—नाथ ! मेरे छह पुत्र तो इस कस ने मरवा ही डाले हैं। अब इस सातवें पुत्र की तो रक्षा करो।

जब सुलमा का विवाह नाग गाथापति से हो गया तो वह उसे और देवकी को एक साथ ही ऋतुमती करता और जब दोनों के पुत्र उत्पन्न हो जाते तो उनकी बदला-बदली कर देता।

(ख) वसुदेव हिण्डी में देवकी के ही जीवित पुत्रों को मारने का स्पष्ट उल्लेख है। (वसुदेव हिण्डी, देवकी लम्भक)

(ग) मागवन के अनुसार देवकी के छह पुत्रों की कंस पटक कर मार देता है। देखिए—

हतेपु पट्पु बालेपु देवक्या औग्रमेनना ।

(श्रीमद्भागवत १०।२।४)

—मैं वचनबद्ध हूँ देवि । दुख तो मुझे भी बहुत है, पर क्या कहूँ ?
—वासुदेव ने निराश स्वर में उत्तर दिया ।

नारी की सहज बुद्धि जाग उठी । बोली—

—स्वामी । साधु के साथ साधु और मायावी के साथ मायावी बनना—यही धर्म नीति है । जब आपके पुत्रों को मारने के लिए कस छल कर सकता है तो आप पुत्र वचाने के लिए क्यों नहीं कर सकते ?

वासुदेव देवकी की बात पर गम्भीरतापूर्वक सोचने लगे । उन्हें विचार-मग्न-देखकर देवकी की बेकली बढ़ी । वह कहने लगी—

—प्राणधन । यह समय—सोच-विचार का नहीं है । आप एक प्राणी की रक्षा के लिए कपट कर रहे हैं जों न अधर्म है और न अनीति । जल्दी कीजिए स्वामी । इस-समय पहरेंदार-सोए-हुए है । आप पुत्र को लेकर निकल जाइये ।

वासुदेव देवकी की बात से सहमत हो गए, बोले—

—तुम्हारा कथन यथार्थ है, किन्तु इस अर्द्धरात्रि में बालक को लेकर कहाँ जाऊँ ?

—समीप ही आपको मेरे पिता की ओर से मिले दस गोकुल है । उनका स्वामी नद आपका सेवक है । उसी के पास मेरे पुत्र को छोड़ आइये ।

यह भी देवकी को ही बताना पड़ा ।

नवजात शिशु को अक में लेकर वासुदेव निकले । बाहर मूसला-धार पानी पड़ रहा था । समीपस्थ देवी ने उनके ऊपर छत्र सा तान दिया, पुष्पवृष्टि की और आठ दीपकों से मार्ग आलोकित कर दिया ।

वासुदेव बिना किसी कठिनाई के नगर द्वार के समीप पहुँच गए ।

घोर अधियारी रात्रि में दीपकों के प्रकाश से आलोकित पथ पर एक पुरुष को चलते देखकर पिंजरे में बन्दी उग्रसेन^१ आश्चर्य चकित रह गए । उनके मुख से सहसा निकल पड़ा—

१ उग्रसेन कस के पिता थे जिनको उसने पिंजरे में बन्दी बनाकर नगर द्वार के पास रख छोड़ा था ।

—यह क्या ?

उग्रसेन के आश्चर्य को शांत करते हुए वसुदेव ने अपने अंक में छिपे बालक को दिखा कर कहा—

—यह कस का शत्रु है ? किन्तु आप किसी से कहिए मत ।

वन्दी राजा उग्रसेन को सतोष हुआ । उन्होंने मिर हिलाकर वसुदेव की बात स्वीकार की ।

तब तक साथ रहने वाले दबो ने नगर-द्वार खोल दिया । उसमें इतना स्थान हो गया कि वसुदेव सरलता से निकल सके । वसुदेव नगर से बाहर निकल गए ।

वसुदेव नन्द के घर पहुँचे और उसे सब कुछ समझा कर अपना पुत्र सौंप दिया । इस पुत्र को लेकर नन्द ने अपनी नवजात पुत्री अपनी पत्नी यशोदा के अंक में मे उठाई और उनके स्थान पर उस पुत्र को सुला दिया । पुत्री लाकर वसुदेव को दे दी ।

वसुदेव के मुख से निकल पड़ा—

—नन्द ! तुम्हारा यह उपकार क्या भूलने योग्य है ?

—स्वामी-पुत्र के प्राण बचाना मेरा कर्तव्य है । इसमें उपकार कैसा ? नन्द ने उत्तर दिया ।

पुत्री को अंक में छिपाए वसुदेव अपने स्थान पर लौट आए । उन्होंने वह कन्या देवकी को दी और स्वयं उसके कक्ष में बाहर निकल आए ।

ज्यों ही वसुदेव बाहर निकले पहरेदारों की नींद टूट गई । 'क्या उत्पन्न हुआ' यह पूछते हुए अन्दर आए । देखा तो एक नवजात कन्या देवकी के पार्श्व में लेटी हुई थी । पहरेदारों ने उसे उठाया और कस को ले जाकर दे दिया ।

कस ने देखा कि सातवाँ गर्भ कन्या के रूप में उत्पन्न हुआ है तो उसने मन में समझा कि मुनि की वाणी मिथ्या हो गई । 'यह बेचारी कन्या मेरा क्या विगाड लेगी । इसे क्या मारना ?' ऐसा विचार कर

उसने कन्या की नाक काटकर^१ देवकी को पुन वापिस कर दिया ।

×

×

×

व्यामवर्णी होने के कारण गोकुल में गिशु का नाम पड गया कृष्ण । कृष्ण देवताओं की रक्षा में बढने लगे ।

देवकी को अपने मृत-पुत्रों का तो सतोष हो गया किन्तु जीवित पुत्र से मिलने के लिए छटपटाने लगी । उसका मातृ-हृदय अधीर हो गया । एक मान ही व्यतीत हो पाया कि उसने पति से कहा—

—नाथ ! मैं गोकुल जाऊँगी ।

वसुदेव भी देवकी की मनोदशा जानते थे । जिस माँ ने सात-पुत्र प्रनव किये फिर भी किसी को घड़ी भर गोद में लेकर प्यार न कर सकी उसके हृदय की व्यथा का क्या ठिकाना ? वसुदेव ने कहा—

—प्रिये ! तुम्हारा अचानक ही गोकुल जाना, कस के दिल में शक पैदा कर देगा ।

—किन्तु मेरा हृदय पुत्र को देखने के लिए व्याकुल है ।

—कोई बहाना करके जाओ तो ठीक रहेगा, अन्यथा पुत्र पर विपत्ति आने का भय है ।

‘पुत्र की विपत्ति’ सुनकर देवकी विचारमग्न हो गई । वह पुत्र को देखना भी चाहती थी और विपत्ति भी नहीं आने देना चाहती थी ।

१ (क) हर्ग्विज पुराण के अनुसार उसकी नाक चपटी कर दी गई ।

(जिनसेन कृत हरिवंश पुराण ३५/३२)

(ख) श्रीमद्भागवत में इस कन्या को विष्णु की योगमाया माना गया है ।

कम उम कन्या को मारने के लिए पछाडता, पटकता है तो वह कन्या छिटक कर आकाश में उड जाती है किन्तु जाते-जाते घोषणा कर जाती है कि ‘हे कस ! तुम्हारा शत्रु तो उत्पन्न हो ही चुका है ।’

(श्रीमद्भागवत १०/४/८-१२)

इसके पश्चात् ही वसुदेव और देवकी को कम ने कारागार से मुक्त कर दिया क्योंकि अब उन्हें बन्दी रखने से कोई लाभ न था ।

सोचते-सोचते वसुदेव ने एक उपाय खोज ही निकाला । वे बोले—

—ऐसा करो देवकी कि तुम गोपूजा के बहाने जाओ । इससे कस को सदेह भी नहीं होगा और तुम्हारी इच्छा भी पूरी हो जायेगी ।

देवकी को यह उपाय उचित लगा । वह अन्य अनेको स्त्रियों के साथ गोपूजा के बहाने गोकुल में गई । वहाँ उसने यशोदा के अंक में अपना पुत्र देखा ।

श्यामवर्णी शिशु यशोदा की गोदी में किलक रहा था—। उसका रंग निर्मल नील मणि के समान था, हृदय पर श्रीवत्स लक्षण, नेत्र जैसे प्रफुल्लित कमल, हाथ और पैरों में चक्र का शुभ लक्षण—पुत्र को देख कर देवकी का हृदय आनन्द से भर गया । वह पुत्र को अपलक नेत्रों से देखती रही ।

उपाय तो मिल ही गया था देवकी को । वह हर मास गोपूजा का बहाना करती और गोकुल पहुँच जाती । दिन भर पुत्र का मुख देखती, आनन्दित होती और सायकाल वापिस लौट आती ।

भाग्य की विडम्बना—ससार में पशु-पक्षी तक की माताएँ भी अपने शिशुओं को गोद में लेकर सोती हैं और देवकी ।

लोक गतानुगतिक होता है । वसुदेव पत्नी गोपूजा करती-तो उसकी देखा-देखी अन्य अनेक स्त्रियाँ भी गो-पूजन करने लगीं—। ससार में गो-पूजा^१ प्रचलित हो गई ।

—त्रिपटि० ८।५

—उत्तरपुराण ७०/३८४-४११

१ गो-पूजा के सम्बन्ध में श्रीमद्भागवत में यह उल्लेख है कि गोकुल वासी पहले इन्द्र-पूजा किया करते थे । वे उसे वर्षों का स्वामी मानते थे । श्रीकृष्ण ने इन्द्र का गर्व हरण करने के लिए उसकी पूजा बन्द करा दी और गो-पूजा का प्रचलन किया । इन पर ह्म्ट होकर इन्द्र ने सात दिन तक

घोर वर्षा की। श्रीकृष्ण ने गोवर्द्धन पर्वत को अपनी अंगुली पर उठा कर सम्पूर्ण ब्रज-वासियों व उनके गोधन आदि की रक्षा की। श्रीकृष्ण के इस अतुल प्रभाव से इन्द्र भयभीत हो गया और उसने स्वयं ही वर्षा बन्द कर दी।

इस घटना के फलस्वरूप गो-पूजा का प्रचलन हो गया। सम्पूर्ण ब्रज वासियों ने उत्साहपूर्वक गो-पूजा की।

(श्रीमद्भागवत, दशम स्कन्ध, अध्याय २५-२६)

उत्तरपुराण के वर्णन में कुछ भिन्नता है—

मुलसा के स्थान पर वैष्णपुत्री-जलका यह नाम दिया है और नैगमैषी देव इन्द्र की प्रेरणा से देवकी के पुत्रों को हरण करता है।

(श्लोक ३८४-३८६)

इस बालक (श्रीकृष्ण) को नन्द गोप के पास ले जाने की घटना का वर्णन करते हुए कहा है कि—वलभद्र (कृष्ण के बड़े भाई इसे लेकर चले और वसुदेव ने उन पर छत्र लगाया—(बरसात से बचने के लिए), नगर के देवता ने बल का रूप धारण किया और अपने सींगों पर दो वैदीप्यमान मणियाँ लगाईं। इस प्रकार अँधेरा दूर करता हुआ आगे-आगे चलने लगा।

(श्लोक ३९०-३९२)

नन्द गोप इन्हें रास्ते में आते हुए मिले। उनके अंक में एक कन्या थी। नन्द गोप ने बताया—‘मेरी स्त्री ने भूत देवता की आराधना की थी। उसने यह कन्या देकर कहा कि मैं इसे आप तक पहुँचा दूँ।’ पिता-पुत्र ने बालक नन्द गोप को दिया और कन्या लेकर लौट आए।

(श्लोक ३९६-४००)

कृष्ण द्वारा कन्या की नाक छेड़ने के बाद इतना उल्लेख और है कि—

कम ने उसे तलवर में धाँव द्वारा पोषित करवाया। बूड़ी होकर उस कन्या ने सुव्रता आर्या के पाम दीक्षा ले ली। वह विध्याचल पर्वत पर एक जगह तपस्या करने लगी। वनवासी उसे वनदेवी समझ कर पूजने लगे। एक समय उसे बाध ला गया। वह तो मरकर स्वर्ग चली गई किन्तु वे लोग इसे विन्ध्यवासिनी देवी के नाम से पूजने लगे।

(श्लोक ४०८-४११)

शत्रुता की गाँठ इतनी दृढ़ होती है कि जीव के भव-भव तक तो चलती ही है, वय परंपरागत भी चलती है। पिता का बदला पुत्र चुकाना चाहता है और पितामह का पौत्र। साथ ही व्यक्ति का बदला उसके पुत्र-पौत्रों से भी लिया जाता है। सूर्यक विद्याधर^१ ने भी वसुदेव से ऐसा ही वंश बाँध लिया था। पिता का बदला चुकाने आई सूर्यक की दो पुत्रियाँ—वसुदेव से नहीं, वरन् उनके पुत्र कृष्ण से।

सूर्यक-पुत्री शकुनि और पूतना वसुदेव का तो कुछ विगाड ही नहीं सकती थी। उन्होंने वसुदेव कृष्ण के प्राण लेने की योजना बनाई। वे दोनों विद्याधरियाँ गोकुल में आकर अवसर ढूँढने लगी। एक दिन उन्हें अवसर मिल भी गया।

नद और यगोदा दोनों ही घर में नहीं थे। श्रीकृष्ण अकेले ही घर के एक कक्ष में अपनी छोटी नी ग्रथ्या पर पड़े-पड़े किलकारियाँ भर-भर कर क्रीडा कर रहे थे। शकुनि और पूतना ने अच्छा अवसर देखा।

बालक कृष्ण को कक्ष से बाहर आँगन में निकाल लाई। शकुनि एक गाड़ी कच्ची में घसीट लाई और उसका पहिया कृष्ण पर रख कर दवाने लगी। वह दवाने के लिए बल भी लगाती जाती और भयकर आवाज से चिल्लाती भी जाती। उसने शारीरिक बल-प्रयोग और भयभीत करके कृष्ण के प्राण-हरण का पूरा प्रयास किया किन्तु सफल न हो सकी।

१ सूर्यक विद्याधर दिवस्तिलग्न नगर के राजा त्रिशिखर का पुत्र था। त्रिशिखर को वसुदेव ने युद्ध में कठच्छेद करके मार डाला था। मदनवेगा के कारण भी सूर्यक ने वसुदेव से शत्रुता बाँध ली थी।

पूतना भी पीछे न रही । उसने अपने स्तन विपयुक्त करके कृष्ण के मुख में दे दिए ।

जब ये दोनों विद्याधरियों^१ श्रीकृष्ण के प्राण-हरण के प्रयास में लगी हुई थी तभी वामुदेव के रक्षक देवों ने उन दोनों विद्याधरियों को

१ (क) हरिवंश पुराण के अनुसार ये दोनों कम द्वारा भेजी हुई देवियाँ हैं । मक्षेय में घटना इस प्रकार है—

एक दिन कम के हितैषी निमिन्त्रज वम्भ ने कहा—‘राजन् ! तुम्हारा शत्रु कहीं आम-पाम ही बड़ रहा है ।’ तब कम ने शत्रुनाश की इच्छा में तीन दिन का उपवास किया । इनमें आकृष्ट होकर दो देवियाँ प्रगट हुई और कहने लगी—‘हे राजन् ! हम तुम्हारे पिछले जन्म की सिद्धि की हुई देवियाँ हैं । जो कार्य हो वह कहो ।’ कम ने बताया—‘मेरा शत्रु प्रच्छन्न रूप से कहीं बड़ रहा है । तुम खोजकर उसका प्राणान्त कर दो ।’

कम के शत्रु शिशु कृष्ण को मारने के लिए देवियाँ गोकुल पहुँची । उनमें से एक ने तो पक्षी (शकुनि) का रूप बनाया और चोच-प्रहार में शिशु कृष्ण को मारने का प्रयास करने लगी । कृष्ण ने उसकी चोच पकड़कर इनकी जोर में दवाई कि वह चिल्लाती हुई भाग गई । दूसरी देवी ने विप-युक्त स्तनों में कृष्ण की मारना चाहा किन्तु कृष्ण के रक्षक देवताओं ने उनका मुख इतना कठोर बना दिया कि उसके स्तन का अग्रभाग बड़ी जोर में दब गया और पीड़ा के कारण वह चिल्लाने लगी ।

(जिनसेन हरिवंश पुराण, ३५/३७-४२

तथा उत्तर पुराण १७०/४१२-४१६)

(ख) श्रीमद्भागवत में शकुनि का इस स्थल पर उल्लेख नहीं है । पूतना के सम्बन्ध में लिखा है कि वह एक राक्षसी थी । कस उसको कृष्ण की हत्या के लिए भेजता है । पूतना विपयुक्त स्तनपान कराके उन्हें मार डालना चाहती है किन्तु कृष्ण उसके स्तनों का पान इतनी उग्रता से करने है कि उसके प्राण ही निकल जाते हैं ।

(श्रीमद्भागवत, १०/६/४-१३)

मार डाला, गाड़ी तोड़ दी और वासुदेव को कक्ष के अन्दर सुखपूर्वक सुला आए ।

X

X

X

X

नद ने आकर जब आँगन में यह ताड़व देखा तो स्तब्ध रह गये— एक गाड़ी टूटी पड़ी है और दो भीमकाय युवतियाँ मृत । उनकी अनुपस्थिति में कौन कर गया यह सब ? यशोदा को आवाज लगाई तो उत्तर न मिला । धड़कते हृदय से अन्दर प्रवेश किया और नन्हे से कृष्ण को खोजने लगे ।

कृष्ण चुपचाप अपनी गय्या पर सो रहे थे । नद ने लपक कर उन्हे उठा लिया । ऊपर से नीचे तक सारे शरीर को टटोल कर देखने लगे—कहीं कोई चोट तो नहीं आई ? किन्तु कृष्ण के अक्षत शरीर को देखकर आश्चर्य हुआ । पुत्र को गोद में लिए बाहर निकल कर सेवको को आवाज दी ।

—कहाँ चले गए थे, तुम सब ? यह ताड़व किसने किया है ?

सेवको ने जो वहाँ की स्थिति देखी तो वे भी हतप्रभ रह गए ।

उनसे कुछ कहते नहीं बना । नद ने ही कहा—

—आज मेरा पुत्र भाग्यवल से ही जीवित बचा है ।

एक गोप ने आगे बढ़कर कहा—

—स्वामी ! आपका पुत्र बड़ा बलवान है । इस अकेले ने ही इन दोनों स्त्रियों के प्राण ले लिए और गाड़ी चकनाचूर कर दी ।

नद चकित से पुत्र का मुख देखने लगे ।

उसी समय नदरानी यशोदा ने प्रवेश किया और हतप्रभ सी देखने लगी । 'हाय मैं मर गई' कहकर उसने कृष्ण को नद की गोद से झपट-सा लिया और उनके शरीर पर हाथ फेर-फेर कर देखने लगी । नन्द ने उलाहना दिया—

—अब तो बड़ा प्यार आ रहा है । जब अकेली छोड़ गई तब ? देखो ! कैसी भयकर विपत्ति आई थी इस पर ?

यशोदा ने तो मानो उस दृश्य से आँख ही मीच ली। वह तो केवल अपने पुत्र को ही देख रही थी। उसी की कुशलता में उसका स्वर्ग था।

नन्द ने आदेश दिया, पत्नी को—

—आज से कभी कृष्ण को अकेला नहीं छोड़ना। कोई दूसरा काम हो या न हो, शिशु की रक्षा करना आवश्यक है, समझी।

—समझ गई।—नन्दरानी ने कहा और पुत्र को छाती से चिपका लिया।

यशोदा उस दिन से कृष्ण को अपने पास ही रखती। कभी दृष्टि से ओझल नहीं होने देती। किन्तु बालक चपल स्वभाव के होते ही है, कृष्ण भी चुपचाप घुटनो चलते हुए इधर-उधर निकल जाते। नन्दरानी उन्हें दौड़-दौड़ कर पकड़कर लाती। कृष्ण की नटखट लीलाओं से यशोदा परेशान हो उठी।

उसने एक उपाय सोच ही लिया—

रेस्ती का एक सिरा कृष्ण की कमर में बाँधा और दूसरा छोर ऊखल से। इस प्रकार कृष्ण को बाँधकर यशोदा अडोस-पडोस में चली जाती।

× × × ×

सूर्यक विद्याधर का पुत्र अपने पितामह की मृत्यु का बदला चुकाने के लिए वसुदेव के पुत्र कृष्ण को मारने गोकुल आया। अपनी दोनों बहिनो शकुनि और पूतना की मृत्यु के लिए भी वह कृष्ण को दोषी मानता था। वह यमल और अर्जुन जाति के दो वृक्षों का रूप बना कर कृष्ण के घर के सामने आ खड़ा हुआ।

१. (क) हरिवंश पुराण में जमल और अर्जुन नाम की दो देवियाँ मानी गई हैं। (जिनसेन हरिवंश पुराण, ३५/४५)

(ख) श्रीमद्भागवत में यमलार्जुन उद्धार की घटना सविस्तार वर्णन की गई है—

वृक्षों की गाखाएँ हिलने से पत्तों की मधुर खडखड की ध्वनि होने लगी । विद्याधर सूर्यक का पुत्र वृक्षों के रूप में भाँति-भाँति की चण्टाओं से बालक कृष्ण को आकर्षित करने लगा ।

बालक सहज जिज्ञामु तो होते ही हैं । कृष्ण भी आकर्षित होकर उन वृक्षों की ओर चलने लगे । आगे-आगे कृष्ण घुटुवन चने जा रहे थे और पीछे-पीछे रस्सी से बँधा ऊखल ।

ज्यों ही श्रीकृष्ण दोनों वृक्षों के ठीक मध्य भाग में पहुँचे दोनों वृक्षों ने चलना प्रारम्भ कर दिया । वृक्ष एक दूसरे के समीप आने

नलकूबर और मणिग्रीव दोनों ही देवों के धनाध्यक्ष कुबेर के पुत्र थे । एक बार वे दोनों अनेक यक्ष कन्याओं के साथ गंगाजी में जलक्रीड़ा कर रहे थे । तभी देवर्षि नारद उधर से आ निकले । नारदजी को देखकर निर्वस्त्र अप्सराएँ तो लजा गई और उन्होंने झटपट वस्त्र पहन लिए परन्तु ये दोनों यक्ष यों ही मदान्ध खड़े रहे । नारदजी को उनकी वस्त्रहीन निर्लज्ज दशा देखकर दुःख हुआ । उन्होंने समझ लिया कि ये देव पुत्र होकर भी मदान्ध हो रहे हैं । उनकी कल्याण कामना से देवर्षि नारद ने शाप दिया—‘जिम प्रकार तुम वस्त्रहीन निर्लज्ज होकर ठूँठ की तरह खड़े हो उसी प्रकार तुम वृक्ष योनि में जा पड़ो ।’

इस शाप को सुनते ही नलकूबर और मणिग्रीव ने नारदजी से क्षमा याचना की । तब नारदजी ने आश्वासन दिया कि ‘कृष्णावतार में भगवान के द्वारा तुम्हारा उद्धार होगा ।’

दोनों यक्ष मणिग्रीव और नलकूबर यमलार्जुन जाति के दो वृक्ष हो गए । दामोदर (श्रीकृष्ण) जब उनके बीच से निकले तो ऊखल टेढ़ा होकर अटक गया और कृष्ण के जोर लगाते ही दोनों वृक्ष जड़ सहित टूट कर गिर पड़े । उनमें से दोनों यक्ष मणिग्रीव और नलकूबर निकले । उनका शाप नष्ट हो गया था अतः दोनों अपने सहज स्वरूप में आ गए । उन्होंने कृष्ण की अनेक प्रकार से स्तुति और वन्दना की तथा उत्तर दिशा की ओर चले गए ।

(श्रीमद्भागवत, दशम स्कंध, अध्याय दशवाँ, श्लोक १-४३)

लगे । विद्याधर सूर्यक के पुत्र का विचार था कि दोनों ओर से वृक्षों के दवाव द्वारा श्रीकृष्ण का प्राणांत कर दिया जाय ।

श्रीकृष्ण दोनों वृक्षों के बीच में ऐसे फँस गए मानो चक्की के दो पाटों के मध्य अनाज का दाना ।

तत्काल श्रीकृष्ण के रक्षक देव सचेत हुए । उन्होंने उन अर्जुन जाति के वृक्षों को भग करने के लिए तीव्र प्रहार किया । दोनों वृक्ष जड़ सहित तड़तड़ाहट की आवाज के साथ उखड़ कर गिर गए ।^१

१ उत्तर पुराण के अनुसार—

मथुरा नगर में अकस्मात् बहुत से उपद्रव होने लगे तब कस के पूछने पर वरुण नाम के निमित्तज्ञानी ने बताया कि 'तुम्हारा शत्रु उत्पन्न हो चुका है ।' यह सुनकर उसको (कस को) बहुत चिंता हुई । तब पहिले जन्म की देवियाँ आई । कस ने उनसे कहा—'भरे शत्रु को मार डालो ।' देवियाँ वासुदेव को मारने के लिए गोकुल जा पहुँची ।

(श्लोक ४१६-४१८)

(१) पूतना नाम की देवी ने स्तनों पर विष लगाकर वासुदेव को मारने का प्रयास किया किन्तु किसी दूसरी देवी ने उसे ऐसी पीड़ा पहुँचाई कि वह भाग गई ।

(श्लोक ४१८)

(२) दूसरी देवी गांडी का रूप रखकर आई किन्तु कृष्ण ने लात मार कर उसे तोड़ दिया ।

(श्लोक ४१९)

(३) दो देवियों ने वृक्षों का रूप बनाया किन्तु कृष्ण ने उन्हें जड़ से उखाड़ दिया ।

(श्लोक ४२२)

(४) एक देवी ने गंधी का रूप बनाकर उन्हें मारना चाहा तो कृष्ण ने उनके पैरों पर उन दोनों वृक्षों को हो पटक दिया ।

(श्लोक ४२३)

(५) एक देवी ने घोड़ी का रूप बनाकर उन्हें मारने की चेष्टा की तो कृष्ण ने उसे बहुत प्रताड़ित किया ।

(श्लोक ४२४)

इस प्रकार परास्त होकर सातों देवियाँ कस के पास जाकर बोली कि हम उसे नहीं मार सकती और वे अतर्धान हो गई । (श्लोक ४२५)

इस प्रकार कृष्ण को मारने के लिए कस सात देवियों को भेजता है ।

आस-पास के लोगो ने वृक्ष गिरने की आवाज सुनी तो दौड़े आए । यशोदा का भी ध्यान भंग हुआ । उसने देखा कि गिरे वृक्षों के मध्य में श्रीकृष्ण बैठे हैं । उसने वदकर गिरु को उठाया । मस्तक पर चुवन किया और प्यार से गोदी में चिपका लिया । यशोदा के हृदय में हूक सी उठी—मेरी असावधानी से आज कृष्ण को कुछ हो गया होता तो ... ।

लोगो ने भी कृष्ण की कमर में बँधी रस्सी को देखकर उन्हें दामोदर नाम से पुकारा । सभी लोग उनको अतिवली समझने लगे । पूरे गोकुल में उनके चमत्कारो की चर्चा होने लगी ।

यशोदा ने उस दिन से कृष्ण को एक क्षण के लिए भी आँखो से ओझल न होने देने का निश्चय कर लिया । अब कृष्ण सदा ही उसके समीप रहते । वह दही-मथकर मक्खन निकालती तो वे मथानी से मक्खन ने-नेकर खाते किन्तु स्नेहगीला यशोदा उनसे कुछ न कहती वरन् उनकी बोल-क्रीडाओ को देख-देखकर आनन्दित होती । कृष्ण आँगन में दौड़ते-फिरते और यशोदा उन्हें पकड़ती । कभी यशोदा कहीं अडोम-पडोस में किसी कार्यवश जाती तो कृष्ण उसके पीछे-पीछे, कभी उँगली पकड़ कर और कभी आगे-ही-आगे दौड़-दौड़ कर चलते ।

इस प्रकार की विभिन्न क्रीडाओ में मगन यशोदा और कृष्ण का समय व्यतीत होने लगा ।

कृष्ण द्वारा गकुनि और पूतना का वध वसुदेव से छिपा न रहा । वे अपने लघुवय पुत्र की रक्षा हेतु चिन्तित हो गए । उनके मस्तिष्क में विचार आया—‘मैंने अपना पुत्र छिपाया तो था । किन्तु उसके ये चमत्कारी कार्य अवश्य ही इस रहस्य को प्रगट देगे । तब मुझे किसी न किसी प्रकार इसकी रक्षा करनी ही चाहिए ।’

अनेक प्रकार से विचार करके वसुदेव ने रोहिणी सहित राम (वलभद्र) को लिवा लाने के लिए एक पुरुष भेजा । उनके आने पर वसुदेव ने अपने पुत्र राम को अपने पास बुलाया और एकान्त में गुप्त रूप से सब कुछ समझाकर गोकुल जाने की आज्ञा दी ।

—पुत्र ! कृष्ण देवकी का सातवाँ पुत्र और तुम्हारा छोटा भाई है । इसके छह पुत्रों का विछोह तो पहले ही हो गया है । अब इस सातवें पुत्र की रक्षा का भार तुम पर है ।

बलदेव राम ने पिता की आज्ञा को शिरोधार्य करके विनीत शब्दों में उत्तर दिया—

—पिताजी ! आप कृष्ण की ओर से निश्चित हो जाइये । मैं उसकी रक्षा अपने प्राणों से भी अधिक करूँगा । मेरे रहते माँ देवकी की गोद खाली नहीं होगी ।

पिता वसुदेव ने पुत्र के-सिर पर हाथ रखकर उसे आशीर्वाद दिया और आलिंगन करके उसे विदा करने लगे । बलदेव को देखकर वसुदेव के हृदय से आवाज आई—

—अब ये एक और एक दो नहीं, एक और एक ग्यारह हो गए ।

उनके हृदय में विश्वास हो गया कि बलदेव की उपस्थिति में कृष्ण पूर्ण रूप से सुरक्षित है ।

तब तक नन्द और यशोदा भी वहाँ आ गए । वसुदेव ने बलदेव को भी उन्हें अर्पित करते हुए कहा—

—नन्द ! इस पुत्र को साथ ले जाओ और अपने पुत्र की भाँति ही समझो ।

—‘जो आज्ञा स्वामी !’ कहकर नन्द ने सिर झुकाया और बलदेव तथा यशोदा के साथ गोकुल जा पहुँचे ।

बलदेव अपने छोटे भाई कृष्ण के साथ विभिन्न प्रकार की क्रीड़ाएँ करने लगे । ज्यों-ज्यों कृष्ण बड़े होते गए बलदेव उन्हें भाँति-भाँति की युद्ध विद्याएँ सिखाने लगे । धीरे-धीरे कृष्ण धनुर्वेद आदि सभी प्रकार की युद्ध विद्याओं में पारंगत हो गए ।^१ उनका बल भी प्रगट

१ (क) हरिवंश पुराण ३४/६४

(ख) भवभावना २२१७-२२१६

होने लगा । कभी वे वल की पूँछ पकड़ लेते तो एक डग भी आगे न बढ़ने देते । अनुज के ऐसे बल को देखकर अग्रज का हृदय प्रसन्नता से उछल-उछल पड़ता ।

बल बढ़ने के साथ-साथ इनकी देह काति और सुन्दरता में भी अपार वृद्धि हुई । गोपिकाएँ उनकी ओर आकर्षित होने लगी । वे कृष्ण से मिलने और बातें करने के बहाने ढूँढ़ती । कृष्ण को बीच में रखकर अनेक गोपियाँ नृत्य-गीत आदि का रास रचाती । कृष्ण भी पीछे न रहते । वे भी उनके साथ मधुर आलाप करते, नृत्य-गीत आदि में भाग लेते । वशी की मधुर तान सुनाकर उन्हें रिझाते ।

जिस समय कृष्ण इस प्रकार की रास-लीलाएँ करते बलदेव हाथों की ताली बजा-बजाकर नाट्याचार्य का कर्तव्य निभाते ।

इस प्रकार कृष्ण-बलदेव दोनों का समय गोकुल में सुख और आनन्द से व्यतीत हो रहा था ।

कृष्ण गोपियों के कठहार, साथी ग्वाल-वालों के नायक और नन्द-यशोदा की आँखों के तारे थे ।

सम्पूर्ण गोकुल ही कृष्ण का दीवाना था । मनुष्य तो मनुष्य गौएँ भी उनसे प्रेम करती । उनकी वाँसुरी की तान पर दौड़ी आती और अपना प्रेम-प्रदर्शित करती ।

श्रीकृष्ण ग्यारह वर्ष की आयु में ही गोकुल के नायक बन चुके थे ।

—त्रिषष्टि० ८/५

—उत्तरपुराण ७०।४१२-४२६



—निमित्तज्ञ ! देवकी का सातवाँ गर्भ मेरा काल है, यह कथन सत्य है या मिथ्या ?—कस ने निमित्तज्ञानी से पूछा ।

—राजन् ! निस्पृह श्रमणों के वचन कभी मिथ्या नहीं होते ।

—निमित्तज्ञ ने दृढतापूर्वक उत्तर दिया ।

—वह नकटी वालिका मुझे क्या मारेगी ?

—आप भूल रहे हैं नरेश ! नकटी वालिका देवकी का सातवाँ गर्भ नहीं है ।^१

—तुम कैसे कह सकते हो ?

—अपने निमित्तज्ञान के आधार पर ।

—क्यों ?

—महाराज ! उस वालिका का कोई भी लक्षण वसुदेव-देवकी से नहीं मिलता । इसके अतिरिक्त और भी कारण हैं ।

—तो क्या कहता है तुम्हारा निमित्तज्ञान, देवकी के सातवें गर्भ के सवव में ?

—वह जीवित है और आसपास ही कहीं वृद्धि पा रहा है ।

—अपनी विद्या से उसका पता लगाओ ।—कस ने निमित्तज्ञ को आदेश दिया ।

१ यह वालिका नन्द और यशोदा की थी जिसे वसुदेवजी गोकुल से ले आए थे और कस ने इसकी नाक वसुदेव की पुत्री समझ कर काट दी थी ।

आदेश पाकर निमित्तज्ञ तो अपनी गणना में लगा और कस विचार-मग्न हो गया। आज ही तो वह देवकी के पास अचानक ही घूमता-घामता जा पहुँचा था और उस नकटी बालिका को देखकर उसे 'देवकी का सातवाँ गर्भ मुझे मारेगा' इस बात की स्मृति हो आई थी। इसी कारण उसने निमित्तज्ञ को बुलवाकर अपने हृदय की शका दूर करने का प्रयास किया था। अब निमित्तज्ञ के यह कहने पर कि 'सातवाँ गर्भ किसी अन्य स्थान पर अभिवृद्धि पा रहा है' उसकी चिन्ता और भी बढ़ गई थी। कस अपने हृदय में अपने शत्रु से निपटने की योजनाएँ बनाने लगा; तभी निमित्तज्ञ ने सिर ऊँचा करके कहा—

—राजन् ! मुनि का कथन अटल सत्य है। आपका शत्रु गोकुल में अभिवृद्धि पा रहा है।

कम ने सावधान होकर निमित्तज्ञ के कथन को सुना और पूछने लगा—

—उसकी पहिचान क्या है ?

निमित्तज्ञ ने बताया—

१. (क) भवभावना २३४७ से २३५०

(ख) श्रीमद्भागवत में यह सूचना कस को योगमाया द्वारा दिलवाई है।

योगमाया श्रीकृष्ण की माया है और नद के घर कन्या रूप में उत्पन्न हुई थी। उसे वसुदेवजी ले आते हैं और कस उस कन्या को मारने के लिए उद्यत होता है तो वह कम के हाथ से छूट कर आकाश में उड़ जाती है और भविष्यवाणी करती है—

अरे मूर्ख ! मुझे मारने में तुझे क्या मिलेगा ? तेरे पूर्वजन्म का शत्रु तुझे मारने के लिए किसी स्थान पर उत्पन्न हो चुका है।

(श्रीमद्भागवत, दशवा स्कन्ध, अध्याय ४, श्लोक १२)

इसी कारण कम ने शकुनि, पूतना आदि को गोकुल के सभी नवजात शिशुओं की हत्या करने भेजा था।

—यदि आप उसकी परीक्षा लेना ही चाहते हैं तो अरिष्ट नामक अपने शक्ति सम्पन्न वृषभ, केशी नामक अश्व और दुर्दान्त खर तथा मेष को वृन्दावन में खुला छोड़ दीजिए। जो इनको यमपुर पहुंचा दे वही आपका काल है।^१

निमित्तज ही आगे बोला—

—इसके अतिरिक्त भी वह महाक्रूर कालिय नाग का दमन करेगा और आपके पद्मोत्तर व चपक नाम के हाथियों को भी मारेगा। वही पुरुष एक दिन आपके भी प्राणों का ग्राहक बन जायेगा।^२

निमित्तज के वचन सुनकर कस ने अरिष्ट वृषभ, केशी अश्व, खर और मेष को वृन्दावन में खुला छोड़वा दिया तथा अपने दोनों मल्लो—मुष्टिक और चाणूर को आज्ञा दी कि 'मल्लविद्या का अभ्यास करके तैयार रहो।'।

मथुरा में मुष्टिक और चाणूर मल्लयुद्ध का अभ्यास करने लगे और वृन्दावन में आकर उन चारों दुष्ट पशुओं ने उत्पात खड़ा कर दिया। उनके उत्पात से गो-पालक बड़े दुःखी हुए। अरिष्ट वृषभ तो साक्षात् अरिष्ट ही था। वह अपने सींगों से गायों को उछालता और मार डालता। ग्वालों ने दोनों भाइयों से आकर पुकार की—हे कृष्ण! हे बलदेव! हमारी रक्षा करो। एक बैल हमारी गायों के प्राणों का ग्राहक बन गया है। वह सभी गौओं को नष्ट किये डालता है।

श्रीकृष्ण तुरन्त ग्वाल-बालों के साथ चल पड़े। उस समय अनेक वृद्ध जनो ने कहा—'कृष्ण! तुम मत जाओ। हमें गाय नहीं चाहिए।' किन्तु कृष्ण रुके नहीं और वही जा पहुँचे जहाँ यमराज के समान अरिष्ट वृषभ खड़ा था।

वृषभ को देखते ही कृष्ण ने हुंकार करके उसे अपने पास बुलाया। बैल आया तो सही किन्तु सहज रूप में नहीं, क्रोधित मुद्रा में। उसने

१ भवभावना २३५२-२३५६

२ भवभावना २३५७-२३५६

सींग नीचे किये और गरदन झुकाकर कृष्ण की ओर दौड़ लगा दी। कृष्ण भी गाफिल नहीं थे। उन्होंने क्रोधावेग में दौड़ते हुए बैल के सींग कस कर पकड़ लिए। वृषभ की गति उसी प्रकार रुक गई जैसे कि नदी की धारा पहाड़ से रुक जाती है। बैल ने पीछे हटकर टक्कर देने का प्रयास किया किन्तु महाबलशाली कृष्ण की मजबूत पकड़ ने उसे एक इंच भी आगे-पीछे न हटने दिया। जब इधर-उधर न हट सका वृषभ तो पूँछ फटकारने लगा। उसके नथुनो से क्रोध की फुकारें निकलने लगी और आँखों से चिन्नगारियाँ।

अब कृष्ण ने उसकी गरदन को नीचे की ओर झटका तो बैल के पिछले दोनों पैर भूमि से ऊपर उठ गए और अगले पाँच घुंटेनो से मुड़ गए। तनिक सी मरोड़ से फुकारें निश्वासो में बदल गईं। वृषभ अरिष्ट ने दम तोड़ दिया। उसे मरा जान श्रीकृष्ण ने उसके सींग छोड़ दिए। बैल का शव भूमि पर गिर गया।

सभी ग्वाल-बाल अरिष्ट वृषभ^१ की मृत्यु में प्रसन्न हो गए और कृष्ण की प्रशंसा करने लगे।

१ (क) भवभावना २३६८-२३७५

(ख) श्रीमद्भागवत में अरिष्ट वृषभ को वत्सामुर के नाम से सम्बोधित किया गया है। संक्षिप्त कथानक इस प्रकार है—

एक दिन गाय चराते हुए श्रीकृष्ण ने देखा कि एक दैत्य आया और बछड़े का रूप बना कर गायों के झुंड में मिल गया है। कृष्ण आँखों के इशारे में बलरामजी को दिखाते हुए डम बछड़े के पाम पहुँचे और उसकी पूँछ तथा पिछले पैरों को पकड़ कर उसे आकाश में घुमाने लगे। जब वह मर गया तो उसे कैथ के वृक्ष पर फेंक दिया। दैत्य का लम्बा तगड़ा शरीर बहुत में कैथ वृक्षों को गिरा कर स्वयं भी पृथ्वी पर गिर पड़ा।

(श्रीमद्भागवत स्कन्ध १०, अध्याय ११, श्लोक ४१-४४)

(ग) उत्तर पुराण में अरिष्ट नाम का देव कृष्ण के बल की परीक्षा लेने के लिए बैल का रूप रखकर आया है। कृष्ण उसकी गरदन मरोड़ते लगते हैं किन्तु देवकी उमे छुड़वा देती है। (श्लोक ४२७-२८)

कस का केशी नाम का बलवान अब्ब भी अपने करतब दिखाने लगा। वह भी गायो को भयभीत करता। श्रीकृष्ण ने अपना वज्र समान हाथ उसके मुख में बलपूर्वक डाल दिया और साँस रुक जाने से उसका प्राणान्त हो गया।

इसी प्रकार खर^१ और मेष भी उपद्रव करते हुए श्री कृष्ण के बलिष्ठ हाथों से मारे गए।

१ (क) भवभावना २३८१।

(ख) खर की तुलना श्रीमद्भागवत के धेनुकामुर में की जा सकती है। इतना भेद अवश्य है कि धेनुकामुर का वध बलरामजी के हाथों से होता है किन्तु उसके अन्य साथियों का वध दोनों भाई मिल कर करते हैं। नक्षिप्त कथानक निम्न प्रकार है—

एक दिन श्रीदामा (कृष्ण के साथी ग्वाल-वाल) ने कहा कि समीप ही एक ताल वन है। उसमें बड़े अच्छे-अच्छे रसीले फलवाले वृक्ष हैं। किन्तु उसकी रक्षा धेनुकामुर करता है। वह गधे का रूप बना कर रहता है। यदि तुम उसे मार दो तो हम लोग फल खा सकते हैं।

यह सुनकर कृष्ण-वलराम दोनों भाई सभी ग्वाल-वालों के साथ ताल वन पहुँचे। बलराम ने एक वृक्ष को हिला कर पके फल गिराए। तभी गधे का रूप धारण किए हुए धेनुकामुर वहाँ आया और उसने बलराम जी की छाती में बड़ी जोर की दुलत्ती मारी। जब उसने दुबारा दुलत्ती चलाने का प्रयाम किया तो बलरामजी ने उसकी पिछनी टांगें पकड़ ली और घुमा कर ताल वृक्षों पर दे मारा। असुर के प्राण पखेरू उड़ गए। उसका शरीर कई वृक्षों को गिराना हुआ भूमि पर आ गिरा। उनके सभी भाई-बन्धु (सब के सब गधे) बलराम पर टूट पड़े। तब दोनों भाइयों ने उन सब को मार कर ताल वन को निष्कटक कर दिया।

(श्रीमद्भागवत स्कन्ध १०, अध्याय १५, श्लोक २०-४०)

‘जो कोई पुरुष शार्ङ्ग धनुष को चढा देगा उसके साथ ही देवागना जैसी सुन्दरी सत्यभामा का विवाह कर दिया जायगा ।’ यह उद्घोषणा कस की आज्ञा से मथुरा नगरी में प्रसारित कराई जा रही थी ।

सत्यभामा जैसी सुन्दरी के लोभ में अनेक राजा और राजपुत्र आए किन्तु धनुष कोई न चढा सका ।

वसुदेव की अन्य पत्नी मदनवेगा से उत्पन्न पुत्र अनावृष्टि ने भी गौर्यपुर में यह घोषणा सुनी । वह भी सत्यभामा को प्राप्त करने की इच्छा से प्रेरित होकर चल दिया और सीधा गोकुल जा पहुँचा ।

गोकुल में रात्रि विश्राम के लिए वट् नन्द के घर रुका । वहाँ उसने कृष्ण के अद्भुत चमत्कारी कार्य सुने तो उन्हें मथुरा का मार्ग बताने के लिए अपने साथ ही रथ पर विठा लिया ।^१

गोकुल से मथुरा का मार्ग सकीर्ण था । रथ दोनों ओर के वृक्षों से अटक-अटक कर निकल रहा था । एक बार वट् का विशाल वृक्ष ही अड़ गया । रथ का पहिया अटक गया । बिना वृक्ष को उखाड़े रथ का निकलना संभव ही नहीं था । अनावृष्टि ने कई प्रकार से प्रयत्न किया किन्तु सफलता नहीं मिली । अन्त में उतरा और वह वृक्ष को उखाड़ने लगा ।

वट वृक्ष साधारण नहीं था जो उखड़ जाता । अनावृष्टि पसीना-पसीना हो गया, उसने अपनी पूरी शक्ति लगा दी किन्तु वृक्ष टस से मस न हुआ । निराश होकर वगले झाँकने लगा ।

१ भागवत १०/३६/१-३६ । यत्राँ कृष्ण और बलराम दोनों ही अक्रूर के साथ मथुरा को जाते हैं ।

अनाघृष्टि को निगश देखकर कृष्ण रथ में उतरे और लीलामात्र में वृक्ष को उखाड़ कर एक ओर फेंक दिया। अनाघृष्टि ने पराकामी कृष्ण को प्रमत्त होकर कठ से लगा लिया। म्वज्जन की वीरता किसे आनदित नहीं करती ?

रथ पुन चलने लगा। यमुना नदी को पार करके मथुरा में प्रवेश किया और मीधे धनुषवाली सभा में जा पहुँचे।

सभा के मध्य में गाङ्गा धनुष रखा हुआ था और समीप ही मच पर सर्वांग मुन्दरी सत्यभामा आसीन थी। वह कृष्ण की ओर सतृष्ण दृष्टि से देखने लगी। उसके हृदय में कामदेव जाग्रत हो गया। मन ही मन उसने कृष्ण को अपना पति मान लिया।

मण्डप में बैठे उपस्थित राजाओं के समक्ष अनाघृष्टि रथ से उतरा और धनुष की ओर चला। अभी वह धनुष के पास पहुँचा भी न था कि उसका पैर फिमल गया और गिर पड़ा। उसका हार टूट गया, मुकट भग हो गया और कुण्डल गिर पड़े।

गिरते हुए को देखकर जमाना सदा से हँसता आया है। सत्यभामा तो मन्द-मन्द मुस्करा कर ही रह गई किन्तु सभी उपस्थित राजा खिल-खिला कर हँस पड़े। अनाघृष्टि के मुख पर खीझ के भाव उभर आए।

कृष्ण इस उपहासास्पद स्थिति को न सह सके। वे तुरन्त रथ से उतरे और पुष्पमाला के समान ही गाङ्गा धनुष को उठाकर उस पर प्रत्यचा चढ़ा दी।^१

राजाओं की खिलखिलाहट आश्चर्य में बदल गई। वे आश्चर्यचकित होकर कृष्ण की ओर देखने लगे। सत्यभामा की मनोभावना सत्य हो गई।

सभी को आश्चर्यचकित छोड़कर कृष्ण रथ में जा बैठे और

१ भागवत १०/४२/१५-२१ यहाँ इतना और है कि—

जब धनुष के रक्षक असुरों और कम की सेना ने उनका विरोध किया तो उन्होंने धनुष को तोड़ डाला उनके टुकड़ों से सब को मार गिराया।

अपनी झेप छिपाने के लिए अनाघृष्टि भी। रथ धनुष की मभा से निकला और वसुदेव के निवास स्थान पर जा पहुँचा। अनाघृष्टि ने कृष्ण को बाहर ही रथ में बैठा छोड़ा और अन्दर जाकर पिता वसुदेव से बोला—
—पिताजी ! जिस गाङ्गा धनुष को अन्य राजा छ् भी न मके थे, मैंने उसे चढ़ा दिया।

यह सुनते ही वसुदेव ने तुरन्त कहा—

—तुम शीघ्र ही मथुरा नगरी से बाहर निकल जाओ। यदि कस को मालूम हो गया तो तुम्हें जीवित नहीं छोड़ेगा।

पिता की बात सुनकर अनाघृष्टि भयभीत हो गया। उल्टे पैरों ही लौटा और रथ पर चढ़कर गोकुल की ओर चल दिया।

गोकुल में कृष्ण और बलदेव से विदा लेकर अनाघृष्टि गौर्यपुर चला गया।

सर्वत्र यह वार्ता प्रसारित हो गई कि नन्द के पुत्र ने गाङ्गा धनुष चढ़ा दिया।^१

१ जिनमेन के हरिवंश पुराण में यह प्रसंग अन्य रूप में वर्णित किया गया है।

संक्षिप्त घटनाक्रम निम्न प्रकार है—

कन गोकुल गया परन्तु कृष्ण उसे वहाँ नहीं मिले। तब वह लौट कर मथुरा आ गया। उन्ही समय मथुरा में सिंहाहिनी, नागशय्या, अतित्तजय नामक धनुष और पाचजन्य नामक शस्त्र—ये तीन दिव्य पदार्थ प्रगट हुए। कस ने इनका फल ज्योतिषी में पूछा तो उसने बताया—‘जो पुरुष नागशय्या पर चढ़ कर धनुष की डोरी चढ़ा दे और पाचजन्य शस्त्र को फूँक दे, वही तुम्हारा शत्रु है।’

कम ने उद्घोषणा करा दी कि ‘जो पुरुष नागशय्या पर चढ़ कर धनुष की प्रत्यक्षा चढ़ा देगा और पाचजन्य शस्त्र को वजा देगा उसे राजा कस अपना मित्र समझकर अलभ्य-इष्ट वस्तु देगा तथा उसे सबके पराक्रम को पराजित करने वाला समझा जायगा।’

इस घोषणा से आकृष्ट होकर अनेक राजा आए पर मफलता किसी को भी न मिली। सभी लज्जित होकर चले गए।

‘शार्ङ्ग धनुष नन्द के पुत्र ने चढा दिया है।’ यह मुनते ही कम के प्राण आवे रह गये। उमे बहुत शोक हुआ। प्रत्यक्ष रूप से तो वह कुछ कर नहीं सकता था अतः उसने प्रच्छन्न रूप से कृष्ण को नष्ट करने की योजना बनाई। उसने धोषणा कराई—शार्ङ्ग धनुष के महोत्सव की और उसमें बाहुयुद्ध का आयोजन रखा गया।

कस की इस कुटिल योजना को वसुदेव समझ गए। उन्होंने अपने सभी ज्येष्ठ बन्धु तथा अक्रूर आदि पुत्र बुला लिए। कस ने सभी यादवों का उचित सत्कार किया और एक ऊँचे मंच पर सम्मानपूर्वक आसन दिया।

× × × ×

मल्लयुद्ध उत्सव का समाचार वृन्दावन भी पहुँचा। कृष्ण ने अग्रज बलराम से कहा—

—भैया ! हम भी मथुरा चलकर उत्सव देखे।

बलराम अनुज की भावना को समझ गए। उन्होंने कृष्ण की इच्छा स्वीकार करके यशोदा से स्नान के लिए पानी तैयार करने को कहा।

एक दिन जीवयज्ञा का भाई भानु किसी कार्यवश गोकुल गया। वहाँ वह कृष्ण का पराक्रम देखकर बहुत प्रमत्त हुआ और उन्हे अपने साथ मथुरा ले गया।

कृष्ण ने कम की उद्घोषणा की तीनों जर्तें पूरी कर दी। उनके अपार पराक्रम को देखकर बलराम के हृदय में शका हुई और उन्होंने उसी समय अपने विश्वन्त मायियों के साथ कृष्ण को ब्रज भेज दिया।

(हरिवंश पुराण ३५/७१-७६)

विशेष—यही वर्णन उत्तर पुराण में भी है (७०/४४५-४५५) वसुदेव इतनी विवेकशील है कि कृष्ण सुभानु (कम का साला) के सकेत से ब्रज चले गए।

यशोदा ने बलराम की बात अनमुनी कर दी। वह आलस्यवश बैठी रह गई। कुछ क्षण तो बलराम प्रतीक्षा करते रहे और फिर उनका स्वामी-भाव जाग उठा। त्योंही चढ़ाकर रूखे स्वर में बोले—

—यशोदा ! क्या तू अपना पूर्व दासी-भाव भूल गई। जो हमारी आज्ञा-पालन में विलम्ब कर रही है।

‘दासी’ शब्द श्रीकृष्ण के कनेजे में तीर की तरह चुभ गया। उनका मुख मुरझा गया। यशोदा को स्वप्न में भी आशा न थी ऐसी बात सुनने की। वह अवाक् रह गई ! पुत्र के समान आयु वाले बलराम के एक ही शब्द ने आज स्वामी-सेवक संबंध उसके सामने लाकर खड़ा कर दिया। वह तो भूल ही चुकी थी कि कृष्ण उसके स्वामी का पुत्र है। कृष्ण के एक ‘मैया’ शब्द ने उसे मातृत्व के गौरव से विभूषित कर दिया था। किन्तु स्वामी, स्वामी ही रहता है, उसके पुत्र भी स्वामी होते हैं और सेवक सदा सेवक ही; चाहे वह अपने उदर के गिणु का भी स्वामी के लिए वलिदान कर दे।

यशोदा इन विचारों में खोई रही। बलराम ने कृष्ण से कहा—

—चलो यमुना में स्नान कर आये।

कृष्ण अग्रज के पीछे-पीछे चल तो दिए किन्तु उनके कदम पीछे को लौट रहे थे, हृदय शोकाकुल था। यमुना तट पर पहुँच कर बलराम ने देखा कि अनुज का मुख उतरा हुआ है। प्यार से बोले—

—कृष्ण ! तुम्हारा मुख निस्तेज क्यों है ?

—मेरी माता को आप दासी कहे और मैं सुनकर प्रसन्न हो जाऊँ, यही चाहते हैं, आप ?

बलराम अनुज के आक्रोश का कारण समझ गए। समझाने लगे—

—भद्र ! अभी तुम्हें इस रहस्य का ज्ञान नहीं है।

—क्या रहस्य है, बताइये।

कृष्ण को अग्रज बलराम ने प्रारम्भ से अन्त तक पूरी घटना बता दी और कहा—

—भैया ! यशोदा तुम्हारी माता नहीं है वह तो केवल तुम्हें पालने वाली है ।

इसके पञ्चात् बलराम ने देवकी के छह पुत्रों की कम के द्वारा मृत्यु का समाचार सुना दिया । भ्रातृ-वध सुनते ही कृष्ण कोधित हो गए और उसी समय कस को मारने की प्रतिज्ञा कर ली । किन्तु बलराम से फिर भी यह वचन ले लिया कि वे भविष्य में यशोदा को न दासी कहेंगे और न उनके प्रति ऐसे विचार रखेंगे ।

दोनों भाई स्नान करने के लिए यमुना में उतरे । वहाँ कालिया नाम का नाग रहता था । वह कृष्ण को दश मारने के लिए दौड़ा । उस महाभयकर सर्प के फण की मणि से प्रकाश निकल रहा था । जल के अन्दर प्रकाश देखकर बलराम सभ्रमित रह गए । तब तक नाग कृष्ण के पास आ चुका था । कृष्ण ने उसे कमलनाल के समान पकड़ लिया और उसकी नासिका नाथ कर कुछ देर तक उसके साथ क्रीड़ा करते रहे । जब नाग निर्जीव हो गया तो श्रीकृष्ण बाहर निकल आए ।^१

१ (क) हरिवंश पुराण के अनुसार यह प्रसंग इस प्रकार है :—

कृष्ण का अन्त करने की भावना से कस ने गोकुल वासियों को एक विशेष कमल लाने का आदेश दिया । यह कमल उस हृद में था जहाँ अनेक विषधर सर्प लहराते रहते थे । इस कारण वह स्थान सामान्य पुरुषों के लिए दुर्गम था ।

उस हृद में श्रीकृष्ण अनायास ही प्रवेश कर गए । उनके प्रवेश से कालिय नाग क्रुपित हो गया । वह महा भयकर था । उसके फण पर मणियों के समूह से अग्नि-स्फुलिंग जैसे निकल रहे थे । उस भयकर विषधर का कृष्ण ने शीघ्र ही मर्दन कर डाला और कमल को तोड़ कर शीघ्र ही तट पर आ गए ।

गोपों ने कृष्ण की जय-जयंकार की और वे कमल कम के सामने उपस्थित किए गए । उन्हें देखकर कस घबड़ा गया ।

किनारे पर कौतुक देखते हुए लोगो को वही छोड़कर कृष्ण-वलराम दोनों भाई मथुरा की ओर चल दिये ।

—त्रिपट्टि० ८/५

—उत्तर पुराण ७०/१३६-४७४



उमने आज्ञा दी कि नन्द के पुत्र महित सभी गोप अविलम्ब युद्ध के लिए तैयार हो जायें ।

(हर्षिश्च पुराण ३६/६-१० एवं उत्तर पुराण ७०/४६२-४७१)

(ख) श्रीमद्भागवत, में कालियानाग की कथा विस्तार में दी गई है ।

कालिय का नक्षिप परिचय इस प्रकार है —

नागों का निवास स्थान रमणक द्वीप था ।

गरुडजी की माता विनता और सर्पों की माता कद्रू में परस्पर शत्रुता थी । माता के वैर के कारण गरुडजी जिम नाग को देखते उम्रे खा जाते । तब व्याकुल होकर सर्पों ने ब्रह्माजी की शरण ली । ब्रह्माजी ने निर्णय कर दिया कि सप्त परिवार प्रत्येक अमावस्या के दिन एक सर्प गरुडजी की भेट करे और गरुड सर्पों का हनन करना छोड़ दे ।

इस निर्णय के अनुसार गरुड को प्रति अमावस्या एक सर्प मिल जाता किन्तु यह कालिय नाग बड़ा घमण्डी था । इसके १०१ फण थे और विष भी अत्यधिक । यह गरुड को दिए जाने वाले नाग को भी खा जाता ।

यह जान कर गरुडजी को बड़ा क्रोध आया । इसलिये गरुड ने इस नाग को मार डालने के विचार से उस पर आक्रमण किया । कालिय भी प्रस्तुत था । उसने अपने १०१ मुखों में गरुडजी के शरीर में विष ध्याप्त कर दिया । गरुड ने अपने पख से इसे घायल कर दिया ।

विह्वल होकर गरुड जी तो विष्णु के पाम जा पहुँचे और घायल कालिय यमुना के इस द्रव में आ छिपा । यह द्रव (यमुना का

कुण्ड) इतना गहरा था कि न गरुड ही आ सकते थे और न अन्य साधारण व्यक्ति ही ।

×

×

×

अन्यदा एक बार इस कुण्ड के जल में से क्षुधातुर गरुड ने एक मत्स्य को बलपूर्वक पकड़ कर खा लिया । अपने मुखिया मत्स्यराज की मृत्यु से मछलियों को बड़ा दुःख हुआ । उन्होंने महर्षि नौभरि से पुकार की । महर्षि ने मछलियों की भलाई के लिए गरुड को शाप दिया—‘यदि गरुड फिर कभी इस कुण्ड में प्रवेश करके मछलियों को खाएँगे तो उसी समय प्राणों से हाथ धो बैठेंगे ।’

इस शाप की बात कालिय नाग जानता था अतः उसने इस कुण्ड को अपना स्थायी निवास बना लिया ।

[श्रीमद्भागवत स्कन्ध १०, अध्याय १७, श्लोक १-१२]

जिम कुण्ड में कालिय नाग का निवास था । उस स्थान का जल नाग के विष की गर्मी से उबलता रहता था । इसके ऊपर से आकाश में जाने वाले पक्षी भी झुलस कर मर जाते थे । इस विषैले जल से वायु भी दूषित हो गई थी और आस-पास के घास-पात वृक्ष आदि भी जल कर नष्ट हो गए थे । तब श्रीकृष्ण ने यमुना के जल को शुद्ध करने का निश्चय किया ।

वे एक ऊँचे कदम्ब के वृक्ष पर चढ़े और कुण्ड में कूद पड़े । उन्होंने जल को मथ डाला । तब कुपित होकर कालिय नाग उनके मम्मुख आया । नाग ने बालक कृष्ण को अपने पाश में बाँध लिया ।

तब तक गोकुल से गोप, ग्वाल-वाल सभी निवासी वहाँ जा पहुँचे । कृष्ण को नाग पाश में निश्चेष्ट पड़ा देख कर गोकुल वासी बड़े दुखी हुए और विलाप करने लगे ।

उनके दुःख को दूर करने के लिए कृष्ण ने अपना बल दिखाया और शरीर को बहुत फुला लिया । इससे नाग को कष्ट

होने लगा और उसने अपने वन्धन ढीले कर दिये । इसके पश्चात् कृष्ण अपने चरण ने मर्प के फणो पर आघात करने लगे । सर्प पीडित होकर अचेत हो गया ।

अपने पति की प्राण रक्षा के लिए नाग-पत्नियों ने श्रीकृष्ण ने प्रार्थना की । नाग ने भी सचेत होकर दया की भीख माँगी । तब कृष्ण ने उसमें कहा—‘तुम रमणक द्वीप वापिस जाओ । अब तुम्हारा शरीर मेरे चरण-चिन्हों से अंकित हो गया है इसलिए गरुड तुमको नहीं खाएँगे ।’

कालिय नाग अपने परिवार सहित रमणक द्वीप चला गया और यमुना का जल शुद्ध हो गया ।

(श्रीमद्भागवत, स्कन्ध १०, अ० १६, श्लोक, १-६७)

मथुरा नगरी के द्वार पर ही उनके स्वागत के लिए कस की आज्ञा से पद्मोत्तर और चपक दो मत्त गजराज खड़े थे। यह स्वागत उनको प्रसन्न करने के लिए नहीं वरन् प्राण-हनन के लिए था।

दोनों भाइयों के समीप आते ही महावतो ने हाथियों को प्रेरित किया। दोनों पशु चिघाड़ कर उनकी ओर दौड़ पड़े। यमराज के समान मतवाले गजराजों को देखकर कृष्ण ने बलराम से कहा—

—भैया ! कस नगरी के द्वार पर यमराज हमारा स्वागत करने दौड़े आ रहे हैं।

—हम भी तैयार हैं; अभी यमराजों को यमपुरी पहुँचाये देते हैं।

—बलराम ने हँसकर कहा।

तब तक दोनों गजेन्द्र समीप आ गए। पद्मोत्तर गज कृष्ण के सम्मुख आ गया और चम्पक बलराम के।

श्रीकृष्ण ने उछल कर उसके दाँत पकड़े और एक ही मुष्टिका प्रहार से प्राणहीन कर दिया। उन्होंने उसके दाँत खींचकर निकाल लिए। बलराम ने भी इसी प्रकार चम्पक को निष्प्राण कर दिया। दोनों के अतुलित बल को देखकर नगरवासी चकित रह गए।^१

-
- १ श्रीमद्भागवत में एक ही हाथी 'कुवल्यापीड' नाम का बताया गया है। यहाँ वह रणभूमि (मल्लयुद्ध के अखाड़े के चारों ओर बना हुआ मड़प जहाँ सभी दर्शक, राजाओं आदि के बैठने का स्थान था) के द्वार पर खड़ा दिखाया गया है।

श्रीकृष्ण ने रणभूमि के दरवाजे पर कुवल्यापीड हाथी को खड़ा देखा तो महावत से बोले—'हमें शीघ्र ही रास्ता दे, अन्यथा हम तुम्हें

नगरजन परस्पर वातचीत करते हुए बताने लगे कि ये ही अरिष्ट वृषभ आदि को मारने वाले नन्द के पुत्र हैं ।

दोनो भाई मल्लो के अखाड़े में पहुँचे और रिक्त आसनो पर जा जमे । बलराम ने सकेत से कृष्ण को उपस्थित सभी राजाओ का परिचय दे दिया । रगभूमि के ऊँचे मच पर समुद्रविजय आदि सभी दशार्ह राजा विराजमान थे । बलराम ने उनको भी सकेत से दिखा दिया ।

कृष्ण की ओर सबकी दृष्टि उठ गई । वे सोचने लगे—‘यह देव समान पुरुष कौन है ?’ तभी कस ने आज्ञा दी—

—मल्लयुद्ध प्रारम्भ किया जाय ।

मल्ल अखाड़े में उतरे और युद्ध करने लगे । अनेक प्रकार के दाँव और कौशलो को देखकर दर्शक आनन्दित हो रहे थे । कभी एक मल्ल नीचे तो दूसरे ही क्षण वह ऊपर दिखाई देता । अनेक जीते और अनेक हारे । किसी ने दर्शको की प्रशंसा पाई तो किसी ने भर्त्सना । मल्ल अपना कौशल दिखाकर चले गए । अन्त में रिक्त अखाड़े के अन्दर कस की प्रेरणा से चाणूर उतरा और ताल ठोककर कहने लगा—

—मुझ से युद्ध करने के लिए कोई पुरुष आवे ।

चाणूर का पर्वत समान डील-डौल वैसे ही भय उत्पन्न करने वाला था । समस्त मण्डप में मौन छा गया । किसी को उसकी चुनौती स्वीकार करने का साहस न हुआ । चाणूर ने दुबारा गर्जना की —

—है कोई वीर ?

और इस हाथी को मार डालेंगे ।’ इस बात पर चिढ़कर महावत ने हाथी को आगे बढ़ा दिया । कृष्ण ने कुछ देर तक तो पूँछ पकड़ कर हाथी को धकाया और फिर सूँड पकड़ कर उसे जमीन पर दे मारा और उसके दाँत उखाड़ लिए । उन्ही दाँतो के प्रहार से हाथी और महावतो का काम तमाम कर दिया ।

(१०/४३/२-१४)

अब भी सभा शान्त थी । मानो सबको साँप मूँघ गया । चाणूर ने पुनः अभिमानपूर्ण शब्दों में कहा—

—मैं तो समझता था कोई न कोई वीर होगा ही किन्तु यहाँ उपस्थित सभी जन कायर हैं ।

चाणूर की गर्वोक्ति कृष्ण से न सही गई । वे सिंह के समान अखाड़े में कूद पड़े और चाणूर के सामने ताल ठोक दी । आस्फोट का स्वर दिशाओं में गूँज गया । चाणूर और कृष्ण अखाड़े में आमने-सामने खड़े थे ।

‘यह चाणूर आयु और बल में बहुत बड़ा हुआ है । यह मल्ल युद्ध से अपनी जीविका कमाने वाला और बड़ा कूर है । इसके सम्मुख दुधमुँहा वालक ! यह मुकाबिला अनुचित है । यह नहीं होना चाहिए ? —दर्शकों ने कोलाहल किया ।

—ऐसा ही सुकुमार है यह वालक तो अखाड़े में क्यों कूद पड़ा ? —कस ने कुपित होकर कहा ।

—किन्तु यह युद्ध असमान है । युद्ध बराबर वालों में उचित होता है । —दर्शकों की आवाज आई ।

कस ने सबको शान्त करते हुए कहा—

—आप लोगों का कथन यथार्थ है । किन्तु मल्ल युद्ध के नियमानुसार स्वेच्छा से अखाड़े में उतरे हुए मल्लों में युद्ध होना अनिवार्य है । यदि इस वालक को पीड़ा हो तो मुझ से प्रार्थना करे मैं इसे छुड़ा दूँगा । इस समय तो कुन्ती होगी ही ।

कस के आश्वासन से दर्शक चुप हो गए । कृष्ण ने उच्च स्वर से दर्शकों को सुनाते हुए कहा—

—यह चाणूर मल्ल राजपिंड खाकर हाथी के समान मतवाला हो गया है । मैं गायों का दूध पीने वाला गोकुल का निवासी वालक हूँ । किन्तु जिस प्रकार सिंह शत्रु मत्त गजराज को मार गिराता है उसी प्रकार मैं चाणूर को भूमि में मुला दूँगा । आप लोग देखिए ।

‘गोकुल का वासी बालक’ शब्द सुनकर कस के कान खड़े हो गए। वह समझ गया कि यही बालक कृष्ण है। उसने तुरन्त अपने दूसरे मल्ल मुष्टिक को अखाड़े में उतरने की आज्ञा दी।

स्वामी की आज्ञा पाकर मुष्टिक अखाड़े में उतर पड़ा। अब एक ओर कृष्ण अकेले थे और दूसरी दो भीमकाय पहलवान। यह सरासर अधर्म युद्ध था। बलराम इस स्थिति को न देख सके। वे अपने आसन से उछले और सीधे अखाड़े में मुष्टिक के सामने जा खड़े हुए, मानो आकाश से मेघ सहित विजली आ गिरी हो। मुष्टिक स्तब्ध रह गया।

चाणूर कृष्ण से भिड़ गया परन्तु मुष्टिक को आगे बढ़ने से बलराम ने रोक दिया। उसे विवश होकर बलराम से युद्ध करना पड़ा।

अब मुष्टिक बलराम से और चाणूर कृष्ण से गुँथ गए। बड़ी देर तक युद्ध होता रहा। न कोई जीता न कोई हारा। कृष्ण-बलराम ने चाणूर और मुष्टिक को एकाएक तृण के पूने के समान उठाया और दूर फेंक दिया। साधारण पुरुष होते तो हड्डियाँ चटख जातीं किन्तु वे भी मल्ल थे और वह भी विश्व-विख्यात। गिरते ही गेद के समान उछले और सीधे खड़े हो गये।

पुनः युद्ध होने लगा। अबकी बार दाँव लग गया मल्लो का। उन्होंने दोनों भाइयों को भुजाओं पर उठा लिया और फेंकने का प्रयास करने लगे तभी कृष्ण ने एक प्रबल मुष्टिका प्रहार चाणूर के वक्षस्थल पर किया। इस वज्र प्रहार से चाणूर खीझ उठा। उसने मल्ल युद्ध के नियम को ताक पर रखकर कृष्ण के उरस्थल (पेट—वक्षस्थल से नीचे का भाग) पर जबरदस्त धूँसा मारा। नाजुक स्थान पर आघात होने से कृष्ण की आँखों के आगे अँधेरा छा गया। विह्वल चाणूर भी हो चुका था। वह कृष्ण को हाथों पर संभाल न सका और कृष्ण भूमि पर गिर गए। कुछ क्षणों के लिए उनकी चेतना विलुप्त होगई।

अच्छा अवसर देखकर कस ने चाणूर को संकेत किया कि ‘इसी समय कृष्ण का प्राणान्त कर दो।’ स्वामी की प्रेरणा पाते ही चाणूर

चेतना शून्य कृष्ण की ओर लपका। वलराम उसकी दुष्टेच्छा समझ गए। विजली की सी फुर्ती से आगे बढ़कर उन्होंने ऐसा तीव्र प्रहार किया कि चाणूर को सात धनुष पीछे हट जाना पड़ा।

तब तक कृष्ण सचेत हो चुके थे। उन्होंने चाणूर को पुनः ललकारा और भुजाओ में कसकर उसे इतने जोर से दबाया कि चाणूर की हड्डियाँ चटख गईं। वलपूर्वक उसका मस्तक झुका कर ऐसा वज्रोपम मुष्टिका प्रहार किया कि चाणूर के मुख से रक्त-धारा बह निकली। वह भूमि पर गिर पड़ा और उसकी पुतलियाँ उलट गईं। चाणूर के प्राण उसके विशालकाय शरीर से निकल भागे।

अपने मल्ल की मृत्यु से कस बहुत क्रोधित हुआ। उसने अनुचरो को आज्ञा दी—

—इन दोनों गोप-बालकों को मार डालो और इनको पालने वाले नन्द का नाग कर दो।

—अरे दुष्ट चाणूर की मृत्यु के पञ्चात् भी तू स्वयं को मरा नहीं समझता। पहले अपने प्राणों की खैर मना, पीछे किसी के नाश का आदेश देना।—कुपित स्वर में कृष्ण बोले और अखाड़े से उछल कर कस के पास जा पहुँचे। कस के केश पकड़कर उसे सिंहामन से खींच लिया और भूमि पर पटक कर कहने लगे—

—पापी! अपनी प्राण रक्षा के लिए तूने व्यर्थ ही गर्भ-हत्याएँ की। अब अपने पापों का फल भोग।

कस हाथी के समान भूमि पर पड़ा था और कृष्ण केशरी सिंह के समान उसके समीप खड़े थे। यह दृश्य देखकर दर्शकों को बड़ा विस्मय हुआ। तब तक वलराम ने अपनी भुजाओं के बन्धन में जकड़कर मुष्टिक को ग्वासरहित कर दिया।

स्वामी को सकटग्रस्त देखकर कस के अनुचर उसकी सहायता को दौड़े। उनकी बाढ़ को रोका वलराम ने। वे मंडप के ही एक स्तम्भ को उखाड़ कर उनके सम्मुख खड़े हो गए। उस स्तम्भ के प्रहारों से अनेक आयुधों से सुसज्जित अनुचर मक्खियों के समान भाग खड़े हुए।

कृष्ण ने कस के मस्तक पर पैर रखकर उसे मार डाला और केश पकड़कर सभा मंडप से बाहरे फेंक दिया। मानो दूध में से मक्खी निकाल कर फेंक दी।

मथुरापति कस ने पहले से ही जरासंध के सैनिक बुला रखे थे। कस की मृत्यु से कुपित होकर वे कृष्ण-वलराम से युद्ध करने को आगे बढ़े।

अब तक मल्लयुद्ध का क्रीडास्थल प्राणघाती युद्ध का रणस्थल बन चुका था। दो निहत्थे भाइयों पर हजारों सैनिक अस्त्र-शस्त्र लेकर टूट पड़े—यह समुद्रविजय आदि को सहन हो सका। जरासन्ध के सैनिकों के समक्ष दशार्ह आगे बढ़े। उन्हें देखते ही जरासन्ध के सैनिक भाग खड़े हुए।

इस युद्धमय वातावरण से भयभीत होकर दर्शक भी अपने-अपने स्थानों को खिसक गए। सभा मंडप में नीरव गति छा गई। तभी वसुदेव ने अनावृष्टि को कृष्ण और वलराम को घर ले जाने की आज्ञा दी।

समुद्रविजय आदि सभी भाई वसुदेव के घर पहुँचे और वहाँ सभी एकत्र होकर बैठे। वसुदेव ने अपने आगे आमन पर वलराम को बिठाया और गोदी में कृष्ण को। पुत्रों को हृदय से लगाने पर वसुदेव की आँखें भर आईं। उनकी आँखों में अश्रुधारा प्रवाहित होने लगी। वे बार-बार कृष्ण मस्तक का चुवन करने लगे।

—यह क्या ?—आश्चर्य चकित होकर वसुदेव के बड़े भाइयों ने पूछा।

वसुदेव ने अतिमुक्त मुनि की भविष्यवाणी से लेकर अब तक की घटनाएँ विस्तार से सुना दीं। कृष्ण वसुदेव का पुत्र है' यह जानकर सभी हर्षित हुए और उन मवने कृष्ण को अपने उत्सव में बिठाकर प्यार किया और वलराम की बारम्बार प्रशंसा की।

उसी समय देवकी ने नकटी पुत्री के साथ प्रवेग किया। वह कृष्ण को अपने अंक में बिठाकर प्यार करने लगी। वह कभी एक उत्सव में

विठाकर प्रेम करती तो कभी दूसरे अक मे—मानो अब तक के विछोह की कसर अभी पूरी करना चाह रही हो। उसने कृष्ण को इतने हठ आलिंगन मे कस लिया कि वह दुवारा न विछुड जाय।

सभी यादवो ने हर्ष के आँसू बहाते हुए वसुदेव से पूछा—

—हे वसुदेव ! तुम अकेले ही इस जगत को जीतने मे समर्थ हो फिर भी क्रूर कस के हाथो अपने पुत्रो की मृत्यु देखते रहे ?

लम्बी साँस लेकर वसुदेव बोले—

—उसका कारण था।

—क्या ?

—मेरी वचन-पालन की प्रतिज्ञा। देवकी ने और मैंने सात गर्भ कस को देने का वचन दिया था।

—और यह नकटी कन्या ?—दशार्हो ने पूछा।

—यह पुत्री नन्द की है। देवकी के आग्रह से सातवाँ गर्भ मैं नन्द को दे आया था और उसकी नवजात कन्या यहाँ ले आया था। कस ने कन्या जानकर इसकी नाक काटकर ही छोड दिया।

इसके पश्चात् समुद्रविजय ने सभी भाइयो की सम्मति से राजा उग्रसेन को मुक्त किया और उनके साथ जाकर कस की अन्तिम क्रियाएँ की।

कस की सभी रानियो ने उसे जलाजलि दी किन्तु जीवयशा ने जलाजलि नही दी। उस गर्विता ने क्रोधपूर्वक प्रतिज्ञा की—

—‘कृष्ण-वलराम, सभी ग्वाल-बाल और सन्तान सहित समुद्र-विजय आदि दशार्हो को मृत्यु-मुख मे पहुँचाने-वाद ही अपने पति को जलाजलि दूँगी अन्यथा स्वय ही अग्नि मे प्रवेग कर जाऊँगी।

यह कहकर जीवयशा मथुरा नगरी से निकल गई।

मथुरा नगरी का राज्य पुन राजा उग्रसेन को प्राप्त हुआ। उन्होने

अपनी पुत्री सत्यभामा का विवाह क्रौष्टुकि निमित्तज्ञ के द्वारा बताया
गए शुभ मुहूर्त में श्रीकृष्ण के साथ कर दिया ।

—त्रिषष्टि० = १५

—उत्तरपुराण ७०।४७५-४८७

विशेष—उत्तर पुराण के अनुसार—

- १ मथुरा में प्रवेश करते ही एक हाथी ने कृष्ण पर आक्रमण किया-जिमका उन्होंने एक दात उखाड़ लिया और उसमें मारने लगे । हाथी डगमग हूँ भाग गया । (श्लोक ४७७-४७८)
- २ कस को मारने की प्रेरणा चाणूर में मत्स्य युद्ध करने से पहले ही वसुदेव श्री कृष्ण को देते हैं—यह तुम्हारा कस की मारने का समय है । (श्लोक ४८१)
- ३ मुष्टिक का बलराम के साथ मत्स्य युद्ध करने का उल्लेख नहीं है ।
- ४ वे कस को केश पकड़कर नहीं पाँव पकड़कर घुमाते हैं और भूमि पर पटक कर मार डालते हैं ।

चाणूर की मृत्यु के पश्चात् कस स्वयं अखाड़े में उतरा तब कृष्ण ने उसे पैर पकड़कर आकाश में घुमाया और भूमि पर दे मारा । कस के प्राण पखेरू उड़ गए । (श्लोक ४८४)

मथुरा से चली जीवयगा तो सीधी राजगृह पहुँची । स्त्री के दो ही तो प्रमुख सहारे होते हैं पिता और पति । पति की मृत्यु के पश्चात् जीवयगा पिता के पास जा पहुँची ।

जरासध की राजसभा में रोती हुई जीवयगा ने प्रवेग किया । उसके बाल खुले हुए थे, नेत्रों से अविरल अश्रुधारा वह रही थी, मुख म्लान था ।

पिता ने पुत्री से रोने का कारण पूछा तो जीवयगा ने अतिमुक्त मुनि की भविष्यवाणी से तकर कन की मृत्यु तक पूरा वृत्तान्त कह सुनाया । सुनकर राजनीति निपुण जरासध बोला —

—कस से भूल हो गई । उसे देवकी को उसी समय मार डालना चाहिए था । न रहता बाँस न बजती वामुरी । देवकी ही न होती तो गर्भ कहाँ से आते ?

—उन्होंने तो गर्भों की हत्या कर दी थी ।—जीवयगा बोली ।

—हाँ, छह हत्याएँ भी हुई और फिर भी सातवाँ गर्भ जीवित बच गया ।

—यह तो वसुदेव और देवकी का छल था । उन दोनों ने मिलकर मेरे पति से विश्वासघात किया ।

—उस विश्वासघात का फल अब पाएँगे । तू दुःख मत कर पुत्री । मे कस घातियों को सपरिवार नष्ट करके उनकी स्त्रियों को रुलाऊँगा ।

—मैं भी यही चाहती हूँ ।

—तेरी यह इच्छा पूरी होगी ।—जरासध ने पुत्री को आश्वासन देकर महल में भेज दिया ।

इसके पश्चात् उसने सोमक नाम के राजा को बुलाया और उसे सम्पूर्ण स्थिति समझाकर कहा—

—तुम राजा समुद्रविजय के पास जाओ और कृष्ण-वलराम को अपने साथ यहाँ लिवा लाओ ।

स्वामी की आज्ञा पाकर राजा सोमक मथुरा आ पहुँचा । उसने मथुरा की राजसभा में उपस्थित होकर राजा समुद्रविजय से कहा—

—राजन् ! मैं महाराज जरासंध का सन्देश लेकर आया हूँ ।

समुद्रविजय ने आदरपूर्वक राजा सोमक को आसन पर बिठाकर पूछा—

—कहिए, क्या सन्देश है ?

—कृष्ण-वलराम को हमें सौंप दो ।

—क्यों ? क्या करोगे आप उन दोनों का ?

—वे हमारे स्वामी की पुत्री जीवयशा के पति कस के घातक हैं, इसलिए उन्हें उचित दण्ड दिया जायगा ।

यह सुनकर एक बार तो सपूर्ण सभा काँप गई । जरासंध की क्रूरता से वे भलीभाँति परिचित थे । समुद्रविजय ने दृढ़तापूर्वक कहा—

—राजा सोमक ! दण्ड अपराधी को दिया जाना है । कम ने कृष्ण-वलराम के निरपराध भाइयों की हत्या की थी । इसलिए भाइयों के हत्यारे कस को इन्होंने मार दिया तो कोई अपराध नहीं किया । ये दोनों निर्दोष हैं ।

—कृष्ण-वलराम तो अपराधी हैं श्री, उनके साथ ही साथ वसुदेव भी अपराधी हैं । इन्होंने कस को दिया हुआ अपना वचन भंग किया और सातवें गर्भ का गोपन किया ।

अब तक कृष्ण चुप बैठे थे । किन्तु पिता पर किए गए आक्षेप के कारण उनकी भ्रुकुटि टेढ़ी हो गई । उनके मुख पर क्रोध के भाव झलकने लगे । वे बोलना ही चाहते थे कि समुद्रविजय का दृढ़ स्वर सुनाई पड़ा—

—कस हत्यारा था, निरपराध-निर्गृह शिशुओं का क्रूर घातक । वसुदेव का उसके रक्त-रजित हाथों से शिशु को रक्षा के लिए छिपा लेना, अन्य स्थान पर पालन-पोषण करवाना, कृष्ण-वलराम का ऐसे आततायी अत्याचारी को मार डालना न धर्म-विरुद्ध है, न नीति विरुद्ध ।

—किन्तु स्वामी की अवहेलना करना, उसकी आज्ञा का पालन न करना अवश्य ही नीति विरुद्ध है । —राजा सोमक ने भी दृढता से प्रत्युत्तर दिया ।

अब कृष्ण चुप न रह सके । वे बीच में ही बोल पड़े—

—कौन स्वामी ? किसका स्वामी ? हम किसी स्वामी को नहीं जानते ?

राजा सोमक ने श्रीकृष्ण की ओर दृष्टि धुमाई । ऊपर से नीचे तक देखा—मानो बोलने से पहले युवक कृष्ण की क्षमता को तोन रहा हो । उत्तेजित होकर बोला—

—युवक ! जरासंध स्वामी है, सब दशार्हों का, समस्त दक्षिण भरतार्द्ध का । आप सब उसकी आज्ञा पालन करने को बाध्य है, समझे ।

—आज तक हमने उसकी इच्छा का सम्मान अपनी सज्जनतावग किया है । किन्तु उसने अत्याचारी कस का पक्ष लेकर आज से वह सम्बन्ध भी तोड़ दिया ।

सोमक कृष्ण को तो प्रत्युत्तर दे न सका । वह समुद्रविजय को सर्वोचित करके बोला—

—राजन् ! यह लड़का तो कुलागार है ।

श्रीकृष्ण के प्रति कुलागार शब्द अनाधृष्टि न सह सका । वह क्रोधित होकर बोला—

—आपकी धृष्टतापूर्ण बातें हम बड़ी देर से मुन रहे हैं । ऐसे अमर्यादित वचन हमारे सम्मान के विरुद्ध हैं । आप जिस अहंकार से गर्वित हो रहे हैं उसे हम शीघ्र ही नष्ट कर देंगे ।

राजा सोमक समझ गया कि वात किसी भी प्रकार वन नहीं सकती। वात का वतगड वन रहा है। वह वहाँ से चुपचाप उठा और समुद्रविजय से विदा लेकर चल दिया।

सोमक तो अपमानित होकर चला गया किन्तु दगार्ह राजा समुद्र-विजय के हृदय में चिता व्याप्त हो गई। दूसरे ही दिन उन्होंने अपने समस्त भाइयों को एकत्र करके निमित्तज्ञ क्रौण्टुकि को बुलाकर पूछा—

—महाराज ! हमारा त्रिखंडेग्वर जरासंध से विरोध हो गया है। इसका क्या परिणाम होगा ?

—अहकारी और बली पुरुषों से विग्रह का एक ही परिणाम होता है—युद्ध ! वही होगा।—क्रौण्टुकि ने उत्तर दिया।

- वह तो ठीक है, मैं भी समझता हूँ किन्तु युद्ध का परिणाम क्या होगा ?

—पराक्रमी कृष्ण-बलराम जरासंध का प्राणान्त कर देंगे।

क्रौण्टुकि की इस बात को सुनकर सभी उपस्थित जन सतुष्ट हुए। समुद्रविजय गम्भीरतापूर्वक कुछ देर तक सोचते रहे और फिर बोले—

—भद्र ! हमारे साधन अल्प हैं और जरासंध के अत्यधिक, फिर तुम्हारा कथन सत्य कैसे होगा ? यदि सत्य हो भी गया तो व्यर्थ ही मथुरा की प्रजा पीड़ित होगी।

ज्येष्ठ दशार्ह की बात युक्तियुक्त थी। क्रौण्टुकि ने पुनः गणित लगाया और बोला—

—महाराज ! आप इस समय सपरिवार पश्चिम दिशा के समुद्र की ओर चल जाइये। आप उसी दिशा में एक नगरी बसाकर निवास करिए। आपके पश्चिम दिशा में गमन करते ही शत्रुओं का क्षय प्रारम्भ हो जायगा।

—यह भी बता दीजिए कि नगरी किस स्थान पर बसाई जाय ?

—मार्ग में चलते हुए जिस स्थान पर सत्यभामा दो पुत्रों को जन्म दे वही आप नगरी बसाकर नि.गक होकर रहिए।

निमित्तज्ञ के वचनो के अनुसार राजा समुद्रविजय ने परिवार सहित मथुरापुरी छोड़ दी। उनके पीछे-पीछे उग्रसेन भी चल दिये। मथुरा से ग्यारह कुल कोटि यादव उनका अनुसरण करते हुए चले। शौर्यपुर में सात कुल कोटि यादव और सम्मिलित हो गये। अब दगार्ह राजा, समस्त परिवार-परिकर और राजा उग्रसेन सहित अठारह कोटि यादवों को लेकर विन्ध्याचल की ओर प्रस्थित हुए।

×

×

×

राजा सोमक ने जरासंध के ममक्ष पहुँचकर सारी वार्ता कह कह सुनाई। जरासंध की कोषाग्नि में घी पड़ गया। उसकी आँखें क्रोध से लाल हो गईं। पिता की कुपित मुद्रा देखकर पुत्र काल कुमार बोला—

—पिताजी ! आप मुझे आज्ञा दीजिए। मैं इन यादवों को अग्नि से, समुद्र से भी खींचकर मार डालूँगा। यदि इतना न कर सका तो मुँह नहीं दिखाऊँगा।

जरासंध ने कालकुमार को अन्य ५०० राजाओं के साथ बड़ी सेना लेकर यादवों पर चढ़ाई करने के लिए भेज दिया। उसके साथ उसके भाई यवन और सहदेव भी चले।

कालकुमार यादवों का पीछा करता हुआ विन्ध्याचल में आ पहुँचा। तब श्रीकृष्ण के रक्षक देवताओं को चिन्ता हुई। देवों ने एक द्वार वाले विशाल दुर्ग का निर्माण किया। उसमें स्थान-स्थान पर अनेक चिताएँ जल रही थीं। बाहर एक वृद्धा बैठी रो रही थी। कालकुमार वहाँ पहुँचा तो वृद्धा से पूछने लगा—

—क्यों रोती हो ? ये चिताएँ किस की हैं ?

—कालकुमार के भय से सभी यादव अग्नि में प्रवेश कर गए हैं। मैं उनके वियोग से दुखी होकर रो रही हूँ। अब मैं अधिक जीवित नहीं रह सकती। मैं भी अग्नि-प्रवेश करती हूँ।

यह कहकर वृद्धा चिता में कूद पड़ी।

कालकुमार को अपने बल पर अभिमान हुआ। साथ ही उसे अपनी प्रतिज्ञा भी स्मरण हो आई। बोला—

—मैंने पिताजी और वहन जीवयगा के समक्ष प्रतिज्ञा की थी कि मैं यादवों को अग्नि में से भी खींचकर मार डालूंगा। इसलिये मैं भी अग्नि में प्रवेश करता हूँ।

यह कहकर वह अग्नि में प्रवेश कर गया और सबके देखते-देखते जीवित ही जल गया। उसी समय सूर्यास्त हो गया। अतः जरासब के सैनिकों ने वही रात्रि-विश्राम किया।

प्रातः काल सैनिक उठे तो न वहाँ दुर्ग था और न अग्नि-चिताएँ। सहदेव, यवन तथा अन्य सभी राजा आश्चर्यचकित रह गए। तभी हेरिको ने आकर बताया—‘यादव आगे निकल गए हैं।’

सभी के मुख म्लान हो गए। वृद्धजनों को निश्चय हो गया कि यह देवमाया थी। सेनापति की मृत्यु और देवमाया से भयभीत सेना वापिस लौट गई।

सैनिकों ने जरासब को सम्पूर्ण वृत्तान्त सुनाकर यह भी बताया कि हमारे देखते ही देखते वह विशाल दुर्ग ओर चिताएँ अदृश्य हो गईं तो वह ‘हा पुत्र! हा पुत्र!’ कहकर छाती पीटने लगा।

×

×

×

×

यादव दल ने आगे बढ़ते हुए कालकुमार की मृत्यु की खबर सुनी तो बहुत प्रसन्न हुए और निमित्तज्ञ क्रौष्टिक का विशेष आदर करने लगे।

मार्ग में एक वन में यादव दल पड़ाव डाले ठहरा हुआ था। उसी समय अतिमुक्त चारण मुनि उधर आ निकले। दगार्हपति समुद्रविजय ने उनकी वन्दना करके पूछा—

—भगवन्! इस विपत्ति से हमारी रक्षा कैसे हो?

मुनिराज ने बताया—

—राजन्! तुम्हें तनिक भी भयभीत नहीं होना चाहिए। तुम्हारा पुत्र अरिष्टनेमि महा भाग्यवान्, अतुलित बलशाली और बाईसवाँ

तीर्थकर है। बलराम नवाँ बलभद्र है और कृष्ण नवाँ वासुदेव। कृष्ण द्वारका नगरी बसाकर रहेगा और जरासंध का वध कान्के भरताद्ध का स्वामी होगा।

हर्षित होकर समुद्रविजय ने मुनिश्री को भक्तिपूर्वक नमन करके विदा किया।

यादव दल मुखपूर्वक गमन करता हुआ सीराष्ट्र देश में आया और रैवतक पर्वत की वायव्य दिशा में अठारह कुन कांठि यादवों ने अपना गिविर डाल दिया।

श्रीकृष्ण की पत्नी सत्यभामा ने भानु और भामर नाम के दो पुत्र प्रसव किए। दोनों गिशु तेजस्वी थे। यादव छावनी में हर्ष और उत्साह छा गया।

कौण्टिकि के बताए अनुसार शुभ मुहूर्त में कृष्ण ने समुद्र की पूजा करके अष्टमभक्त तप प्रारम्भ किया। तीसरी रात्रि को लवण समुद्र का स्वामी सुस्थित देव प्रगट हुआ। उसने कृष्ण को पाचजन्य गख तथा बलराम को सुघोष गख भेंट किए। इसके अतिरिक्त दिव्य रत्न-माला और वस्त्र अर्पित करके श्रीकृष्ण से बोला—

—मैं लवण समुद्र का स्वामी सुस्थित देव हूँ। आपने किस कारण मेरा स्मरण किया ?

श्रीकृष्ण ने कहा—

—हे देव ! मैंने मुना हे कि अतीत के वासुदेव की यहाँ पर द्वारका नगरी थी जिसे तुमने जल से आच्छादित कर दिया है। इसलिए मेरे लिए भी वैसी नगरी बसाओ।

‘जैसी आपकी इच्छा’ कहकर देव वहाँ से चला गया। उसने सम्पूर्ण वृत्तान्त इन्द्र में निवेदन किया। इन्द्र ने कुबेर को आज्ञा दी और इन्द्र की आज्ञा से कुबेर ने द्वारका नगरी का निर्माण किया।

द्वारका नगरी बारह योजन लम्बी और नौ योजन विस्तारवाली थी। यह नगरी अनेक रत्नों से सुशोभित थी। अठारह हाथ ऊँचा, नौ हाथ भूमि के अन्दर गहरा और चारों ओर बारह हाथ चौड़ी खाई

से सुरक्षित एक किला बनाया । उसमें एक, दो, तीन मजिल वाले लाखों भवनो का निर्माण किया । अग्निकोण विदिगा में स्वस्तिकाकार एक महल राजा समुद्रविजय के लिए, नैऋत्य दिशा का महल पाँचवे ओर छठे दशार्ह के लिए इसी प्रकार अन्य दशार्हों के लिए भी महलो की रचना हुई । राजमार्ग के समीप स्त्रीविहारक्षम महल उग्रसेन राजा के लिए तथा सभी ग्रामादो से दूर हयगाला, गजगाला आदि का निर्माण किया । इन सबके मध्य में बलराम के लिए पृथिवीजय नाम का महल और कृष्ण के लिए सर्वनोभद्र नामक प्रासाद का निर्माण किया ।

सम्पूर्ण नगरी स्थान-स्थान पर तोरण, पताका आदि से सजा दी गई । यत्र-तत्र वेदिका, कूप, बावड़ी, तडाग, उद्यान, राजमार्गों का निर्माण हुआ ।

द्वारका इन्द्र की राजधानी अलकापुरी के समान सुशोभित होने लगी ।

नगर-निर्माण के पञ्चात् कुदेर ने कृष्ण को दो पीताम्बर, नक्षत्र-माला, हार, मुकुट, कौस्तुभ नाम की महामणि, गाङ्गा, धनुष, अक्षय बाण वाले तरकस, नन्दक नाम की खड्ग, कौमुदी नाम की गदा और गरुडध्वज रथ दिया । बलराम को वनमाला, मूंगल, दो नील वस्त्र, तालध्वज रथ, अक्षय बाण वाले तरकस, धनुष और हल दिये । कृष्ण और बलराम के पूज्य होने के कारण सभी दशार्हों को रत्नमयी आभूषण तथा अनेक प्रकार के रत्न प्रदान किये ।

समस्त यादवों ने कृष्ण को गन्धु सहारक मानकर पञ्चिम समुद्र के किनारे पर उनका राज्याभिषेक किया ।

राज्याभिषेक के पञ्चात् यादवों ने नगर प्रवेश की तैयारी की । बलराम अपने सारथि सिद्धार्थ द्वारा संचालित रथ में आरूढ़ हुए और कृष्ण अपने सारथि दारुक द्वारा संचालित रथ में । अन्य यादव उनके चारों ओर खड़े थे । उस समय दोनों भाई ग्रह नक्षत्रों से घिरे सूर्य-चन्द्र के समान सुशोभित हो रहे थे ।

द्वारका प्रवेग के समय जय-जयकार के उद्घोषों से आकाश गूँज उठा। बड़े उत्साह और समारोह पूर्वक यादवों ने द्वारका में प्रवेग किया।

श्रीकृष्ण की आज्ञा से कुवेर ने सभी विशिष्ट पुरुषों और दशो दशाहों के निमित्त निर्मित भवन वता दिये। सभी यादवों ने सुख पूर्वक उनमें प्रवेश किया।

कुवेर ने साढ़े तीन दिन तक स्वर्ण, रत्न, विचित्र वस्त्र तथा धान्यों की वृष्टि करके द्वारका नगरी को समृद्ध कर दिया।

वासुदेव श्रीकृष्ण के सुशासन में द्वारका निवासी सुखपूर्वक समय व्यतीत करने लगे।

—त्रिषष्टि० ८/१

—उत्तर पुराण ७१/१-२८

—अन्तकृत, वर्ग १, अध्ययन १

० उत्तरपुराण में नोमक राजा के आने का उल्लेख नहीं है। यहाँ जरासंध के पुत्रों के आक्रमण का वर्णन है—

१ जीवयशा से मथुरा के समाचार सुनकर जरासंध को बहुत क्रोध आया और उसने अपने पुत्र यादवों पर आक्रमण के लिए भेजे। यादवों ने उन्हें पराजित कर दिया। (श्लोक ७-८) तदन्तर जरासंध का अपराजित नाम का पुत्र युद्ध हेतु आया। उसने ३४६ बार आक्रमण किया किन्तु उसे भी परागमूख होना पड़ा। (श्लोक ६-१०) तब कालयवन (यहाँ कालयवन नाम का एक ही पुत्र माना गया है) 'मैं यादवों को अवश्य जीतूँगा' ऐसी प्रतिज्ञा करके चला। (श्लोक ११)

२ देव का नाम सुस्थित के स्थान पर नैगम है। (श्लोक २०)

द्वारका की समृद्धि दिन-दूनी रात चौगुनी बढ़ रही थी। उसकी ख्याति दूर-दूर तक फैल गई।

धूमते-धामते नारदजी एक दिन कृष्ण की राजसभा में आ पहुँचे। कृष्ण-बलराम दोनों भाइयों तथा सभी उपस्थित जनो ने नारद का स्वागत किया। अनेक प्रकार के विनयपूर्ण शब्दों को सुनकर देवर्षि सन्तुष्ट हुए किन्तु उनके हृदय में इच्छा जाग्रत हुई कि 'जैसे विनयी श्रीकृष्ण हैं, क्या वैसी ही विनयवान उनकी रानियाँ भी हैं।'

इच्छा जाग्रत होने की देर थी कि नारदजी को कृष्ण के अन्तःपुर में पहुँचने में विलम्ब नहीं हुआ। सभी रानियों ने देवर्षि का उचित आदर किया किन्तु सत्यभामा अपने वनाव-सिगार में लगी रही। उसने नारदजी की ओर देखा तक नहीं।

अनादर सभी को कुपित कर देता है जिसमें तो वह विश्वविख्यात कलहप्रिय मुनि नारद थे। सत्यभामा के भवन से ललाट पर बल डालकर वे लौट गए। मन में विचार करने लगे—'इस रूप गर्विता सत्यभामा को कृष्ण की पटरानी होने का बड़ा अहंकार है। इसकी छाती पर सौत लाकर बिठा दी जाय तो इसके होग ठिकाने आ जायें।'

स्वेच्छा विहारी नारद के लिए यह काम कौन सा कठिन था। अपनी अभिलाषा को हृदय में दबाए अनेक नगरों और ग्रामों में घूमते रहे। कुडिनपुर में उनकी अभिलषित वस्तु दिखाई दी—रुक्मिणी।

रुक्मिणी कुडिनपुर नरेश राजा भीष्मक और रानी यशोमती की पुत्री थी। रुक्मि नाम का बलवान युवक उसका भाई था। मुनि नारद

को रुक्मिणी ने नमन किया तो देवर्षि ने तुरन्त आशीर्वाद दे डाला—
दक्षिण भरतार्द्ध के स्वामी श्रीकृष्ण तुम्हारे पति हो ।

रुक्मिणी के हृदय में उत्सुकता जागी । उसने पूछा 'श्री कृष्ण कौन है ?' तो नारदजी ने कृष्ण के शौर्य, पराक्रम, सुन्दरता तथा विनयशीलता, बुद्धिमत्ता, नीतिकुशलता और धर्मपरायणता का वर्णन कर दिया ।

श्रीकृष्ण के अद्वितीय गुणों को सुनकर रुक्मिणी रीझ गई । उसने मन ही मन निर्णय कर लिया—'इस जन्म में श्रीकृष्ण ही मेरे पति होंगे ।

नारदजी ने ड़धर तो रुक्मिणी को कृष्ण में अनुरक्त किया और उधर रुक्मिणी का चित्रपट लेकर कृष्ण के पास आये । चित्र देखते ही कृष्ण चित्रलिंग से रह गए । पूछने लगे—

—देवर्षि ! क्या किसी देवी का चित्र बना लाए हैं ?

—नहीं कृष्ण ! यह तो मानवी है ।

—मानवी और इतनी सुन्दर ? कौन है ? कुछ परिचय तो दीजिए ।

—कुडिनपुर के वर्तमान नरेश रुक्मि की वहन रुक्मिणी —क्या इतना परिचय यथेष्ट है । नारदजी ने रुक्मिणी परिचय दे दिया ।

कृष्ण ने सिर हिलाकर स्वीकृति दी ।

तीर निशाने पर लग चुका था । अब नारद क्यों रुके ? उठ कर चलने लगे तो कृष्ण ने मसम्मान विदा कर दिया ।

रुक्मिणी की सुन्दरता से प्रभावित होकर कृष्ण ने एक दूत भज कर कुडिनपुर नरेश रुक्मि से प्रिय-वचनों में उसकी वहन की याचना की ।

दूत की बात सुनकर रुक्मि व्यगपूर्वक हँस पड़ा । बोला—

—अहो ! यह कृष्ण कैसा हीन-बुद्धि वाला है जो ग्वाला होकर भी मेरी वहन की इच्छा करता है । मैं तो दमघोष के पुत्र शिशुपाल के साथ रुक्मिणी का विवाह करूँगा ।

दूत को स्पष्ट उत्तर मिल चुका था । वह निराग वापिस लौट आया और रुक्मि की कठोर वाणी श्रीकृष्ण को सुना दी ।

रुक्मि का उत्तर पाकर श्रीकृष्ण मौन रह गये किन्तु रुक्मिणी के हृदय को बहुत आघात लगा । वह तो मन ही मन कृष्ण को अपना पति मान-चुकी थी । वह उदास रहने लगी । उसकी उदासीनता का कारण जानकर धात्री ने एकान्त में उससे कहा—

—राजकुमारी ! जब तुम वालिका थी और मेरे अंक में बैठी हुई थी तब अतिमुक्त मुनि ने तुम्हें देखकर कहा था —‘यह वालिका कृष्ण की पटरानी होगी ।’ मैंने उनसे पूछा—‘कृष्ण कौन है ?’ तब मुनिश्री ने बताया—‘जो पश्चिम समुद्र के किनारे द्वारका नगरी बसाए—वही कृष्ण इसका पति होगा ।’ उसी कृष्ण ने दूत द्वारा तुम्हारी याचना की थी किन्तु तुम्हारे भाई रुक्मि ने ठुकरा दी । वह तुम्हें दमघोष के पुत्र शिशुपाल को देना चाहता है ।

धात्री के वचन सुनकर रुक्मिणी ने पूछा—

—क्या मुनि के वचन निष्फल होंगे ?

—क्या कभी निस्पृह सन्तों की भविष्यवाणी भी मिथ्या हो सकती है ?—धात्री ने प्रतिप्रश्न कर दिया ।

रुक्मिणी धात्री के मुख की ओर देखने लगी । उसे सूझा ही नहीं कि इस प्रतिप्रश्न का क्या उत्तर दे ? धात्री ने ही विश्वासपूर्वक कहा—

—मुनि के वचन मिथ्या नहीं होंगे । यदि तुम्हारी इच्छा हो तो गुप्त दूत कृष्ण के पास भेजूं ?

राजकुमारी रुक्मिणी ने धात्री को सहमति प्रदान की । धात्री ने एक गुप्त दूत पत्र लेकर श्री कृष्ण के पास भेजा । पत्र में लिखा था—

माघमास की शुक्ल अष्टमी को नाग पूजा के बहाने मैं रुक्मिणी को लेकर नगर के बाहर उद्यान में जाऊँगी । हे कृष्ण ! यदि तुम्हें रुक्मिणी का प्रयोजन हो तो वहाँ आ जाना अन्यथा उसका विवाह शिशुपाल के साथ हो जायगा ।

दूत से यह सदेश पाकर कृष्ण ने मन ही मन कुडिनपुर जाने का निश्चय कर लिया ।

वहन के मुख पर झलकती निराशा और उसकी अप्रत्याशित चुप्पी ने रुक्मि को मात्राघात कर दिया । उसने गीघ्रातिगीघ्र वहन का विवाह करने में ही भलाई समझी । उसने भी दूत भेजकर गिणुपाल को आमंत्रित किया ।

गिणुपाल मेना सहित कुडिनपुर आ पहुँचा । श्रीकृष्ण भी अग्रज बलराम सहित पूर्व निर्धारित स्थान पर आए ।

धात्री रुक्मिणी को उसकी सखियों सहित नागपूजा के लिए नगर के बाहर उद्यान में लाई । कृष्ण वहाँ पहले से ही खड़े थे । उन्होंने आगे बढ़कर पहले ही धात्री का अभिवादन किया । धात्री के सकेत से रुक्मिणी रथ में बैठ गई । रथ चल पड़ा ।

जब रथ कुछ दूर चला गया तब धात्री और सखियों ने पुकार मचाई—दौटो ! दौडो ! पकडो ! कृष्ण रुक्मिणी को हर कर लिए जा रहे हैं ।

कृष्ण ने भी पाञ्चजन्य गख फूक दिया और बलराम ने अपना सुघोष गख । गखों की गभीर ध्वनि को सुनकर एकवारगी सभी चकित रह गए ।

किन्तु मवाल था इज्जत का । राजा रुक्मि की वहन और गिणुपाल को मिलने वाली रुक्मिणी का हरण हो जाय और वे चुप बैठे रहे ऐसा कैसे हो सकता था । रुक्मि और गिणुपाल दोनों ही विशाल सेना लेकर पीछे दौड़ पड़े ।

विशाल मेना देखकर रुक्मिणी का दिल बैठने लगा । बोली—

—नाथ ! मेरा भाई और यह गिणुपाल बड़े पराक्रमी और क्रूर हैं । इनके साथ अन्य वीर भी हैं और आप दोनों भाई अकेले । अब क्या होगा ?

मुस्करा कर कृष्ण ने आश्वासन दिया—

—क्या रुक्मि और क्या गिणुपाल ? मेरा बल देखो ।

यह कह कृष्ण ने अर्द्धचन्द्राकार बाण से ताडवृक्षों की पत्ति कमल-पत्रों की भाँति छेद दी और अपनी अगूठी से लगा हीरा मसूर के दाने के समान चूर्ण कर दिया। पति का बल और पराक्रम देखकर रुक्मिणी मन्तुष्ट हो गई।

कृष्ण ने अग्रज से कहा—

—आप इस वधू को लेकर चलिए। मैं रुक्मि-शिशुपाल आदि से निपट कर आता हूँ।

बलराम ने आदेशात्मक स्वर ने उत्तर दिया—

—कृष्ण ! तुम रुक्मिणी को लेकर द्वारका पहुँचो। मैं अकेला ही इन रुक्मि आदि सबको यमलोक पहुँचा दूँगा।

पति का बल नो रुक्मिणी देख ही चुकी थी। वह गिड गिडाकर बोली—

—रुक्मि ! मेरा महोदर है। उसकी प्राण रक्षा कीजिए।

बलराम ने बहन के प्रेम को समझा और रुक्मि को जीवित छोड़ने का आश्वासन देकर वही रुक गए।

श्रीकृष्ण रुक्मिणी को लेकर द्वारका की ओर चले गए।

×

×

×

यन्त्रों की सेना नमीप आते ही बलराम ने मूशल उठा कर युद्ध प्रारम्भ कर दिया। सम्पूर्ण मेना अकेले बलराम ने मथ डाली। शिशुपाल सहित रुक्मि की मेना भाग खड़ी हुई। रणभूमि में अकेला रुक्मि खड़ा रहा। उस वीर ने युद्ध में पीठ नहीं दिखाई। बलराम ने उसका रथ तोड़ दिया, मुकुट भग कर दिया और छत्र गिरा दिया। उसके पञ्चात् क्षुरप्रबाण ने उसके दाढ़ी-मूँछों को उखाड़ कर बोले—

—मूर्ख ! तुम मेरे अनुज की पत्नी के भाई हो, इस कारण अवध्य हो। मेरी कृपा ने दाढ़ी-मूँछ रहित होकर अपनी पत्नियों के साथ विलास करो।

बलराम तो यह कह कर चल दिये किन्तु अपमानित वीर रुक्मि वापिस कठिनपुर नहीं गया। उसी स्थान पर भोजकट नगर बसा कर रहने लगा।

×

×

×

×

द्वारका नगरी को दूर से ही देखकर रुक्मिणी चकित रह गई । ऐसी समृद्ध और सुन्दर नगरी उसने जीवन में पहली बार देखी थी । तभी कृष्ण ने कहा—

—हे देवी ! यह सुन्दर नगरी देव-निर्मित है । इसमें सुखपूर्वक मेरे साथ रहो ।

रुक्मिणी में हृदय में हीन भावना उत्पन्न हो आई । उसने नीचा मुख करके कहा—

—नाथ ! आपकी अन्य स्त्रियाँ तो उनके पिताओं ने बड़ी समृद्धि के साथ दी होगी और मैं अकेली बंदी के समान आपके साथ आ गई हूँ ।

श्रीकृष्ण ने उसकी नारी-सहज भावना को समझा । आश्चर्य से बोले—

—कैदी क्यों ? महारानी के समान आई हो । और यदि बंदी भी हो तो मेरे हृदय की ।—यह कहकर वासुदेव कृष्ण हँस पड़े ।

रुक्मिणी आँखों में आनन्दाश्रु भर आए । बोली—

—मेरा अहोभाग्य कि चरणदासी को हृदय में स्थान मिला । स्वामी ! कुछ ऐसा करिए कि लौकिक दृष्टि से मेरा अपमान न हो ।

वासुदेव ने कहा—‘ऐसा ही होगा ।’

तब तक रथ द्वारका में प्रवेग कर चुका था । श्रीकृष्ण ने रुक्मिणी को सत्यभामा के महल के समीप ही दूसरे महल में ठहरा दिया और गांधर्व विवाह करके क्रीडा करने लगे ।

×

×

×

×

सत्यभामा के हृदय में रुक्मिणी को देखने की सहज जिज्ञासा थी । वह जानना चाहती थी कि रुक्मिणी में ऐसी क्या विगेषता है जिसके कारण वासुदेव उसमें इतने अनुरक्त रहते हैं ।

इस जिज्ञासा को और भी बढ़ा दिया—‘रुक्मिणी के महल में प्रवेग की निषेधाज्ञा है ।’ विना वासुदेव की आज्ञा के उस महल में कोई प्रवेग नहीं कर सकता था ।

सत्यभामा ने एक दिन कृष्ण से आग्रह किया—

—स्वामी ! अपनी प्रिया को मुझे तो बताओ ।

कृष्ण हँसकर उस आग्रह को टाल गए किन्तु उन्हें यह भी निश्चय हो गया कि बात आगे टलने वाली नहीं है । किसी दिन सत्यभामा हठ कर बैठे उससे पहले ही दोनों की भेंट करा देनी चाहिए । किन्तु यदि सीधी-सादी भेंट करा दी तो कृष्ण की चतुराई ही क्या ?

लीला-उद्यान में श्रीदेवी की प्रतिमा एक भवन में विराजमान थी । कृष्ण ने उस प्रतिमा को वहाँ से हटवाकर कुगल चित्रकारों के पास भिजवा दिया । श्रीदेवी की प्रतिमा के स्थान पर उन्होंने रुक्मिणी को ला बिठाया और उसे सिखा दिया—

—यही मेरी अन्य मन्त्रियाँ आने आने वाली हैं, इसलिए तुम निश्चल होकर देवी की मूर्ति की भाँति बैठ जाना ।

रुक्मिणी ने पति के हृदय की बात समझी और स्वीकृति दे दी ।

श्रीकृष्ण सत्यभामा के महल में पहुँचे । सत्यभामा को तो एक ही धुन थी—रुक्मिणी को देखने की । पति को देखते ही पूछ बैठी—

—कहाँ छिपा रखा है, अपनी प्राण-वल्लभा को ? मेरी-दृष्टि पड़ते ही कुरूप तो नहीं हो जायगी वह ।

—अरे नहीं ! अरे नहीं ॥ देवि ! तुम नाराज मत हो । जब इच्छा हो तब मिल लो । —कृष्ण ने घबराव का अभिनय करते हुए उत्तर दिया ।

—आप उसका स्थान बतावे तब तो भेंट हो ? आपने तो उसे छिपा रखा है ?

—नहीं देवि ! वह तो चाहे जहाँ जा सकती है । आज ही वह श्रीदेवी के मन्दिर में गई है ।

वासुदेव सत्यभामा के महल से चल दिये और सत्यभामा अन्य मन्त्रियों के साथ लीला-उद्यान के श्रीदेवी मन्दिर में जा पहुँची । अनेक स्त्रियों को आते देखकर रुक्मिणी देवी-मूर्ति के समान निश्चल बैठ

गई । सत्यभामा ने पूरा मन्दिर छान मारा किन्तु उमे रुक्मिणी कही दिग्वार्ड न दी ।

वेदिका पर बैठी निव्वचल मूर्ति को देखकर कहने लगी—

—अहो इस श्रीदेवी का रूप कैसा मनोहर है । इसको बनाने वाला कारीगर कितना कुशल है ?

इसके बाद वह अजलिबद्ध होकर खड़ी हो गई और प्रार्थना करने लगी—

—हे श्रीदेवी ! मुझ पर प्रसन्न होकर इतनी कृपा करो कि मैं रुक्मिणी को अपनी रूपलक्ष्मी में पराजित कर दूँ । इसीलिए तुम्हारी पूजा अर्चना कर रही हूँ ।

और सत्यभामा बड़ी भक्तिभाव से उसकी पूजा करने लगी ।

रुक्मिणी को बड़ी जोर की हँसी आई किन्तु उसने हास्य के ज्वार को अन्दर ही दबा दिया । उसका गरीर भी काँपा । यदि जरा सी चेष्टा बदल जाती तो खेल ही विगड जाता किन्तु वह पापाण-प्रतिमा के समान निष्पद बैठी रही ।

सत्यभामा ने बड़े मनोयोग से पूजा की और सिर नवाकर श्रीकृष्ण के पास पहुँची । खीझकर बोली—

—आपकी पत्नी कहाँ है ?

—श्रीदेवी के मन्दिर में । —कृष्ण ने भोगेपन में उत्तर दिया ।

—आप नहीं बताना चाहते तो मत बताइये झूठ क्यों बोलते हैं ?

—नही प्रिये ! मैं झूठ नहीं बोलता, रुक्मिणी श्रीदेवी के मन्दिर में ही है ।

—मैंने तो वहाँ का कौना-कौना छान माग ।

—तुमसे अवश्य ही कोई भूल हुई है ।

—हाँ । हाँ ॥ मैं तो अन्धी हूँ, आप ही चलकर दिखा दीजिए ।

—चलो । मैं अभी दिखाए देता हूँ ।

दोनो पति-पत्नी श्रीदेवी के मन्दिर में जा पहुँचे । दूर से ही पति

को आते देखकर रुक्मिणी वेदिका से उठकर द्वार पर आ खड़ी हुई और पति से पूछने लगी—

—नाथ ! अभी-अभी थोड़ी देर पहले मुझे किसने नमन किया ?

कृष्ण ने मत्स्यभामा की ओर संकेत करके कहा—

—मेरी प्रिया मत्स्यभामा ने ।

—मैं क्यों इसे नमन करूँगी ? —मत्स्यभामा बीच में ही बोल पड़ी ।

—क्यों ? तुमने अपनी बहन को नमन किया, इसमें क्या बुराई है ? —कहकर कृष्ण हँस पड़े और रुक्मिणी के होठों पर मुस्कराहट फैल गई ।

मत्स्यभामा ने ध्यानपूर्वक रुक्मिणी की ओर देखा और फिर वेदिका की ओर । वेदिका रिक्त थी । मत्स्यभामा सब कुछ समझ गई और झीझ कर बोली—

—तो यह बात है ? अब समझी । आप दोनों का मिना-जुला पड़्यन्त्र । माँ के सामने मेरा मिर झुकाने का अच्छा स्वागत रचा, तुम दोनों ने । —मत्स्यभामा रुठ गई ।

कृष्ण ने मनाने का बहुत प्रयास किया किन्तु वह मानी नहीं । वह अपने महल में चली गई और रुक्मिणी अपने महल में । वासुदेव ने रुक्मिणी को बहुत समृद्धि दी और पति-पत्नी प्रेम रस में निमग्न हो गए ।

देवर्षि नारद ने द्वारका की राजसभा में प्रवेग किया तो कृष्ण ने उठकर उनका स्वागत किया और उचित आसन पर बिठाया। वात-चीत के बीच में वासुदेव पूछ बैठे—

—देवर्षि ! आप तो ढाई द्वीप में धूमते ही हैं। कोई आश्चर्य-जनक वस्तु दिखाई पड़ी हो तो बताइये।

और देवर्षि नारद तो ऐसे ही प्रश्नों का उत्तर देने में स्वयं को धन्य समझते थे। तुरन्त ही बोल पड़े—

—हाँ वासुदेव ! जाववती सर्वाधिक आश्चर्यकारी रत्न है।

—कुछ परिचय भी मिल जाए, मुनिवर !

—वैताढ्यगिरि पर जबवान्नगर का बलवान विद्याधर राजा जबवान है। उसकी स्त्री शिवाचन्द्रा से एक पुत्र विश्वक्सेन और पुत्री जाववती हुई। वह नित्य गंगास्नान करने जाती है। —नारदजी ने पूरा परिचय दे दिया।

नारदजी तो ससम्मान विदा होकर अपनी राह लगे और वासुदेव ने कुछ चुने हुए वीरों के साथ गंगा नदी की राह पकड़ी।

गंगा किनारे पहुँचकर देखा तो जाववती हसिनी के समान गंगा जल में किलोल कर रही थी। अन्य स्त्रियाँ कुछ तो जल में उतर कर उसकी क्रीड़ा में सहायक थी और कुछ किनारे पर खड़ी उत्साहित कर रही थी।

कृष्ण सोचने लगे—‘जैसा नारदजी ने कहा—वैसा ही है।’

तभी जाववती की दृष्टि कृष्ण पर पड़ गई। उन्हें देखते ही वह चित्रलिखी सी रह गई। जल क्रीड़ा बन्द हो गई। स्त्रियों की दृष्टि

उधर को उठी तो कृष्ण एक वृक्ष की ओट में छिप गए। जाववती को लगा चन्द्र निकला और छिप गया। वह तुरन्त जल से बाहर निकली और वस्त्र बदल कर कृष्ण के समीप आई।

श्रीकृष्ण ने उसे अनुक्त जानकर रथ में बिठाया और द्वारका की ओर ले चले।

सखियों ने देखा कि राजकुमारी का हरण हो रहा है तो उन्होंने गोर मचा दिया।

पुत्री के अपहरण की बात सुनकर जववान हाथ में तलवार लेकर पीछे दौड़ा। किन्तु मार्ग में ही अनाद्युष्टि ने उसे पराजित करके बन्दी बना लिया और कृष्ण के सामने ला पटका।

पराजित राजा जववान ने पुत्री जाववती कृष्ण को दी और स्वयं प्रव्रजित हो गया।

जववान के पुत्र विज्वक्सेन को साथ लेकर श्रीकृष्ण जाववती सहित द्वारका आए।

जाववती को रुक्मिणी के समीप का महल निवास के लिए प्राप्त हुआ और उसने भी रुक्मिणी में सखीपना स्थापित कर लिया।

विद्याधर पुत्री जाववती को उसके योग्य समृद्धि श्रीकृष्ण ने दे दी।

× × × ×

—हे स्वामी। सिंहलपति लक्ष्मणरोमा आपकी आज्ञा का अनादर करता है। उसकी लक्ष्मणा नाम की पुत्री शुभ लक्षण सम्पन्न है। वह द्रुमसेन सेनापति की रक्षा में समुद्र-स्नान के लिए आती है और वहाँ सात दिन तक रहती है। लक्ष्मणा सभी प्रकार से योग्य है।—दूत ने कृष्ण से कहा।

दूत की इस विज्ञप्ति को सुनकर कृष्ण अपने अग्रज बलराम को साथ लेकर वहाँ पहुँचे।

द्रुमसेन सेनापति ने विरोध किया तो उसे तालवृक्ष की भाँति छेद दिया और लक्ष्मणा को ले आए।

लक्ष्मणा को जाववती के निकट का रत्नमय महल निवास के लिए प्राप्त हुआ और वह कृष्ण की अग्रमहिषी बनी ।

×

×

×

×

सौराष्ट्र देश में आयुस्वरी नगरी का राजा था—राष्ट्रवर्धन । उसकी विजया नाम की रानी से एक पुत्र हुआ नमुचि और एक पुत्री सुसीमा ।

नमुचि ने अस्त्र विद्या सिद्ध करली थी इस कारण वह स्वयं को अजेय समझता था और कृष्ण की आज्ञा भी नहीं मानता था । अनेक बार दूत उसके अभिमान की चर्चा वासुदेव से कर चुके थे ।

एक बार नमुचि अपनी बहन सुसीमा के साथ प्रभास तीर्थ में स्नान करने गया । कृष्ण के दूता ने आकर समाचार दिया—

—स्वामी ! इस समय नमुचि अपनी बहन सुसीमा के साथ प्रभास तीर्थ में है और उसका शिविर बहुत पीछे पड़ा हुआ है ।

कृष्ण तुरन्त अग्रज बलराम के साथ वहाँ पहुँचे और नमुचि को मारकर सुसीमा को अपने साथ द्वारका ले आए । विधिवत् विवाह करके लक्ष्मणा के निकटवर्ती महल में रख दिया ।

पिता राष्ट्रवर्धन को यह समाचार ज्ञात हुआ तो उसने अपनी पुत्री सुसीमा के लिए दासी आदि परिवार और कृष्ण के लिए हाथी आदि विवाह का दहेज भेज दिया ।

×

×

×

×

मरुदेश के राजा वीतभय ने अपनी गौरी नाम की पुत्री का विवाह श्रीकृष्ण के साथ कर दिया ।

श्रीकृष्ण ने उमे अग्रमहिषियों में स्थान दिया और सुसीमा के निकटवर्ती महल उसको निवासार्थ दिया ।

×

×

×

×

अरिष्टपुर के राजा हिरण्यनाभ की पुत्री पद्मावती के स्वयंवर में

श्रीकृष्ण अग्रज बलराम के साथ गए । हिरण्यनाभ रोहिणी^१ का सहोदर था । उसने अपने भानजे को पहचान कर उन दोनों का हर्षित होकर स्वागत किया ।

हिरण्यनाभ का ज्येष्ठ बन्धु रैवत भगवान नमिनाथ के तीर्थ में श्रामणी दीक्षा ग्रहण करके गृहत्याग कर गया था । उसने अपनी रेवती, रामा, सीता और बन्धुमती—चारों पुत्रियाँ वसुदेव पुत्र बलराम के लिए सकल्प कर दी थी । अतः राजा हिरण्यनाभ ने इन चारों कन्याओं का विवाह बलराम के साथ कर दिया ।

बलराम के विवाह के पञ्चात् श्रीकृष्ण स्वयंवर में पहुँचे । उन्होंने भरी स्वयंवर सभा में सभी राजाओं की नजरों के सामने पद्मावती का हरण कर लिया ।

स्वयंवर मण्डप में से राजकन्या का हरण हो जाय और उसके अभ्यर्थी क्षत्रिय देखते रहे, उनके क्षत्रियत्व का अपमान है यह । सम्मान की रक्षा और अपमान से पीड़ित अनेक राजा युद्ध के लिए तत्पर हो गए ।

युद्ध हुआ और श्रीकृष्ण ने सबको पराजित कर अपने पराक्रम का डका बजा दिया ।

पद्मावती उनकी हुई । वे उसे द्वागका ले आए और गौरी के महल के समीप के महल में उसके निवास का प्रबन्ध कर दिया ।

× × × ×

गांधार देश की नगरी पुष्कलावती के राजा नग्नजित का एक पुत्र था चारुदत्त और पुत्री गांधारी । गांधारी अपने रूप लावण्य से विद्याधरियों को भी पराजित करती थी ।

- १ रोहिणी अरिष्टपुर के राजा रुधिर की पुत्री और वसुदेव की पत्नी थी । रोहिणी के गर्भ से ही बलराम का जन्म हुआ था । इसी कारण वसुदेव पुत्र बलराम और कृष्ण को हिरण्यगर्भ ने अपना भानजा मानकर विशेष स्वागत किया ।

नग्नजित की मृत्यु के बाद पुष्कलावती का राज्य मिला चारुदत्त को, परन्तु वह उसे भोग न सका। उसके भागीदारो ने उसे पराजित कर दिया।

निर्बल सदा ही बलवान की शरण लेता है। चारुदत्त भी निर्बल था अतः उसने श्रीकृष्ण की शरण ग्रहण की। दूत द्वारा उसने द्वारका-धोश श्रीकृष्ण से कहलवाया—‘हे स्वामिन् ! मेरी रक्षा करो।’

तुरन्त शरणागत की रक्षा हेतु श्रीकृष्ण गांधार देश जा पहुँचे, भागीदारो को मार गिराया और चारुदत्त को राज्य पर विठा दिया।

चारुदत्त ने भी अपने उपकारी वासुदेव कृष्ण को अपनी बहन गांधारी देकर आदरभाव प्रदर्शित किया।

श्रीकृष्ण गांधारी को द्वारका ले आए और रानी पद्मावती के महल के समीप ही उसे एक महल में स्थान दिया।

×

×

×

×

इस प्रकार श्रीकृष्ण की आठ पटरानियाँ हो गई—सत्यभामा, रुक्मिणी, जाम्बवती, लक्ष्मणा, मुसीमा, गौरी, पद्मावती और गांधारी।

—त्रिषष्टि० ८/६

—गुरुदेव ! मैं मातृत्व के गौरव से विभूषित हूँगी या नहीं ?
रुक्मिणी ने विगिष्ट ज्ञानी मुनि अतिमुक्त से पूछा ।

—तुम्हारे कृष्ण जैसा ही प्रतापी पुत्र होगा । —मुनिश्री ने उत्तर दिया ।

मुनिश्री तो उठकर चले गए किन्तु रुक्मिणी और सत्यभामा में विवाद छिड़ गया । रुक्मिणी कहती थी कि मुनिश्री का कथन मेरे लिए है और सत्यभामा का आग्रह था कि 'मेरे लिए ।'

विगिष्ट ज्ञानी और अनेक लब्धियों के स्वामी मुनि अतिमुक्त रुक्मिणी के महल में पधारे थे और जिस समय रुक्मिणी ने पुत्रवती होने का प्रश्न किया था उस समय सत्यभामा और रुक्मिणी दोनों पास-पास बैठी थी । अतः दोनों ने ही मुनिश्री के वचनों को अपने लिए मान लिया था ।

दोनों का विवाद चल ही रहा था कि दुर्योधन वहाँ आ गया ।
उनको विवादग्रस्त देखकर बोला—

—मुझे भी तो बताओ कि तुम्हारे विवाद का क्या कारण है ?
सत्यभामा ने कहा—

—भाई मुनिश्री ने मेरे लिए भविष्यवाणी की है कि मेरे गर्भ से आर्यपुत्र जैसा ही तेजस्वी पुत्र होगा ।

—मुनिश्री के वचनों का गलत अर्थ मत लगाओ । प्रश्न मेरा था इसलिए उनका भविष्य कथन मेरे लिए ही फलदायी होगा ।—रुक्मिणी ने अपनी बात कही ।

दुर्योधन भी सोचने लगा । किन्तु सत्यभामा अपने आग्रह पर अटल थी । उसे पूर्ण विश्वास था कि वह तेजस्वी पुत्र की माँ बनेगी । अतः दुर्योधन से बोली—

—मेरा पुत्र तुम्हारा जामाता होगा ?

—नहीं । मेरा पुत्र तुम्हारा दामाद बनेगा । —रुक्मिणी ने बात काटी ।

दुर्योधन ने देखा कि इनका विवाद इस प्रकार शान्त नहीं होगा । उसने उत्तर दिया—

—तुम मे से जिसके भी पुत्र होगा उसी को मैं अपनी पुत्री दे दूँगा ।

किन्तु स्त्रियों का विवाद इतनी जल्दी शान्त नहीं होता । सत्यभामा को अब भी वैचैनी थी । वह बोली—

—मेरे पुत्र का विवाह पहले होगा ।

रुक्मिणी ही क्यों दबती, उसने भी कह दिया—

—पहले तो मेरे ही पुत्र का विवाह होगा ।

—नहीं होगा ।

—होगा ।

—लगाओ शर्त ।

—हो जाय । मैं कौन सी कम हूँ ।

सत्यभामा बोली—

—हम मे से जिसके पुत्र का भी विवाह पहले होगा तो दूसरी को अपने सिर के केश देने पड़ेंगे, स्वीकार है ?

—हाँ । हाँ ॥ स्वीकार है ।

—अच्छी तरह मोच लो ।

—खूब सोच लिया ।

—समय पर पलट मत जाना ।

—बात बदलने वाले कोई और होंगे ।

और दोनों मे यह शर्त हो गई । साक्षी रूप मे कृष्ण, बलराम और दुर्योधन को भी सम्मिलित कर लिया गया ।

सत्यभामा शर्त स्वीकार करके अपने महल में चली गई और कृष्ण, वलराम, दुर्योधन अपने-अपने स्थानों को ।

×

×

×

×

एक रात्रि को रुक्मिणी ने स्वप्न में देखा कि 'वह एक श्वेत वृषभ पर रखे एक विमान में बैठी है ।' उसी समय एक महर्द्धिक देव महा-शुक्र देवलोक से च्यवकर उसके गर्भ में अवतरित हुआ ।

रुक्मिणी की निद्रा टूट गई । उसने गवाक्ष से आकाश की ओर देखा—रात्रि का अन्तिम प्रहर व्यतीत होने वाला था । प्रातःकाल उठकर रुक्मिणी ने अपना स्वप्न श्रीकृष्ण को सुनाया । कृष्ण ने इसका फल बताते हुए कहा—

—तुम्हारे गर्भ से अद्वितीय वीर पुत्र का जन्म होगा ।

स्वप्न का फल जानकर रुक्मिणी हर्ष से भर गई ।

दीवारों के भी कान होते हैं । सत्यभामा की एक दासी ने यह स्वप्न और उसका फल सुन लिया । दासी ने अपना कर्तव्य निभाया और स्वामिनी के कानों में यह समाचार ज्यों का त्यों डाल दिया ।

दासी ने समाचार क्या सुनाया मानो पिघला हुआ सीसा ही उड़ेल दिया । सुनते ही सत्यभामा का मुख-विवर्ण हो गया । किन्तु निराशा से काम नहीं चलता । सौत के मम्मूख नीचा और सौत देख ले, असम्भव ! चाहे जितने भी छल-छन्द करने पड़े पर अपनी नाक ऊँची ही रहनी चाहिए ।

सत्यभामा ने भी 'मैंने स्वप्न में ऐरावण जैसा विशाल हाथी देखा है' कृष्ण को अपना कल्पित स्वप्न सुनाया ।

कृष्ण ने देखा सत्यभामा की आँखें सौतिया डाह से जल रही हैं । वे समझ गए कि यह स्वप्न की बात मिथ्या है । किन्तु अपने भावों को मन में रख कर बोले—

—तुम्हारा स्वप्न तो एक उत्तम पुत्र का फल सूचित करता है ।

सत्यभामा हृदय में सतुष्ट होकर अपने महल में लौट आई ।

दैव भी बड़ा बलवान है । सत्यभामा को भी गर्भ रह गया । उसके गर्भ में साधारण जीव आ गया । सामान्य जीव होने के कारण सत्यभामा का उदर बढ़ने लगा किन्तु रुक्मिणी के गर्भ में विगिण्ट पुण्यात्मा जीव था अतः वह कृशोदरा ही रही ।

ज्यो-ज्यो सत्यभामा का उदर बढ़ता जाता उसके हृदय की कली खिलती जाती । उसे यह देख कर और भी सतोष होता कि रुक्मिणी के उदर पर गर्भ के कोई लक्षण नहीं है । एक दिन उनके मनोभाव मुख से निकल ही गए । वह कृष्ण से बोली—

—नाथ ! आपकी पत्नी रुक्मिणी बड़ी झूठी है ।

—क्यों ?—अचकचा कर कृष्ण ने पूछा ।

—वह आपको भी धोखा देने से नहीं चूकती ।

—क्या ? बात क्या हुई ?

—अरे आप तो भूल ही गए । उसने अपने गर्भवती होने की आपको झूठी खबर दी थी । हम दोनों का उदर देखोगे तो आपको विश्वास हो जाएगा ।

कृष्ण कुछ उत्तर देने इससे पहले ही एक दासी ने आकर समाचार दिया—

—देवी रुक्मिणी ने स्वर्ण की मी काति वाला एक उत्तम पुत्र प्रसव किया है ।

कृष्ण ने मन्द स्मित से सत्यभामा की ओर देखा । उसका चेहरा वृक्ष चुका था ।

कुछ काल पश्चात् सत्यभामा ने भी एक पुत्र को जन्म दिया और उस पुत्र का नाम रखा गया भानुक ।

×

×

×

वामुदेव रुक्मिणी के नवजात शिशु को अक में लेकर खिला रहे थे । कभी उसके कपोल सहलाते तो कभी मस्तक । पुत्र भी पिता के अक में किलक रहा था । दुम-दुम करती छोटी-छोटी आँखों से पिता के मुख को देखता और हाथ-पैर चला कर प्रसन्नता व्यक्त कर देता ।

छोटे से मुख से निकली किलकारियाँ वासुदेव के कानों में अमृत की बूँदों सी पड़ रही थी।

इतने में रुक्मिणी का रूप रख कर देव धूमकेतु आया और बालक को ले गया।

थोड़ी देर बाद रुक्मिणी आई और बालक को माँगने लगी। कृष्ण हैरान रह गए।

—अभी-अभी तो तुम ले गई थी।

—नहीं तो ! मैं तो अभी आई हूँ।

—फिर वह कौन थी ?

—मैं क्या जानूँ ?

कृष्ण ने ठण्डी साँस भर कर कहा—

—रुक्मिणी ! हमारे पुत्र का किसी ने हरण कर लिया।

‘हरण’ शब्द सुनते ही रुक्मिणी ‘हा पुत्र’ कह कर कटे वृक्ष के समान गिर पड़ी। गीतोपचार से सचेत हुई तो विलाप करने लगी।

शिशु के अपहरण से समस्त यादव दुःखी हो गए।

हाँ, सत्यभामा के हृदय में अवश्य ही लड्डू फूटने लगे। रुक्मिणी के पुत्र का अपहरण हो गया। अब अवश्य ही वह उसके केश कतर-वाएगी। सत्यभामा की हार्दिक इच्छा तो थी कि घी के दिथे जलाए किन्तु लोक निन्दा के कारण अपनी खुशी प्रगट न कर सकी। हृदय तो उसका वाँसो उछल रहा था।

पुत्र की खोज में यादवों ने जमीन आसमान एक कर डाले। जगह-जगह दूत भेजे गए। भरसक खोज कराई गई किन्तु शिशु का पता कहीं न लगा।

पता तो तब लगता जब शिशु आस-पास कहीं होता। वह तो पहुँच चुका था वैताढ्यगिरि के भूतरमण उद्यान की टक शिला पर।

शिशु के पूर्वजन्म का शत्रु धूमकेतु देव रुक्मिणी का रूप बना कर नवजात शिशु को वासुदेव कृष्ण के हाथों से ले गया था। वैताढ्य-

गिरि के भूतरमण उद्यान की टक गिला पर ले जाकर शिशु को उसने रख दिया और फिर सोचने लगा—‘इस बालक को गिला पर पटक कर मार डालूँ। अरे नहीं। तब तो बहुत दुःख होगा। यह रोयेगा, चिल्लायेगा और सम्भव है मुझे ही दया आ जाय। तब ऐसा करूँ कि इसे यो ही पड़ा छोड़ जाऊँ। भूख-प्यास में तड़प-तड़प कर अपने आप मर जायगा।’ यह सोचकर देव उस बालक को वही छोड़ कर चला गया।

किन्तु वह बालक निरुपक्रम जीवितवाला^१ और चरमदेही^२ था।

प्रातःकाल कालसवर नाम का एक विद्याधर राजा अग्निज्वाल नगर से विमान द्वारा अपने नगर की ओर जा रहा था। उसका विमान आकाश में अचानक ही रुक गया। विद्याधर ने नीचे की ओर देखा तो अति तेजस्वी शिशु गिला पर क्रीड़ा करता दिखाई दिया। उसने विचार किया—‘मेरे विमान की गति को रोकने वाला यह कोई महा पुण्यवान जीव है।’ विद्याधर ने शिशु को अङ्गुली में उठाया और अपनी पत्नी कनकमाला को सौंप दिया। कनकमाला तेजस्वी पुत्र को अङ्गुली में लेकर धन्य हो गई।

अपनी राजधानी मेघकूट नगर में जाकर विद्याधर राजा कालसवर ने विज्ञप्ति कराई कि ‘मेरी रानी गूढगर्भा थी और उसके उदर से यह तेजस्वी बालक उत्पन्न हुआ है।’

राजा और प्रजा दोनों ने पुत्र का जन्मोत्सव किया और शिशु का नाम प्रद्युम्न रखा।

प्रद्युम्न को अङ्गुली में लेकर विद्याधर राजा कालसवर और रानी कनकमाला खुशी से फूले न समाते और इधर रुक्मिणी रानी और

१ किसी प्रकार से भी नष्ट न होने वाली आयु निरुपक्रम जीवित वाली आयु कहलाती है। ऐसी आयु वाला जीव अपना आयुपूर्ण करने ही मरता है।

२ उमी भव में मोक्ष हो जाय ऐसा शरीर चरमदेह कहलाता है और उसको पाने वाला जीव चरमदेही।

वासुदेव कृष्ण पुत्र वियोग में सिर धुन कर पछताते । समस्त द्वारका शोक विह्वल थी ।

ऐसे ही गोकर्ण समय में मुनि नारद का द्वारका में आगमन हुआ । यादवों को गोकर्ण देखकर उन्होंने पूछा—

—कृष्ण ! यह क्या ? समस्त यादव दुखी हैं । क्या हो गया ?

—मुनिवर ! रुक्मिणी के नवजात शिशु को मेरे ही हाथों से कोई हरण कर ले गया । आपको मानूँ तो उसका पता बता दो ।—वासुदेव ने शोकपूर्ण शब्दों में उत्तर दिया ।

नारदजी आश्वासन देते हुए बोले—

—हे कृष्ण ! विशिष्ट जानी मुनि अतिमुक्त तो अब मुक्त हो गए । इसलिए मैं पूर्व विदेह क्षेत्र के तीर्थकर भगवान् सीमन्धर स्वामी से पूछ कर तुम्हें बताऊँगा ।

यह सुनकर यादवों ने नारद से आग्रहपूर्वक कहा—

मुनिवर ! जितनी शीघ्र हो सके, शिशु के समाचार लाइये ।

यादवों की उत्सुकता देखकर नारद उठ खड़े हुए । यादवों ने उन्हें उचित सम्मान और शिशु-समाचार शीघ्रातिशीघ्र लाने के आग्रह सहित विदा किया ।

—त्रिषष्टि० ८१६

—वासुदेव हिंडी, पीठिका

पूर्व विदेह क्षेत्र में प्रभु सोमधर स्वामी के समवसरण में उपस्थित होकर नारद ने भक्तिपूर्वक नमन-वन्दन किया और उनकी परम कल्याणकारी देवता सुनने के पश्चात् अजलि बाँधकर पूछा—

—प्रभु ! भरतक्षेत्र की द्वारका नगरी के स्वामी कृष्ण और उनकी पत्नी रुक्मिणी का पुत्र इस समय कहाँ है ?

—मेघकूट नगर में । —प्रभु ने सक्षिप्त उत्तर दिया ।

—देवाधिदेव ! वह वहाँ कैसे पहुँच गया ?

प्रभु ने फरमाया—

—नारद ! शिशु के पूर्वजन्म का शत्रु धूमकेतु देव रुक्मिणी का रूप बनाकर उसे कृष्ण के हाथ से ले गया । उसने वह शिशु वैताद्व्य-गिरि के भूतरमण उद्यान की टक गिला पर छोड़ दिया । उधर से अपने विमान में बैठकर मेघकूट नगर का विद्याधर राजा कालसवर अपनी पत्नी कनकमाला के साथ निकला । वह शिशु को उठा ले गया और अब अपना पुत्र मानकर पालन कर रहा है ।

नारद ने पुनः जिज्ञासा प्रगट की—

—नाथ ! धूमकेतु देव का इस शिशु के साथ पूर्वभव का वैर किस कारण था ?

सर्वज्ञ प्रभु वताने लगे—

इस जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में मगध देश है । इसके गालिग्राम नाम के समृद्धिदान ग्राम में मनोरम नाम का एक उद्यान है । इस उद्यान का स्वामी सुमन नाम का यक्ष था ।

गालिग्राम में सोमदेव नाम का ब्राह्मण रहता था। उसकी पत्नी अग्निला के गर्भ से अग्निभूति और वायुभूति दो पुत्र हुए।

दोनों भाई युवावस्था प्राप्त करते-करते वेद-वेदांग के पारगामी विद्वान् हो गए। विद्या यदि एक ओर विनयी बनाती है तो दूसरी ओर घमण्डी भी। अग्निभूति और वायुभूति दोनों घमण्डी हो गए। उन्हें अपने ज्ञान का बहुत मंद था। अपने समक्ष वे किसी को कुछ नहीं समझते थे।

एक बार ग्राम के बाहर मनोरम उद्यान में आचार्य-नदिवर्धन अपने शिष्य सघ सहित पधारे। सूरिजी का आगमन सुनकर गाँव के नर-नारी उनकी वदना को चल दिए।

विद्याभिमानी दोनों ब्राह्मण भाइयों के गर्व को ठेस लगी। उनके होते हुए किसी अन्य की ग्राम-वासी वदना करे—यह उन्हें कहाँ सह्य था? ईर्ष्याग्नि में जलते हुए वे भी मनोरम उद्यान पहुँचे और अपने ज्ञान की महिमा स्थापित करते हुए पूछने लगे—

—अरे! श्वेताम्बरियो तुम में कुछ ज्ञान हो तो बोलो।

सूरिजी ने दोनों भाइयों के ज्ञानमंद को पहिचान लिया। व्यर्थ का वितण्डावाद श्रमण नहीं करते, इसलिए वे चुप रह गये।

दोनों भाइयों ने समझा कि श्रोसघ में कोई ज्ञानी नहीं है। अतः बार-बार अपना प्रश्न दुहराने लगे। उन्होंने साधुओं का उपहास करना भी प्रारम्भ कर दिया। यह उपहास आचार्यश्री के शिष्य सत्य नाम के साधु को सह्य न हुआ। उसने शांतिपूर्वक पूछा—

—ब्राह्मण पुत्रो! तुम तो बहुत ज्ञानी मालूम पड़ते हो?

—मालूम क्या पड़ते हैं? हम हैं ही ज्ञानी।

—कुछ पूछूँगा तो उसका उत्तर दे दोगे?

—क्यों नहीं? तीनों लोको और तीनो कालो की ऐसी कौन-सी बात है जो हम से छिपी है? तुम पूछो, हम अवश्य बता देंगे।

ग्राम निवासी इस वार्तालाप को बड़ी रुचि से सुन रहे थे। उन्हें भी जिज्ञासा जाग्रत हो गई कि मुनिजी क्या पूछेंगे?

सत्यमुनि ने उपशान्त भाव से प्रश्न किया—

—ब्राह्मणो ! तुम किस भव से इस मनुष्य जन्म में आए हो ? यह बताओ ?

प्रश्न सुनते अग्निभूति और वायुभूति के चेहरे उत्तर गए । क्या उत्तर दे ? कुछ सूझ ही नहीं पडा ? लज्जावश दोनों का मुख नीचा हो गया ।

उपस्थितजन प्रतीक्षा कर रहे थे कि ब्राह्मण-पुत्र अब बोले—अब बोले ? किन्तु वे नहीं बोले । उनकी जिह्वा को काठ मार गया । तब ग्रामवासियों ने ही जिज्ञासा प्रगट की—

—पूज्यश्री ! आप ही बताये ।

सत्यमुनि ने बताया—

ब्राह्मणो ! पूर्वजन्म में तुम दोनों इसी ग्राम की वनस्थली में माम-भक्षी सियाल (गीदड़) थे । एक रात्रि को एक वृषक अपने खेत में चर्म रज्जु (चमड़े की रस्सी) छोड़ गया । तुम चर्म लोभी तो थे ही उसे खा गए । वह रज्जु तुम्हारे उदर में जाकर अटक गई और तुम्हारा प्राणान्त हो गया । श्रृगाल गरीर छोड़कर तुमने मनुष्य गरीर पाया ।

प्रातःकाल उस हलवाहे ने आकर देखा तो चर्म-रज्जु गायब मिली । अनुक्रम से उसने भी कालधर्म प्राप्त किया और अपनी ही पुत्र-वधू के उदर से पुत्र उत्पन्न हुआ । उसको किसी कारणवश जाति-स्मरण ज्ञान हो गया । वह मन ही मन सोचने लगा—‘अरे ! यह तो मेरी पुत्रवधू है, इसे माता कैसे कहूँ और अपने ही पुत्र को पिता कैसे कह सकूँगा ?’ ऐसा विचार कर वह मौन हो गया । लोगो ने समझा कि बालक गूँगा है ।

लोगो की जिज्ञासा और भी बढ़ गई । ब्राह्मण भाइयो की आँखों में नन्देह झलकने लगा । उनके सन्देह निवारण तथा अपनी जिज्ञासा-पूर्ति हेतु कुछ ग्रामवासी उन गूँगे बेटे (हलवाहे) को मूरिजी के पास बुला लाये ।

सत्यमुनि ने उससे कहा—

—भद्र । तुम गूँगे नहीं हो । तुमने वनावटी मौन धारण कर लिया है । अपने मौन का कारण ग्रामवासियों को बताओ ।

गूँगे खेडुक ने मुनिजी की ओर देखा । वह समझ गया कि उनके समझ रहस्य छिप नहीं सकता । वन्दना करके उसने अपने मौन का कारण बता दिया । लोगो ने सुना कि जो कुछ मुनिजी ने कहा था वही खेडुक ने बताया । तब मुनिजी ने खेडुक को समझाया —

—कर्मों की लीला अति विचित्र है । एक जन्म का पिता दूसरे जन्म में पुत्र हो जाता है, कभी भाई । स्त्री कभी वहन बन जाती है, कभी माँ, और कभी पुत्री । पूर्वजन्मों के सम्बन्धों को इस जन्म में मानना उचित नहीं है ।

मुनिश्री के वचनों को सुनकर गूँगे खेडुक को प्रतिबोध हुआ । अनेक लोगो ने श्रामणी दीक्षा ली और ब्राह्मण-भाइयों का लोक में अपवाद फैला ।

उस समय तो वे लज्जाभिमुख होकर चले आये किन्तु उपहास और लोकापवाद के कारण उनकी कोपाग्नि प्रज्वलित हो गई । रात्रि के अन्धकार में वे दोनों तलवार निकर मुनिश्री के प्राण हरण करने पहुँचे । उसी समय उद्यान के स्वामी सुमन यक्ष ने उन्हें स्तम्भित कर दिया ।

दूसरे दिन प्रातः काल ब्राह्मण-भाइयों को इस दशा में देखकर लोगो ने उनकी बहुत निन्दा की । उनके माता-पिता रोने लगे । तब यक्ष ने प्रगट होकर कहा—

—तुम्हारे पुत्र मुनि को मारना चाहते थे इस कारण मैंने उन्हें स्तम्भित कर दिया है ।

—अब इन्हें मुक्त कर दो । —माता-पिता ने रोते-रोते विनय की ।

—यदि ये दोनों श्रामणी दीक्षा लेना स्वीकार करें तो अभी मुक्त कर दूँ । —यक्ष का उत्तर था ।

दोनों भाइयों ने विनयपूर्वक कहा—

—हम लोग साधुधर्म का पालन नहीं कर सकेंगे ।

—फिर ? यक्ष ने पूछा ।

—श्रावकधर्म का पालन कर लेंगे ।

दोनों की इस स्वीकृति को पाकर यक्ष ने उन्हें मुक्त कर दिया । इसके पश्चात् दोनों भाई यथाविधि जिनधर्म का पालन करने लगे । किन्तु उनके माता-पिता वैदिक धर्म का ही पालन करते रहे ।

अग्निभूति-वायुभूति कालधर्म प्राप्त करके सौधर्म देवलोक में छह पत्योपम की आयु वाले देव हुए । देवलोक में च्यव कर उन दोनों ने हस्तिनापुर के वणिक् अर्हदास के घर पूर्णभद्र और मणिभद्र के रूप में जन्म लिया । वहाँ भी श्रावकधर्म का पालन करने लगे ।

एक बार माहेन्द्र नाम के मुनि हस्तिनापुर में पधारे । उनकी देशना से प्रतिबोध पाकर अर्हदास ने श्रामणी दीक्षा ग्रहण कर ली । पूर्णभद्र और मणिभद्र भी मुनि माहेन्द्र की वन्दना करने जा रहे थे । मार्ग में एक कुतिया और एक चाडाल को देखकर उन्हें प्रेम उत्पन्न हुआ ।

दोनों भाई विचार करने लगे—‘चाडाल से तो साधारणतया घृणा होती है, हमें प्रेम क्यों उत्पन्न हुआ ? इसका क्या कारण है ?’ यही ऊहापोह करते-करते दोनों भाई मुनिश्री के पास जा पहुँचे । उनकी वन्दना की और पूछने लगे —

—पूज्यश्री ! अभी मार्ग में आते समय हमें एक कुतिया और एक चाडाल के प्रति प्रेम उत्पन्न हुआ । इसका क्या कारण है ?

मुनिराज ने बताया—

पूर्वजन्म में तुम दोनों भाई अग्निभूति और वायुभूति नाम के ब्राह्मण थे । उस समय तुम्हारे पिता सोमदेव और माता अग्निनाथी ।

सोमदेव मर कर शखपुर का राजा जितशत्रु हुआ और अग्निनाथी शखपुर में ही सोमभूति ब्राह्मण की पत्नी रुक्मिणी बनी । राजा जितशत्रु

पर-स्त्री में आसक्त रहता था। एक बार उसकी दृष्टि रुक्मिणी पर पड़ गई। काम पीड़ित होकर उसने गुण्डो द्वारा रुक्मिणी को पकड़वा मँगाया और अपने अंत पुर में रख लिया।

नोमभूति पत्नी-वियोग की अग्नि में जलने लगा और राजा जित-वन्धु कामसुख भोगने लगा। रुक्मिणी के साथ एक हजार वर्ष तक काम क्रीडा में निमग्न रहने के बाद उसकी मृत्यु हुई और वह पहली नरक में तीन पल्योपम आयुवाला नारकी बना। नरक से निकला तो हरिण बना। वहाँ शिकारी के हाथों मृत्यु पाई और माया-कपटी श्रेष्ठिपुत्र हुआ। वहाँ से मर कर हाथी बना। इसने १८ दिन का अनगन करके मृत्यु पाई और तीन पल्योपम आयुवाला वैमानिक देव बना। वहाँ से च्यव कर वह चाडाल बना। अग्निला भी अनेक भवों में भटकती कुतिया बनी।

—हे भद्र ! तुम दोनों ने जो चाडाल और कुतिया देखे हैं, वे पूर्व-जन्म में तुम्हारे माता-पिता थे। इसी कारण तुम्हारे हृदय में उनके प्रति प्रेम जाग्रत हुआ।

मुनिजी के इस कथन से पूर्णभद्र और मणिभद्र को जातिस्मरण ज्ञान हो गया। उन दोनों ने चाडाल और कुतिया को प्रतिबोध दिया। चाडाल ने एक महीने के अनशनपूर्वक देह-त्याग किया और नन्दी-ध्वर द्वीप में देव हुआ। कुतरी (कुतिया) भी अनशन करके मरी और शखपुर में सुदर्शना नाम की राजपुत्री हुई।

कुछ काल पञ्चात् माहेन्द्र मुनि पुन हस्तिनापुर आये तब पूर्ण-भद्र-मणिभद्र ने चाडाल और कुतिया की गति के सम्बन्ध में पूछा। मुनिजी ने उन दोनों की सद्गति के सम्बन्ध में वता दिया। इस पर दोनों भाइयों ने शखपुर जाकर राजकुमारी सुदर्शना को प्रतिबोध दिया। राजपुत्री ने सयम ग्रहण किया और मर कर देव लोक गई।

पूर्णभद्र-मणिभद्र भी गृहस्थ-धर्म का पालन करते हुए अपनी आयु पूर्ण करके सौधर्म देवलोक में इन्द्र के सामानिक देव हुए।

देवलोक से अपना आयुष्य पूर्ण करके पूर्णभद्र और मणिभद्र

हस्तिनापुर के राजा विश्वकसेन के मधु और कैटभ नाम के दो पुत्र हुए। नन्दीश्वर देव, चिरकाल तक भव-भ्रमण करता हुआ वटपुर नगर का राजा कनकप्रभ हुआ और राजकुमारी सुदर्शना उसकी पटरानी चन्द्राभा।

राजा विश्वकसेन मधु को राज्यपद और कैटभ को युवराज पद देकर दीक्षित हो गया और सयम पालन करके ब्रह्मदेवलोक में देव बना।

मधु ने बहुत सी पृथ्वी विजय कर ली। एक बार भीम पल्लीपति उसके राज्य की सीमा पर उपद्रव करने लगा। उसका दमन करने के लिए मधु चला। मार्ग में वटपुर के राजा कनकप्रभ ने उसका सत्कार किया। रानी चन्द्राभा ने भी उसे प्रणाम करके बहुत सी भेट दी। ज्यों ही चन्द्राभा अत पुर जाने को वापिस मुड़ी मधु काम-पीड़ित होकर उसे बलात् पकड़ने की इच्छा करने लगा। मन्त्रियों ने समझा-बुझा कर उस समय उसे शांत कर दिया। मधु भी उस समय चुप हो गया। पल्लीपति का दमन करने के पश्चात् वह लौटा तो पुन वटपुर नरेश कनकप्रभ ने स्वागत-सत्कार करके अनेक प्रकार की भेटे दी। मधु ने कहा—‘राजन् ! मुझे तुम्हारी अन्य भेट अच्छी नहीं लगती। तुम मुझे अपनी रानी चन्द्राभा अर्पण करो।’

कौन पति ऐसा होगा जो अपनी पत्नी ही दूसरे को अर्पण कर दे ? कनकप्रभ ने भी चन्द्राभा अर्पण नहीं की। तब बलवान मधु ने चन्द्राभा को जबरदस्ती पकड़ा और अपने साथ ले गया। निर्बल कनकप्रभ कुछ न कर सका और पत्नी वियोग में दुखी होकर इधर-उधर भटकने लगा।

तड़पने वाला तड़पता रहा और मधु चन्द्राभा के साथ काम-क्रीडा का सुख भोगने लगा।

एक बार मधु रानी चन्द्राभा के महल में देर से पहुँचा तो उसने इस विलम्ब का कारण पूछा—

—आज आपको देर क्यों हो गई ?

— एक विवाद का निर्णय करने में त्रिलम्ब हो गया । —मधु ने बताया ।

— विवाद क्या था ?

—व्यभिचार ।

— वह व्यभिचारी तो पूजने योग्य है ।

—व्यभिचारी और पूज्य ? क्या कह रही हो चन्द्राभा ? वह तो दण्ड देने योग्य है । —मधु ने उत्तेजित होकर कहा ।

—यदि यही न्याय है तो आप भी तो जगविख्यात व्यभिचारी । चन्द्राभा ने बात अधूरी छोड़ दी ।

चन्द्राभा के शब्द मार्मिक थे । लज्जा से मधु का मुख नीचा हो गया । उसी समय राजा कनकप्रभ राजमार्ग पर निकला । उसकी दशा पत्नी वियोग में पागलो जैसी हो रही थी । उसके कपड़े फटे थे और बालक उसके पीछे किलकारियाँ मारते चल रहे थे । चन्द्राभा के हृदय में विचार आया—‘अहो ! मेरे वियोग में मेरे पति की यह दगा हो गई, मुझ जैसी परवग स्त्री को धिक्कार है ।’ उसने राजा मधु को भी अपने पति को इस दगा में दिखा दिया ।

मधु को गहरा पश्चात्ताप हुआ । तत्काल धुन्ध नाम के अपने पुत्र को राज्य दिया और अनुज कैटभ के साथ मुनि विमलवाहन के पास दीक्षा ग्रहण कर ली । आयु के अन्त में अनशन करके दोनों भाइयों ने शरीर छोड़ा और महाशुक्र देवलोक में सामानिक देव हुए ।

राजा कनकप्रभ तीन हजार वर्ष तक पत्नी वियोग में दुखी रह कर मरा और ज्योतिष्क देवों में धूमकेतु नाम का देव हुआ । अवधि ज्ञान के उपयोग से जानकर पूर्वभव के शत्रु मधु को ढूँढने लगा किन्तु उसे वह कहीं न मिला । वहाँ से च्यव कर मनुष्य जन्म पाकर तापस हो गया । बाल तप करके मरा तो वैमानिक देव बना । इस भव में भी वह मधु को नहीं देख सका । पुनः भव भ्रमण करता हुआ ज्योतिषी देव बना । इस जन्म में भी उसका नाम धूमकेतु ही था । वह अपने

पूर्वभव के गन्तु मधु को अब भी न भूला था और निरन्तर खोज रहा था ।

प्रभु ने नारद को सम्बोधित किया—

—हे नारद । ज्योही महाशुक्र देवलोक में च्यव कर मधु राजा के जीव ने श्रीकृष्ण की पटरानी रुक्मिणी के गर्भ में जन्म लिया त्योही धूमकेतु उसे खोजता हुआ द्वारका आ पहुँचा । अवसर देखकर उसने रुक्मिणी का रूप बनाया और कृष्ण के हाथों में ले उड़ा । गिशु को मारने की इच्छा से वह उसे वैताड्यगिरि की टक गिला पर छोड़ आया । वही से कालसवर विद्याधर गिशु को उठा ले गया । अब वह गिशु उनके भवन में पल रहा है ।

नारद ने प्रभु की बात सुनकर पूछा—

—स्वामी । अब वह बालक द्वारका किस प्रकार पहुँचेगा ?

—नारद । अभी तो उसके जाने का योग नहीं है, सोलह वर्ष की आयु के पञ्चात् ही वह द्वारका जा सकेगा ?

—इसका कारण ? देवाधिदेव ।

—रुक्मिणी को सोलह वर्ष तक पुत्र वियोग सहना पड़ेगा ?

इतना कहकर भगवान् सीमधर स्वामी मौन हो गए । किन्तु नारद के हृदय की जिज्ञासा गान्त नहीं हुई । उनके हृदय में उथल-पुथल होने लगी । वे इस वियोग का कारण जानने को उत्सुक हो गए ।

—वसुदेव हिंडी, पीठिका

—त्रिषष्टि० ८/६

—उत्तरपुराण ७२/१-६६



- ० उत्तर पुराण में प्रद्युम्न के पूर्वभवों के बारे में बलभद्र भगवान् अरिष्टनेमि के गणधर वरदत्त से पूछते हैं । (श्लोक १-२) । कथानक वही है केवल कुछ नामों का नगण्य-सा भेद है ।

प्रद्युम्न का हरण वह कृष्ण के हाथ से नहीं करता वरन् अन्तःपुर के सभी लोगो को मोह निद्रा में सुलाकर हरण कर लेता है। खदिर नाम के वन में तक्षक नाम की शिला के नीचे रख कर चल देता है।

(श्लोक ५१-५२)

विद्याधर का नाम कालसम्भव (कालसवर के स्थान पर) और उसकी रानी का नाम कचनमाला (कनकमाला की वजाय) बताया है। (श्लोक ५४) ब्रालक का नाम देवदत्त (प्रद्युम्न के स्थान पर) रखा।

(श्लोक ६०)

सोलह मास का फल सोलह वर्ष

१२

अमृत सलिला गङ्गा के तट पर कोई प्यासा नहीं रहता तो अनन्त ज्ञानी सीमधर स्वामी के चरण-कमलो में बैठे नारद ही क्यों अपनी जिज्ञासा शांत न करते ? अजलि बाँधकर खड़े हो गए और पूछने लगे—

—नाथ ! रुक्मिणी को पुत्र-वियोग किस कर्म के कारण भोगना पड़ेगा ?

प्रभु रुक्मिणी के पूर्व-भव बताने लगे—

इस जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में मगध देश के अन्तर्गत लक्ष्मीग्राम नाम का एक ग्राम है । उसमें सोमदेव नाम का एक ब्राह्मण रहता था । उसकी स्त्री का नाम था लक्ष्मीवती । लक्ष्मीवती एक बार उपवन में गई । वहाँ एक मोर का अण्डा पड़ा हुआ था । लक्ष्मीवती ने उत्सुकता-वश वह अण्डा उठा लिया और कुछ समय तक ध्यानपूर्वक देखकर उसे पुनः उसी स्थान पर रख दिया ।

लक्ष्मीवती तो वहाँ में चली आई किन्तु उसके हाथों के कुकुम के कारण अण्डे के रंग और गंध परिवर्तित हो गये । मोरनी ने उसे देखा और सूँघा तो उसे वह अपना अण्डा ही न मालूम पड़ा । उसने वह सेया नहीं । सोलह घड़ी तक अण्डा इसी प्रकार पड़ा रहा । सयोग से वरसात हो जाने के कारण जब उसका रंग धुल गया और गंध वायु तथा पानी के साथ वह गई तब उसका असली रंग-रूप और गंध उभर आया । मयूरी ने अपने अण्डे को पहिचाना और सेया ।

अण्डे से उचित समय पर उत्तम मोर का बच्चा निकला । लक्ष्मीवती पुनः उद्यान गई और मोर के छोटे से शिशु पर मोहित हो गई । मोरनी रोती ही रह गई और लक्ष्मीवती उस बच्चे को पकड़

लाई । घर लाकर उसने उसे पिजरे में रख दिया । लक्ष्मीवती उसे बड़े प्रेम से अन्न-पान आदि खिलाती और सुन्दर नृत्य करने की शिक्षा देती ।

लक्ष्मीवती तो मोर का वच्चा पाकर मगन थी किन्तु मोरनी अपने शिशु से विछुड कर विह्वल । वह रात-दिन रोती । उसके आक्रन्दन से ब्रवीभूत होकर नगर-निवासियों ने लक्ष्मीवती के पास आकर कहा—

—तुम्हारा तो खेल हो रहा है और वह बेचारी मोरनी मरी जा रही है । उसके वच्चे को छोड दो ।

लोकनिन्दा के भय से लक्ष्मीवती उस मोर के वच्चे को छोडने को तत्पर हो गई । उसने वह वच्चा उसकी माता के पास जाकर छोड दिया । मोर का नवजात शिशु अब सोलह मास का युवा हो चुका था ।

उस समय लक्ष्मीवती ने सोलह वर्ष के पुत्र-वियोग का घोर असाता वेदनीय और अन्तराय कर्म बाँधा ।

एक समय लक्ष्मीवती अपने सुन्दर रूप को दर्पण में देख रही थी । उसी समय मुनि समाधिगुप्त भिक्षा के लिए उसके घर में आए । उन्हें देखकर उसके पति सोमदेव ने कहा—

—भद्रे ! मुनिराज को भिक्षा दो ।

उसी समय सोमदेव को किसी अन्य पुरुष ने बुला लिया और वह चला गया ।

अपने शृङ्गार में बाधा पडने के कारण लक्ष्मीवती कुपित तो हो ही गई थी । पति की अनुपस्थिति में उसने घृणापूर्वक मुनिश्री को कठोर वचन कहकर घर से निकाल दिया और शीघ्र ही दरवाजा बन्द कर लिया ।

मुनि-जुगुप्सा के तीव्र पाप के फलस्वरूप उसे सातवे दिन गलित कुष्ठ रोग हो गया । रोग की वेदना से वह छटपटाने लगी । जब वेदना असह्य हो गई तो वह अग्नि में जल मरी । आर्त परिणामो के कारण उसी गाँव में घोवी के घर में गधेड़ी हुई । वहाँ से मरी तो विष्टा

खाने वाली डुक्करी (शूकरी) हुई। पुनः उसने कूकरी (कृतिया) का जन्म लिया। इस जन्म में दावानल में दग्ध होते हुए उसने किसी शुभ परिणाम से मनुष्य आयु का वध किया। प्राण त्याग कर वह नर्मदा नदी के किनारे भृगुकच्छ (भडौच) नगर में काणा नाम की एक मच्छीमार की पुत्री हुई।

काणा की काया अति दुर्गन्धमयी थी। उसकी दुर्गन्ध ऐसी असह्य थी कि माता-पिता न सह सके और नर्मदा के किनारे छोड़ आए। किसी प्रकार वह युवती हुई और लोगो को नाव में बिठाकर नदी पार उतार कर अपनी जीविका उपार्जन करने लगी।

दैवयोग से मुनि समाधिगुप्त वहाँ आ गए। दिन का चौथा प्रहर प्रारम्भ हो गया अतः नदी किनारे ही मुनिराज कायोत्सर्ग में लीन हो गए।

भयङ्कर गीत पड़ रहा था। दिन में सूर्य के आतप में ही शरीर की ठठरी बँध जाती जिसमें तो अब रात का घुँघलका छाने लगा। काणा ने सोचा ये साधु ऐसे गीत में कैसे रह सकेंगे। उसने दयार्द्र चित्त होकर मुनि को तृणों से ढक दिया।

रात्रि व्यतीत हुई। प्रातः काल होने पर मुनिश्री का ध्यान पूरा हुआ। काणा ने मुनि को भक्तिपूर्वक प्रणाम किया। धर्मलाभ का शुभाशीप देकर मुनि ने सोचा कि 'यह कन्या भद्र परिणाम वाली है' अतः उन्होंने उसे धर्मदेशना दी।

धर्मदेशना सुनते हुए काणा मुनिश्री की ओर टकटकी लगाकर देखती रही। उसके हृदय में बार-बार विचार उमड़ता — 'कही देखा है? कहाँ? कुछ याद नहीं?' काणा अपनी जिज्ञासा रोक न सकी, पूछ बैठी —

—महाराजश्री! मैंने आपको कही देखा है। पर कहाँ? कुछ स्मरण नहीं आ रहा। आप ही बताइये।

मुनिश्री ने उत्तर दिया—

—मत पूछो काणा तुम्हें दुख होगा।

यह सुनकर काणा की जिज्ञासा और भी तीव्र हो गई। यह बार-बार आग्रह करने लगी। तब मुनि ने उसे उसके पूर्वभाव सुना दिये।

मुनिराज के प्रति अपनी जुगुप्सा के कारण काणा को बड़ा पञ्चात्ताप हुआ। वह बार-बार स्वयं को धिक्कारने लगी। मुनिश्री से उसने बारम्बार क्षमा माँगी।

काणा परम श्राविका हो गई। मुनिश्री ने उसे धर्मश्री नाम की आर्या को सौंप दिया। वह आर्याजी के साथ विहार करते हुए सद्धर्म का पालन भली-भाँति करने लगी।

एक बार किसी गाँव के नायल नाम के श्रावक को आर्याजी ने उसे सौंप दिया। नायल के आश्रय में रहती हुई श्राविका काणा एकांतर उपवास करती हुई अर्हन्त आराधना में लीन रहती। अन्त समय में अनगन पूर्वक मरण करके वह अच्युत इन्द्र की इन्द्राणी बनी। वहाँ से आयुष्य पूर्ण करके वह रुक्मिणी हुई है।

हे नारद ! मयूरी के वच्चे को सोलह मास तक माता विछोह कराने के कारण इसने जो तीव्र असाता का बन्ध किया था उसका फल रुक्मिणी को भोगना ही पड़ेगा क्योंकि किये हुए कर्मों का फल भोगना ही सासारिक जीव की नियति है।

इतना कहकर प्रभु सीमधर स्वामी मौन हो गए।

नारद की जिज्ञासा भी शांत हो चुकी थी। अतः उन्हें श्रीकृष्ण को दिए हुए वचन का स्मरण हो आया। केवली भगवान को नमन-वन्दन करके नारद विदेह क्षेत्र से चले तो सीधे वैताढ्यगिरि पर जा पहुँचे।

मेघकूटनगर की राजसभा में नारद पधारे तो विद्याधर कालसवर ने उनका हार्दिक स्वागत किया। नारद ने पूछा—

—विद्याधर ! बहुत प्रसन्न हो।

—हाँ देवर्षि ! आपकी कृपा से मुझे पुत्र-रत्न की प्राप्ति हुई है !

—अति सुन्दर । अति सुन्दर ॥ वधाई हो विद्याधर । देखने में कैसा लगता है, कुमार ?

—आपने क्या छिपाव, नारदजी । महल में चलिए । अपनी आँखों से देख लीजिए ।

कालसवर नारद को महल में ले गया । वहाँ उसने शिशु को लाकर उन्हे दिखाया । नारदजी गद्गद् हो गए । कुछ समय तक एक-टक देखते रहे फिर पूछा—

—क्या नाम रखा है, इस नन्हे-मुन्ने का ?

—जी, प्रब्रुम्न ।

—बहुत ठीक । इसके मुख के प्रकाश से दिशाएँ जगमगा रही हैं । सही नाम रखा है तुमने ।

नारदजी की इस बात को सुन कर विद्याधर कालसवर गद्गद् हो गया । नारदजी ने शिशु को आशीर्वाद दिया और वहाँ से चल पड़े ।

द्वारका आकर नारद ने कृष्ण-रुक्मिणी को पूरा वृत्तान्त कह सुनाया ।

रुक्मिणी ने लक्ष्मीवती आदि अपने पूर्वभव सुनकर मयूर के शिशु को उसकी माता से विछोह कराने पर बहुत पञ्चात्ताप किया । मुनि-जुगुप्सा के कर्म की निन्दा की और भक्तिभावपूर्वक वही से सीमन्धर स्वामी को भाव-नमन किया ।

श्रीकृष्ण भी सीमन्धर स्वामी को मन ही मन नमन करने लगे ।

अर्हन्त प्रभु के वचनानुसार 'सोलह वर्ष बाद पुत्र से मिलाप होगा' यह विश्वास कर रुक्मिणी ने धैर्य धारण कर लिया ।

—त्रिषष्टि० ८।६

—उत्तर पुराण ७१।३१६—३४१

विशेष—उत्तरपुराण में कथानक तो लगभग यही है किन्तु दूसरे रूप से प्रस्तुत किया गया है । संक्षेप में कथानक इस प्रकार है—

भगवान् अरिष्टनेमि के समवजरण में गणधर व-दत्त में रुक्मिणी ने अपने पूर्वभव पूछे तो उन्होंने बताया—

भरतक्षेत्र के मगधदेश में लक्ष्मी नाम का गाँव था। वहाँ मोम नाम का ब्राह्मण रहता था। उसकी स्त्री का नाम लक्ष्मीमती था। वह आभूषण पहनकर दर्पण में अपना रूप निरख कर विभोर हो रही थी। इतने में ममाधिगुप्त मुनि मिश्रा के लिए आए। वह उनसे घृणा करके निन्दा-वचन कहने लगी। फलस्वरूप मातृदिन बाद ही उसे कुष्ठ रोग हो गया। पति के प्रति प्रेम रखकर मरी तो उसी घर में छछूंदर हुई। पूर्वभव के पति-प्रेम के कारण बार-बार मोम ब्राह्मण के पास जाती। ब्राह्मण ने क्रोध करके उसे बड़े जोर से पटका जिसमें मर कर सर्पिणी हुई फिर गधा हुई। गधा बार-बार उसी ब्राह्मण के पास जाता तो एक दिन उसने पत्थर मार कर उस गधे की टाँग ही तोड़ दी। उसके घाव में कीड़े पड़ गए और वह कूए में गिर कर मर गया। मर कर उसी गाँव के बाहर अर्धा मृतर हुआ। गाँव के कुत्ते ने उसे काट खाया। जिससे मर कर वह मन्दिर नाम के गाँव में मत्स्य नाम के धीवर की स्त्री मडूकी ने प्रतका नाम की कन्या हुई। उत्पन्न होते ही उसके माँ-बाप मर गए। एक दिन वह नदी किनारे बैठी थी कि उन्हीं ममाधिगुप्त मुनि के दर्शन हो गए। धर्मोपदेश सुनकर वह पर्वों में उपवास करने लगी। दूसरे दिन किमी अजिका के साथ हो ली। आयु के अन्त में ममाधिपूर्वक मरण करके अच्युत स्वर्ग के इन्द्र की प्रियवल्लभा हुई। वहाँ से च्यवर कुडिनपुर के राजा वामव की रानी श्रीमती से अब रुक्मिणी नाम की पुत्री हुई है।

[नोट—यहाँ मयूरी के अंडे और बच्चे के हरण की घटना का कोई उल्लेख नहीं है।

कापिल्यपुर नरेश राजा द्रुपद की पुत्री राजकुमारी द्रौपदी ने भरी स्वयंवर सभा में वरमाला पाँचों पाँडवों^१ के गले में अति आसक्त होकर डाल दी ।

१ पाँचों पाँडवों का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है —

आदि जिनेश्वर भगवान् ऋषभदेव के एक पुत्र का नाम कुरु था । उसके नाम पर ही भारतवर्ष के एक प्रदेश का नाम कुरुजागल पड़ा । कुरु का पुत्र हस्ती हुआ । उसके नाम पर हस्तिनापुर नगर बसाया गया । हस्ती की वंश परंपरा में अनन्तवीर्य राजा हुआ और उसका पुत्र कृतवीर्य । कृतवीर्य का पुत्र हुआ सुभूम चक्रवर्ती । सुभूम की ही वंश परंपरा में अनेक राजाओं के पश्चात् शातनु नाम का राजा हुआ ।

शातनु की दो स्त्रियाँ थी—गंगा और सत्यवती । गंगा का पुत्र हुआ भीष्म जो भीष्म पितामह के नाम से विख्यात हुआ और सत्यवती के दो पुत्र हुए—चित्रांगद और चित्रवीर्य ।

भीष्म तो आजीवन ब्रह्मचारी रहे और चित्रवीर्य का विवाह अविका, अवालिका और अवा तीन राजकुमारियों में हुआ । अविका से धृतराष्ट्र, अवालिका से पांडु और अम्बा से विदुर ये तीन पुत्र हुए ।

धृतराष्ट्र का विवाह हुआ गांधार नरेश सुचल की गांधारी आदि आठ कन्याओं से । शकुनि इन गांधारी आदि बहनों का भाई था । धृतराष्ट्र के दुर्योधन आदि सौ पुत्र हुए ।

पांडु का विवाह कुन्ती और माद्री दो राजकन्याओं से हुआ । कुन्ती से उनके तीन पुत्र थे—युधिष्ठिर, भीम और अर्जुन तथा माद्री

इस अद्भुत और अकर्मणीय कार्य को देखकर उपस्थित राजा एवं वासुदेव कृष्ण, बलराम, दशो दशार्ह आदि सभी चकित रह गए । उनके मुख से भाँति-भाँति शब्द निकलने लगे—

—यह क्या ?

—घोर अकृत्य ।

—अन्यायपूर्ण आचरण ।

—एक स्त्री के पाँच पति ।

—न कभी मुना न देखा ।

एक राजा ने कुछ सयत स्वर में कहा—

—सभवतः राज-पुत्री पर किसी कुदेव की छाया पड़ गई है ।

महाराज द्रुपद अपनी पुत्री के इस अनोखे कृत्य पर बड़े दुःखी हुए । वे तो हतप्रभ ही रह गए । कुछ बोल ही न सके । पुत्री ने एक ऐसा प्रश्नचिह्न उपस्थित कर दिया था जिसका समाधान आवश्यक था । किन्तु समाधान कौन करे ? वरमाला कण्ठ में पड़ते ही पाँचों पांडव उमके पति हो गए—यही लौकिक रीति थी, किन्तु लौकिक परम्परा में एक स्त्री के अनेक पति नहीं हो सकते, यह अति निन्द्य था । हाँ, एक पति की अनेक पत्नियाँ समाज द्वारा मान्य थी ।

राजा लोग समाधान के लिए वासुदेव कृष्ण की ओर देखने लगे—क्योंकि वही उस समय विवेकी और नीतिवान राजा थे । कृष्ण दशो दशार्ह की ओर देखते । नजरें मिलती और फिर हट जाती । किसी को

(यह श्रुत्य राजा की वहन थी) से नकुल और सहदेव दो पुत्र । ये पाँचों पांडु राजा के पुत्र होने के कारण पांडव कहलाते थे ।

चित्रवीर्य की मृत्यु के पश्चात् हस्तिनापुर का सिंहासन पांडु को मिला किन्तु वह मृगया प्रेमी थे । अतः राज्य का संचालन धृतराष्ट्र के हाथों में सौंपकर वे निश्चित हो गये । फिर भी शासक तो पांडु ही थे ।

— पाँचों पांडव न्याय नीतिपूर्ण आचरण करने वाले थे ।

कुछ सूझ ही नहीं रहा था। लोग आकाश की ओर देखने लगे। शायद कोई दैवी चमत्कार हो और इस समस्या का समाधान मिले।

सभी चकित थे किन्तु द्रौपदी सहज खड़ी थी—मानो कुछ हुआ ही न हो। जैसे उसने कोई अकार्य किया ही न हो।

तभी एक चारण ऋद्धिधारी श्रमण आकाश से उतरे। सभी ने उठकर वन्दन किया। कृष्णादिक राजाओं ने वित्तपूर्वक पूछा—

—प्रभो ! क्या इस द्रौपदी के पाँच पति होंगे ? क्या यह पंचभर्तारी कहलाएगी ?

—इसमें आश्चर्य की क्या बात है ?—मुनिश्री ने सहज स्वर में उत्तर दिया।

—यह तो लोक-रीति के विपरीत है ?

—किन्तु कर्मफल लोक-रीति से बँधकर ही नहीं चलता ? द्रौपदी ने पूर्वभव में जैसा निदान किया था वैसा ही तो फल प्राप्त होगा।

—भगवन् ! द्रौपदी के पूर्वभव मुनाइये। इमने ऐसा विचित्र निदान क्यों किया ?

सभी की जिज्ञासा जान कर मुनिराज द्रौपदी के पूर्वभव बताने लगे—

चम्पानगरी में सोमदेव, सोमभूति और सोमदत्त नाम के तीन ब्राह्मण रहते थे। वे तीनों महोदर भाई थे। तीनों में बहुत स्नेह था। सोमदेव की स्त्री का नाम नागश्री था। सोमभूति की स्त्री भूतश्री और सोमदत्त की यक्षश्री थी। सभी भाइयों ने निश्चय किया कि तीनों बारी-बारी से एक दूसरे के घर भोजन किया करेंगे।

इस क्रम के अनुसार एक दिन तीनों भाई सोमदेव के घर भोजन करने गए। नागश्री ने अनेक प्रकार के सरस व्यंजन बनाए। कई प्रकार के शाक बना कर उसके हृदय में भावना हुई कि इन्हे चख कर तो देखूँ कहीं स्वाद में कोई कमी न रह गई हो। चखते-चखते ज्योंही तुम्बी के शाक की एक बूँद जीभ पर रखी तो थूक दिया—जहर के समान कड़वी थी वह। सोचा—यह क्या हो गया ? ऐसा कड़वा शाक

कैसे परोसा जा सकता है ? अतः वह तो ढक कर एक ओर रख दिया और पति एवं देवरो को दूसरे गाँव में भोजन करा दिया ।

नागश्री यह सोच ही रही थी कि इस गाँव का क्या किया जाये कि मानसखमण के पारणे हेतु धर्मरुचि अनगार आते दिखाई दिये । उसने वह सारा गाँव उन्हें बहारा दिया । मुनिश्री जब गाँव नेकर आचार्य धर्मघोष के पास पहुँचे तो उन्होंने उठती हुई गन्ध से ही समझ लिया कि यह गाँव नहीं जहर है । उन्होंने कहा—भद्र ! इसे निर्दोष स्थान पर परठ दो । यह अखाद्य है । जो भी खाएगा उसका प्राणान्त ही समझो । धर्मरुचि ने प्रयाम करके निर्दोष स्थान ढूँढा । परठने को उद्यत हुए तो पहले एक वृंद जमीन पर डाल कर देखी । शाक की तीव्र मुगन्धि से आकर्षित होकर अनेक चींटियाँ आदि आईं और चखते ही काल के मुँह में समा गयीं । मुनिश्री को अनुकम्पा हो आई । उन्होंने सोचा—जब एक वृंद का ही यह परिणाम तो सम्पूर्ण गाँव का कैसा भयकर दुष्परिणाम होगा ? यह सोचकर उन्होंने स्वयं ही शाक खा लिया और समाधिपूर्वक देह त्याग दी । वे सर्वार्थसिद्ध विमान में अर्हमिद्र हुए ।

धर्मरुचि को जब काफी देर हो गई तो आचार्य धर्मघोष को चिन्ता हुई । उन्होंने दो साधुओं को उनकी खोज में भेजा । उन्होंने लौटकर बताया कि उन्होंने तो देहत्याग दी है । यह समाचार और मुनिश्री की मृत्यु का कारण लोगों को पता लगा तो सबने नागश्री को विस्कारा । मोमदेव ने भी उसके अक्षम्य अपराध के कारण उसे घर से निकाल दिया ।

नागश्री दुःखी होकर भटकने लगी । उसके शरीर में कास, श्वास, कुष्ठ आदि अनेक महारोग हो गए । वह नारकीय वेदना भोगने लगी । मरकर छोटे नरक में गई । वहाँ से निकल कर चाडालिनी बनी । पुनः मरी और नातवे नरक में पड़ी । वहाँ से निकली तो मनेच्छ बनी, फिर नरक में उत्पन्न हुई । इस प्रकार नागश्री ने प्रत्येक नरक की वेदना दो-दो बार भोगी । फिर पृथ्वीकाय आदि जीवों में कई बार उत्पन्न

हुई। तब चम्पानगरी में सागरदत्त सेठ की स्त्री सुभद्रा के गर्भ से सुकुमारिका नाम की पुत्री हुई।

उसी नगर में जिनदत्त नाम का एक धनी सार्थवाह था। वह एक बार सेठ सागरदत्त के घर आया तो उसने सुकुमारिका को अपने पुत्र सागर के योग्य समझा। उसने उसकी भागणी की तो सागरदत्त ने कह दिया—‘पुत्री मुझे प्राणों से प्यारी है, यदि तुम्हारा पुत्र घरजँवाई बनने को तैयार हो तो विवाह हो सकता है।’ जिनदत्त ने जब यह बात अपने पुत्र सागर से पूछी तो वह चुप रह गया। उसके मौन को को सम्मति समझ कर जिनदत्त ने उसका विवाह सुकुमारिका से कर दिया। रात्रि को ज्यो ही सुकुमारिका ने उसका स्पर्श किया तो सागर का शरीर अगाध की भाँति जलने लगा। कुछ समय बाद जब सुकुमारिका सो गई तो वह चुपचाप उठा और अपने घर आ गया।

प्रातः जब सागर न मिला तो सेठ सागरदत्त उलाहना देने जिनदत्त के घर गया। उस समय जिनदत्त अपने पुत्र से कह रहा था ‘तुमने वहाँ से आकर अच्छा नहीं किया। मैंने समाज के भद्रपुरुषों के समक्ष वचन दिया है कि तुम सागरदत्त सेठ के घरजँवाई हो और उसी के यहाँ रहोगे। इसलिए तुम तुरन्त वहाँ चने जाओ।’

सागर ने विनम्रतापूर्वक उत्तर दिया—‘मैं अग्नि में कूद सकता हूँ किन्तु सुकुमारिका के साथ नहीं रह सकता।’

पिता-पुत्र की यह बातें सागरदत्त भी बाहर से कान लगाए सुन रहा था। उसे विश्वास हो गया कि सागर को उसकी पुत्री से घोर अरुचि है। अतः बिना कुछ कहे ही उल्टे पाँव लौट आया और सुकुमारिका से बोला—

—पुत्री! सागर तो अब तुम्हारे साथ रहेगा नहीं। मैं तुम्हारा दूसरा विवाह कर दूँगा। तुम खेद मत करो।

दूसरा विवाह किया सागरदत्त ने अपनी पुत्री का एक दीन-हीन पुरुष के साथ। किन्तु उसके साथ भी वैसा ही हुआ और वह रात को ही भाग गया।

अब सागरदत्त ने कहा—मैं क्या करूँ ? तुम्हारे पाप का उदय है । अब तो तुम धैर्य ही रखो और विवाह की आशा त्याग दो ।

सुकुमारिका ने भी पिता का कथन स्वीकार कर लिया । धर्म में तत्पर रहने लगी । एक बार गोपालिका नाम की साध्वी उसके घर आई तो उसने सयम ग्रहण कर लिया और गुरुणी के साथ छद्म-तप करने लगी । एक बार उसने गुरुणी से पूछा—यदि आपकी आज्ञा हो तो मैं सुभूमिभाग उद्यान में सूर्य आतापना^१ लूँ । गुरुणी ने कहा—उपाश्रय में बाहर सूर्य आतापना लेना साध्वी को नहीं कल्पता, ऐसा आगम का वचन है । किन्तु वह न मानी और सुभूमिभाग उद्यान में आतापना लेने लगी ।

उद्यान में उसका ध्यान हास्य और विनोद की आवाजों से भग हो गया । सूर्यविम्ब पर से दृष्टि आवाज की ओर घूम गई । देखा—देवदत्ता नाम की वेश्या अपने प्रेमियों के साथ बैठी विनोद कर रही है । एक ने उसे अक में ले रखा है, दूसरा उसके सिर पर छत्र रख रहा है, तीसरा अपने वस्त्रों से पगवा झल रहा है, चौथा उसका केश शृङ्गार कर रहा है और पाँचवाँ उसके चरण पकड़े बैठा है । सुकुमारिका की मोई वासना जाग उठी । उसे वेश्या के भाग्य से ईर्ष्या हुई । वासना के तीव्र आवेग में उसने निदान किया—‘इस तपस्या के फलस्वरूप मैं इस वेश्या के समान ही पाँच पति वाली बनूँ ।’

इसके पश्चात् उसकी प्रवृत्ति ही बदल गई । वह अपने शरीर-शृंगार की ओर ध्यान देने लगी । गुरुणीजी ने वर्जना दी फिर भी वह न मानी और उपाश्रय से अलग रहने लगी । कालधर्म पाकर सौधर्म स्वर्ग में देवी बनी और वहाँ से च्यव कर द्रौपदी हुई है ।

मुनिश्री ने द्रौपदी के पूर्वभव बताकर कहा—

—कर्म का फल तो भोगना ही पड़ता है । द्रौपदी कृतनिदान है ।

१ सूर्य आतापना में कायोत्सर्गपूर्वक सूर्यविम्ब को अपलक दृष्टि से देखा जाता है । यह तप का एक प्रकार है ।

विद्याधर कालसवर और उसकी रानी कनकमाला के प्यार-दुलार में पलता हुआ प्रद्युम्न युवा हो गया। उसकी आयु सोलह वर्ष की हो गई। अग-सौष्ठव बढ़ गया। उसको प्यार से बुलाकर कनकमाला ने अपने पाश्वर्क में बिठाया। सहजभाव से प्रद्युम्न बैठ गया। कनकमाला उसके शरीर पर हाथ फेरने लगी किन्तु आज का स्पर्श और प्यार माँ का वात्सल्य न होकर कामिनी का कामोत्तेजक उन्माद था। प्रद्युम्न माता के हाव-भाव और विचित्र चेष्टाओं को ध्यानपूर्वक देखने लगा।

—प्रद्युम्न अब तुम युवा हो गए हो। मेरे साथ भोग करो।—
कनकमाला ने काम याचना की।

मुनते ही प्रद्युम्न चकित रह गया। उसने कहा—

—ऐसा पाप! घोर अनर्थ! आप मेरी माता हैं, फिर भी यह भावना? लज्जा आनी चाहिए।

—मैं तुम्हारी माँ नहीं हूँ। तुम न जाने किसके पुत्र हो। अग्नि-ज्वालपुर से आते समय तुम मार्ग में मिल गए थे। मैंने तो पालन हो किया है।

—पालन करने वाली भी माँ ही होती है।

—और उसका पहला अधिकार भी होता है। देखो, माली वृक्ष का पालन करता है और फल आने पर वही उनका उपभोग भी।—
कनकमाला ने तर्क दिया।

—वृक्ष और पुत्र दोनों की समानता नहीं हो सकती। तुम्हारी यह डच्छा सर्वथा अनुचित है।

—उचित-अनुचित मैं नहीं जानती। मेरा तुम पर अधिकार है और मैं तुम्हारे साथ भोग करूँगी। तुम इसको अस्वीकार नहीं कर सकते। —कनकमाला ने हठपूर्वक कहा।

—तो मैं तुम्हारी शिकायत पिता कालसवर से कर दूँगा।

व्यगपूर्वक हँस पड़ी कनकमाला। बोली—

—प्रद्युम्न तुम मेरी शक्ति को नहीं जानते। कालसवर मेरा कुछ नहीं विगाड़ सकता।

—क्यों?—चकित होकर प्रद्युम्न ने पूछा।

मुनो—कनकमाला कहने लगी—मैं उत्तर श्रेणो के नलपुर नगर के राजा निषध की पुत्री हूँ। मेरा भाई नैपथि है। पिता ने मुझे गौरी नामक विद्या दी है और कालसवर ने प्रज्ञप्ति नाम की विद्या। इन दोनों विद्याओं के कारण मैं अजेय हूँ।

प्रद्युम्न हतप्रभ होकर उसकी ओर ताकने लगा। कनकमाला ही पुन बोली—

—इसी कारण कहती हूँ कि मेरी इच्छा पूरी करते रहोगे तो सुखी रहोगे अन्यथा ।

कनकमाला ने बात अधूरी छोड़ दी किन्तु उसके स्वर में स्पष्ट धमकी थी। प्रद्युम्न पशोपेश में पड़ गया। यदि कनकमाला की बात स्वीकार करता है तो घोर पाप होता है और नहीं मानता तो असहनीय कष्ट और लोकापवाद। कामान्ध स्त्रियों का क्या भरोसा? न जाने कैसा कपट-जाल रचदे। सोच-विचार कर उसने नीति से काम लिया। नम्र स्वर में बोला—

—आपकी इच्छा स्वीकार करने पर कालसवर और उसके पुत्र रुष्ट होकर मुझे मार डालेंगे।

—नहीं, मेरी विद्याएँ तुम्हारी रक्षा करेगी।

—आप आठों पहर तो मेरे साथ रहेगी नहीं। न जाने किस समय घात करदे।

अतः यह प्रचलित लोक-परम्परा के विपरीत पाँच पति वाली ही होगी ।

सभी ने मुनि का कथन स्वीकार किया किन्तु फिर भी एक शका रह ही गई—

—भगवन् ! इस प्रकार तो स्वयं द्रौपदी और पाँचों पांडवों का लोकापवाद होगा ?

—हाँ कुछ अशो मे तो होगा किन्तु फिर भी पूर्वकृत तपस्या के कारण द्रौपदी की गणना सतियों मे ही होगी ।

—पच-भर्तारी और सती ? —एक ओर से प्रश्न हुआ ।

—हाँ ऐसा ही । कर्म की लीला बहुत विचित्र है । मुनिश्री ने कहा और आकाश मे उड़ गए ।

सभी ने उनका वदन किया और जब तक वे दिखाई दिये उनकी ओर देखते रहे ।

द्रौपदी का विवाह पाँचों पांडवों^१ से हो गया ।

१ (क) पांडव चरित्र मे देवप्रभ सूरि ने द्रौपदी स्वयंवर मे राधावेध का उल्लेख किया है । अर्जुन ने राधावेध किया । द्रौपदी के हृदय मे पाँचों पांडवों के प्रति अनुराग उत्पन्न हुआ । उसने अर्जुन के गले मे वरमाला डाली, वह पाँचों पांडवों के गले दिखाई पडने लगी । सभी विचार मे पड गए सभी चारण श्रमण ने आकर बताया कि द्रौपदी निदानकृत है । उन्होंने द्रौपदी के पूर्वभव का भी वर्णन किया । (सर्ग ४)

(ख) इसी प्रकार वैदिक परम्परा के मान्य ग्रंथ महाभारत मे भी राधावेध का उल्लेख है—

जब लाक्षागृह से निकल कर पाँचों पांडव और कुन्ती ब्राह्मण वेश मे द्रुपद राजा की नगरी मे पहुँचे तो अर्जुन राधावेध मे द्रौपदी को जीत लाया । बाहर मे ही माँ को आवाज देकर कहा—माँ ! मैं एक अद्भुत वस्तु लाया हूँ । कुन्ती, ने बिना देखे ही कह दिया—पाँचों माई

द्रुपद राजा ने सभी को विदा कर दिया । पांडव भी द्रौपदी सहित हस्तिनापुर आ गए ।

कुछ समय पश्चात् धृतराष्ट्र के पुत्रों को राज्य का लोभ जागा । दुर्योधन ने सभी वृद्धजनों को चाटुकारितापूर्ण विनय से प्रसन्न कर लिया । उसने छलपूर्वक पांडवों से द्यूत क्रीडा^१ में सम्पूर्ण राज्य जीत लिया । युधिष्ठिर ने लोभ के वश द्रौपदी को भी दांव पर लगा दिया और उसे भी हार गए । भीम के कोप से भयभीत होकर द्रौपदी तो वापिस कर दी लेकिन राज्य पर दुर्योधन ने अपना अधिकार जमा लिया । पांडवों को अपमानित करके निकाल दिया ।

वनवास की अवधि के बाद पांडव द्वारका पहुँचे । वहाँ समुद्रविजय आदि सभी ने उसका स्वागत किया । दगाहों ने लक्ष्मीवती, वेगवती, सुभद्रा, विजया और रति नाम की अपनी पुत्रियों का विवाह अनुक्रम से युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव के साथ कर दिया । कुन्ती सहित पाँचों पांडव सुखपूर्वक द्वारका में रहने लगे ।

—त्रिपष्टि० ८।६

वाँट लो । और द्रौपदी पाँचों भाइयों की पत्नी बन गई । इसके आगे इतना उल्लेख और है कि जब द्रुपद राजा इसके लिए तैयार न हुए तो वेदव्यास ने आकर कहा—द्रौपदी की उत्पत्ति प्रग्नि से हुई है । अतः यह पाँच पतियों की पत्नी होते हुए भी सती रहेगी । तब द्रौपदी का विवाह पाँचों पांडवों में हो गया ।

(ग) उत्तर-पुराण के अनुसार—स्वयंवर में द्रौपदी ने अर्जुन के गले में वरमाला डाली (७२।२११) ।

- १ वैदिक परम्परा के मान्य ग्रन्थों में द्यूत क्रीडा का विस्तारपूर्वक उल्लेख है । वहाँ द्रौपदी का चीरहरण, श्रीकृष्ण द्वारा चीर को बढाया जाना, धृतराष्ट्र तथा अन्य गुरुजनों के समझाने पर १२ वर्ष का वनवास और एक वर्ष के अज्ञातवास की शर्त पर द्रौपदी को मुक्त करना आदि विविध प्रसंगों का वर्णन है । इस वनोवास में पाँचों पांडव और द्रौपदी गए थे ।

—यदि तुम मुझे वचन दो तो मैं तुम्हें दोनों विद्याएँ दे दूँ । तुम अजेय हो जाओगे ।

—हाँ, यह ठीक है ।

कामाध कनकमाला ने विना कुछ सोचे-विचारे प्रद्युम्न को दोनों विद्याएँ दे दी । उसने भी उन्हें शीघ्र ही सिद्ध कर किया । विद्यासिद्धि के पश्चात् कनकमाला ने उसे वचन की याद दिलाई और पुनः काम-याचना की तो प्रद्युम्न ने कह दिया, 'अब तो आपकी इच्छा पूरी होना विलकुल ही असंभव है । आप मेरी गुरु हैं और गुरु के साथ ऐसा व्यवहार होना सर्वथा अनुचित है ।' किन्तु कनकमाला ने उसकी बात की ओर ध्यान नहीं दिया । वह बार-बार आग्रह करने लगी । जब प्रद्युम्न ने देखा कि यह काम की गंध में अधी हो गई है तो वह उसे फटकार कर महल से निकल गया और कालावुका नाम की वापिका के किनारे जा पहुँचा । वहाँ वह अपने भावी जीवन पर विचार करने लगा ।

अपना मनोरथ विफल होने पर कनकमाला नागिन की तरह बल खाने लगी । उसने त्रियाचरित्र प्रारम्भ किया । अपने हाथों से ही अपने वस्त्र फाड़ डाले, शरीर पर नाखूनों से खरोंचे लगा ली और पुकार करने लगी । तुरन्त ही पुत्र दौड़े आये । उसने रो-रोकर कहा— 'प्रद्युम्न ने बलात्कार की इच्छा से मेरी यह दशा कर दी है ।'

पुत्रों को प्रद्युम्न पर बड़ा क्रोध आया । वे उसे मारने के लिए दौड़ पड़े । किन्तु गौरी और प्रज्ञप्ति महाविद्याओं के कारण वह अजेय था । उसने सभी को मौत की नींद में सुला दिया । कालसवर भी पत्नी की बेइज्जती और पुत्रों की मृत्यु से लाल अगारा हो गया । प्रद्युम्न को मारने पहुँचा तो विद्या-बल से प्रद्युम्न ने उसे पराजित कर दिया । कालसवर उसके विद्याबल को देखकर हतप्रभ रह गया । चकित होकर उसने पूछा—

—प्रद्युम्न ! तुम्हें इन महाविद्याओं की प्राप्ति कैसे हुई ?

तब प्रद्युम्न ने संपूर्ण वृत्तान्त सुनाकर कहा—

—अपना कुटिल मनोरथ पूर्ण करने के लिए माता ने मुझे ये

विद्याएँ दी थी और मैं उनकी इच्छा पूर्ण किए बिना ही यहाँ चला आया ।

कालसवर को बहुत दुःख हुआ । उसने प्रद्युम्न की प्रशंसा की और घर वापिस चलने का आग्रह । तभी नारदमुनि आकाश-मार्ग से घूमते-घामते वहाँ आ पहुँचे और प्रद्युम्न को उसके वास्तविक माता-पिता का परिचय देकर कहा—

—प्रद्युम्न ! अब तुरन्त ही द्वारका चलने की तैयारी करो ।

कालसवर ने पूछा—

—तुरन्त ही क्यों मुनिवर !

नारद ने बताया—

—इसकी माता रुक्मिणी और विमाता सत्यभामा में यह शर्त तय हुई थी कि जिसके पुत्र का विवाह पहले होगा दूसरी अपने केश काट कर उसको देगी । सत्यभामा के पुत्र भानुक का विवाह शीघ्र ही होने वाला है । अतः केशदान के अपमान और पुत्रवियोग के कारण रुक्मिणी का प्राणान्त निश्चित है ।

माता का अपमान हो जाय और प्रद्युम्न जैसा पुत्र देखता रह जाय—यह कैसे संभव था । उसने तुरन्त कालसवर से उसके चरण छूकर विदा ली और विद्यावल से रथ का निर्माण कर नारद के साथ द्वारका आ पहुँचा । द्वारका के समीप आते ही नारद ने कहा—

—वत्स ! यह तुम्हारे पिता श्रीकृष्ण की नगरी है । इसका निर्माण सुस्थित देव ने किया है और कुवेर ने धन एवं रत्नों से इसे परिपूर्ण कर दिया है ।

प्रद्युम्न को विनोद मूझा । उसने कहा—

—मुनिवर ! आप कुछ समय तक विमान में ही विश्राम कीजिए तब तक मैं नगर में कुछ कौतुक कर आऊँ ।

नारद तो कौतुक प्रेमी थे ही, तुरन्त हँसकर स्वीकृति दे दी ।

प्रद्युम्न चला तो सीधा वहीं पहुँचा जहाँ भानुक के साथ परणी

जाने वाली कन्या बैठी थी। उसका हरण किया और नारदजी के पास ला विठाया। राज-पुत्री घबड़ाने लगी तो नारद ने धैर्य बँधाया—

—निश्चित रहो, वत्से ! यह कृष्ण का ही पुत्र है और मेरे पास तुम्हें किसी प्रकार का भय नहीं है।

कन्या को नारद के पास छोड़कर प्रद्युम्न ने अपने साथ एक माया-रचित वानर लिया और उद्यानपालको के पास जाकर कहा—

—यह वानर बहुत भूखा है; कुछ फल वगैरह दे दो।

—इस उद्यान के फल भानुककुमार के विवाह के लिए सुरक्षित है, इसलिए कुछ मत माँगो। —उद्यानपालको ने उत्तर दिया।

—एक छोटा सा वानर है। खायेगा ही कितना ? मुँह माँगा धन ले लो और इसे अपनी भूख बुझा लेने दो।

यह कहकर प्रद्युम्न ने उद्यानपालको को धन देकर प्रसन्न कर लिया। उन्होंने वानर को अन्दर चला जाने दिया। मायावी वानर ने उद्यान को फलरहित ही कर डाला।

अब प्रद्युम्न के पास एक अश्व था। घास और दाना बेचने वाले दूकानदार से जाकर कहा—

—मेरे अश्व के लिए दाना-घास दे दो।

उसने भी भानुककुमार के विवाह के लिए 'दाना-घास सुरक्षित है, तुम्हें नहीं मिल सकता' कहकर उसे लौटाना चाहा तो वहाँ भी प्रद्युम्न ने धन देकर अपना काम बनाया। एक के बाद एक सभी दूकानों पर दाना-घास खतम हो गया। मायावी अश्व ने दाने-घास से तनिक भी दोस्ती न निभाई। सब सफाचट कर गया।

अब प्रद्युम्न ने सभी जलाशयों, कुओं, बावड़ियों को विद्यावल से जलरहित कर दिया।

नगर में इस प्रकार का कौतुक करके वह राजमहल की ओर चला। साथ में अश्व था। उसे क्रीड़ा कराने लगा। सुन्दर अश्व पर कुमार भानुक की दृष्टि पड़ी तो ललचा गया। उसने पूछा—

—कितने में बेचोगे ? जो मूल्य माँगोगे, वही दूंगा।

—मूल्य की बात पीछे हो जायगी, पहले परीक्षा करलो।—
प्रद्युम्न ने सलाह की बात बताई।

भानुक प्रस्तुत हो गया। अकड़कर जैसे ही अश्व पर बैठा तो तुरन्त ही भूमि पर दिखाई दिया। दर्शक हँस पड़े। भानुक ने कई बार प्रयाम किया किन्तु हर बार जमीन चाटी। दर्शक गण हँसते-हँसते लोट-पोट हुए जा रहे थे। भानुक लज्जित होकर अपने भवन में जा छिपा। साधारण अश्व होता तो वह सवारी कर भी लेता किन्तु वह तो मायावी था।

भानुक की हँसी उड़वाकर प्रद्युम्न मेढे पर सवार होकर कृष्ण की सभा में जा पहुँचा। उसकी विचित्र चेष्टाओं को देखकर सभी सभासद हँसते-हँसते लोट-पोट हो गए।

सभासदों को हँसता हुआ छोड़ा और ब्राह्मण का वेश धारण करके मधुर स्वर में वेद-पाठ करता हुआ प्रद्युम्न द्वारका की गलियों में घूमने लगा। वही उसे सत्यभामा की कुब्जा नाम की दासी दिखाई दी। कुब्जा नाम भी उसका इसीलिए था कि उसकी कमर धनुष के समान वक्र थी। प्रद्युम्न ने विद्या-वल से उसे सीधा कर दिया। अपने वदन रूप को देखकर कुब्जा की बाँछे खिल गईं। पैरों में गिर कर बोली—

—ब्रह्मण देवता ! किधर जा रहे हो ?

—जहाँ पेटभर भोजन मिल जाय।

—तो मेरे साथ चलो।

—क्या भरपेट भोजन मिलेगा ?

—अवश्य ! मैं महारानी सत्यभामा की दासी हूँ। उनके पुत्र का विवाह है। षट्स व्यजन वने हैं। वहाँ तुम्हें इच्छानुसार भोजन मिल जायेगा।

—चलो वही सही। ब्राह्मण को क्या ? भरपेट भोजन से काम।

दासी ब्राह्मण को साथ लेकर सत्यभामा के महल में आई। उसे द्वार पर खड़ा रहने को कह, स्वयं अन्दर गई। सत्यभामा ने उसे देखा तो पहिचान ही न पाई, पूछा—

—तुम कौन हो ?

—आप मुझे न पहिचान सकी । मैं वही हूँ आप की दासी-कुब्जा ।

—कुब्जा ? तू कुरूप थी ? ऐसी सुन्दर कैसे बन गई ? क्या चमत्कार हुआ ?

—एक ब्राह्मण की कृपा है ।

—कहाँ है वह ब्राह्मण ?

—बाहर खड़ा है ? उसे द्वार पर खड़ा कर आपके पास आई हूँ ।

—उस महात्मा को जल्दी अन्दर ला ।

सत्यभामा की आज्ञा पाकर दासी ब्राह्मण को अन्दर ले पहुँची । ब्राह्मण उसे आगिष देकर बैठ गया । सत्यभामा ने विनय की --

—ब्राह्मण देवता ! मुझे भी सुन्दर बना दो ।

—तुम तो वैसे ही बहुत सुन्दर हो ।

—नहीं, और भी अधिक । विश्व की अनुपम सुन्दरी बनना है मुझे । तुम मुझ पर कृपा करो ।—सत्यभामा ने आग्रह किया ।

—इसके लिए तुम्हें कुछ कष्ट उठाना पड़ेगा ।

—मैं सहर्ष प्रस्तुत हूँ ।

—तो सुनो—ब्राह्मण कपटपूर्वक कहने लगा—सुन्दर बनने के लिए पहले कुरूप होना आवश्यक है, जितनी अधिक कुरूपता उतनी ही ज्यादा सुन्दरता ।

—आप जल्दी बताइये । मैं सुरूप बनने के लिए सब कुछ करूँगी ।

—सिर के केश काटकर (सिर मुड़वाकर), सम्पूर्ण शरीर पर कालिख पोत कर, जीण-शीर्ण वस्त्र पहन कर आओ तब तुमको अनुपम सुन्दरता प्राप्त होगी ।

सत्यभामा ब्राह्मण का कपट न समझ सकी । उसके कथनानुसार रूप बनाकर आ बैठी । प्रद्युम्न को हँसी तो आई किन्तु बलपूर्वक रोककर उसने कहा—

—मेरे पेट में चूहे कूद रहे हैं । भूख से व्याकुल हूँ । तुम्हें मालूम

ही है—भूखे भजन न होहि गुपाला । भोजन की व्यवस्था करो । पेट भरते ही तुम्हें सुन्दर बना दूँगा ।

तुरन्त ही भोजन का आदेश हुआ । ब्राह्मण ने कहा—

—महारानीजी ! जब तक मैं भोजन करूँ आप कुलदेवी के सामने बैठकर एकाग्रचित्त से 'रुडुवुडु रुडुवुडु' मन्त्र का जाप करिए ।

सुन्दर बनने की लालसा में विवेकहीन बनी सत्यभामा वहाँ से उठी और कुलदेवी के समक्ष ब्राह्मण के बताए मन्त्र का दत्तचित्त होकर जाप करने लगी ।

भोजन करने बैठे ब्राह्मण देवता तो रसोई ही सफाचट कर गए । दासियाँ हैरान रह गई । पूरी वारात की भोजन सामग्री खतम करने पर भी पेट न भरा 'और लाओ, और लाओ' कहता रहा । दासियों ने हाथ जोड़ कर कहा—

—भोजनभट्ट ! अब तो कृपा करो । रसोई में कुछ नहीं बचा । कही और जाओ ।

—जाता हूँ, फिर मुझसे शिकायत न करना ।—और रुठ कर ब्राह्मण देवता चल दिए ।

अबकी वार प्रद्युम्न किशोर साधु के रूप में रुक्मिणी के महल में जा पहुँचा । दूर से ही साधु को देखकर रुक्मिणी हर्षित हुई और साधु के बैठने योग्य आसन लेने हेतु घर के अन्दर गई । तब तक वह साधु श्रीकृष्ण के सिंहासन पर जा जमा । रुक्मिणी आसन लेकर आई तो उसे वहाँ बैठा देखकर चकित रह गई । बोली—

—इस सिंहासन पर श्रीकृष्ण और उनके पुत्र के अलावा किसी अन्य को देव लोग नहीं बैठने देते । तुम उतर जाओ ।

—मेरे तपोतेज के कारण देव लोग मेरा कोई अहित नहीं कर सकते ।—साधु ने दृढतापूर्वक कहा ।

—इतनी छोटी आयु और ऐसा तपोतेज ।—रुक्मिणी के स्वर में आश्चर्य था ।

—हाँ मैंने सोलह वर्ष तक निराहार तप किया है। उसी के पारणे के निमित्त तुम्हारे महल में आया हूँ।

—सोलह वर्ष का निराहार तप। मैंने तो एक वर्ष से अधिक का निराहार तप सुना ही नहीं।—चकित थी रुक्मिणी।

—इससे तुम्हें क्या मतलब? कुछ देने की इच्छा हो तो दो। नहीं तो मैं चला सत्यभामा के महल में।—किशोर साधु ने उठने का उपक्रम किया।

क्षमा-सी माँगती हुई रुक्मिणी बोली—

—आज मेरा चित्त बहुत दुःखी है। मैंने कुछ बनाया ही नहीं।

—क्यों? किस कारण दुःखी हो तुम?

—पुत्र वियोग में। सोलह वर्ष पहले मेरा पुत्र विच्छुड गया था। उससे मिलने के लिए कुलदेवी को आराधना की। आज प्रातः निराग होकर गिरच्छेद करने लगी तो देवी ने बताया 'जब अकाल ही तुम्हारे आँगन में लगे आम्रवृक्ष पर फल आ जायें तभी पुत्र से तुम्हारा मिलन हो जायगा।' आम के वृक्ष पर फल भी आ गये किन्तु पुत्र नहीं आया। साधुजी! आप तो तपस्वी हैं, कुछ विचार करके बताइये।

—खाली हाथ पूछने से फल प्राप्ति नहीं होती।

—तो आप को क्या दूँ?

—कहा न, सोलह वर्ष से निराहार हूँ। पेट पीठ से लग गया है। खीर बना कर खिला दो।

रुक्मिणी ने खीर बनाने की तैयारी की तो उसे सामग्री ही न मिली। हार कर कृष्ण के लिए जो विशेष मोदक रखे थे उनकी खीर बनाने का उद्यत हुई किन्तु अग्नि ही प्रज्वलित न कर सकी। साधु बोला—

—तुम न जाने किस आरम्भ में पड़ गई। मेरे तो भूख के मारे प्राण निकले जा रहे हैं। इन मोदकों को ही खिला दो।

—यह तो सिवा श्रीकृष्ण के और कोई हजम ही नहीं कर सकता। मैं तुम्हें खिला कर ऋषि-हत्या का पाप नहीं कर सकती।

—तप के प्रभाव से मैं सब हजम कर जाऊँगा । लाओ मुझे दो तो सही ।

डरते-डरते रुक्मिणी ने एक मोदक दिया । साधु खा गया । एक के बाद दूसरा-तीसरा इस तरह रुक्मिणी देती गई और साधु खाता गया । विस्मित होकर रुक्मिणी ने कहा—

—साधु ! तुम तो बहुत शक्तिशाली लगते हो ।

खिलखिला कर हँस पड़ा प्रद्युम्न । उसने कुछ उत्तर नहीं दिया । बस बड़े प्रेम से मोदक खाता रहा ।

घर प्रद्युम्न आनन्द से माता के पास बैठ मोदक खा रहा था और उधर सत्यभामा 'रुद्रबुद्ध' मन्त्र का जाप कर रही थी । उद्यान-पालक ने आकर प्रणाम किया और कहा—

—स्वामिनी ! एक वानर ने उद्यान के सभी फल खा लिए, एक भी नहीं छोड़ा ।

तब तक दूसरे सेवक ने प्रवेश करके कहा—

—किसी भी दूकान पर घोड़ों के लिए न दाना है और न घास ।

—जलागयी का जल सूख गया । कही भी पीने योग्य पानी नहीं है । —तीसरे ने कहा ।

—कुमार भानुक अश्व की पीठ से गिर गए । —चौथे ने आकर बताया ।

चकरा गई सत्यभामा । मन्त्र जाप छोड़कर दासियों से पूछा—

—वह ब्राह्मण कहाँ है ?

दासियों ने बताया—

—वह भोजनभट्ट सारी रसोई चट कर गया तब हमने उसे भगा दिया ।

सत्यभामा निराश होकर पछताने लगी । पर अब क्या हो सकता था ? उसने अपनी दासियों को रुक्मिणी के केश लाने भेज दिया । दासियों ने रुक्मिणी के पास जाकर उसके केश माँगे तो प्रद्युम्न ने अपने विद्यावल से उनके ही केश काटकर उनके पात्रों में भर दिए

और साथ ही सत्यभामा के कटे केश भी दे दिए। दामियाँ जब अपनी स्वामिनी के पास पहुँची तो उनके मुँड़े निरो को देखकर उनसे पूछा—

—यह क्या ? तुम्हारे सिर कैसे मुँड गए ?

—जैसी स्वामिनी, वैसी दामियाँ। —दासियों ने उत्तर दिया।

अब सत्यभामा ने कुछ पुरुषों को भेजा तो उस माधु ने उन्हें गिखाविहीन करके लौटा दिया।

सत्यभामा क्रोध में भर गई। वह श्रीकृष्ण के पास पहुँची और कहने लगी—

—स्वामी ! आप हमारी गर्त के मध्यस्थ भी थे और जमानती भी। अब रुक्मिणी के केश मँगाइये।

श्रीकृष्ण ने जो सत्यभामा का यह रूप देखा तो रोकते-रोकते भी उनकी हँसी फूट पड़ी। उन्होंने कहा—

—तुम मुण्डित हो तो गई ?

—मेरी हँसी उड़ाना तो छोड़िये। अभी उसके केश मँगाइये।

श्रीकृष्ण ने देखा कि सत्यभामा की आँखें क्रोध से लाल हैं तो उन्होंने उसके साथ बड़े भाई बलभद्र को भेज दिया। दूर में ही देखकर प्रद्युम्न ने अपना रूप कृष्ण का सा बना लिया। बलभद्र तो छोटे भाई को देखकर सक्रोधवश बाहर ही खड़े रह गए। किन्तु सत्यभामा का कोप और भी बढ़ गया। वह पाँव पटकती बापिस कृष्ण के पास लौट आई। कुपित स्वर में बोली—

—आप तो मेरी हँसी उड़ाने पर ही उतर पड़े हैं। ड़धर मुझे केश लेने भेजा और उबर स्वयं ही वहाँ जाँ जमे। लौटकर आई तो उससे पहले यहाँ आ विराजे।

कृष्ण ने बलराम की ओर देखा तो उन्होंने भी सत्यभामा का ही कथन सत्य बताया। अब श्रीकृष्ण ने सौगन्ध खाकर कहा कि मैं वहाँ गया ही नहीं, तुम लोग विश्वास करो। किन्तु सत्यभामा को उनका विश्वास ही नहीं हुआ। 'सब तुम्हारा मायाजाल है' कहकर अपने

महल की ओर चली गई। श्रीकृष्ण भी रूठी रानी को मनाने पीछे-पीछे ही उसके महल में जा पहुँचे।

×

×

×

×

प्रद्युम्न तो द्वारका में कौतुक कर रहा था और उधर नारदजी रथ में बैठे-बैठे ऊब गए। ढाई घड़ी से ज्यादा एक जगह न टिकने वाले नारद निठल्ले बैठे भी कैसे रह सकते थे। राजकन्या से 'अभी आता हूँ' कहकर सीधे रुक्मिणी के महल में जा पहुँचे। रुक्मिणी ने मुनि का स्वागत करके पूछा—

—देवर्षि ! अब तो सोलह वर्ष बीत गए। मेरा पुत्र

—यह बैठा तो है। क्या इसने अभी तक नहीं बताया। —नारद जी ने उस साधु की ओर सकेत किया।

रहस्य खुल गया प्रद्युम्न का। वह अपने असली रूप में आ गया। माता के चरणों में गिर पड़ा। माँ ने अक से लगा लिया। सोलह वर्ष से माँ के प्यार की भूखी प्रद्युम्न की आत्मा तृप्त हो गई। उसने कहा—

—माँ ! तुम साथ दो तो पिताजी को चमत्कार दिखाऊँ।

—हाँ ! हाँ !! क्यों नहीं ? —आनदातिरेक में रुक्मिणी ने स्वीकृति दे दी।

प्रद्युम्न रुक्मिणी को साथ लेकर आकाश में उड़ा और घोष किया—

—द्वारकाधीश कृष्ण और सभी सुभट सुन ले। मैं महारानी रुक्मिणी का हरण करके ले जा रहा हूँ। माहंस हो तो मुझे रोके।

पुत्र की इस घोषणा से रुक्मिणी हतप्रभ रह गई। उसे स्वप्न में भी आशा न थी कि पुत्र ऐसा चमत्कार दिखाएगा। उसने कुछ कहना चाहा तो प्रद्युम्न ने रोक दिया। बोला—

—कुछ समय तक मौन रहकर जरा तमाशा देखो।

तब तक द्वारका में शोर मच गया। सुभट अस्त्र-शस्त्र लेकर

निकल आए। कृष्ण भी शस्त्र-सज्जित होकर बाहर निकले और उच्च स्वर में बोले—

—किस दुर्बुद्धि की गामत आई है ?

प्रद्युम्न ने उत्तर तो कुछ दिया नहीं। जोर से हँस पड़ा। कृष्ण की दृष्टि आकाश की ओर उठ गई। देखा—एक नवयुवक रुक्मिणी को रथ में बिठाए हँस रहा है। कृष्ण की आँखें लाल हो गईं। शस्त्र उठाकर प्रहार करने का प्रयास किया ही था कि हाथ से धनुष गायब। अन्य अस्त्र भी नदारद हो गए। हतप्रभ रह गए वासुदेव।

वलभद्र भी चकित थे। सम्पूर्ण सुभट किकर्तव्यविमूढ़। मानो किसी ने स्तम्भित कर दिया हो।

श्रीकृष्ण के चित्त में खेद व्याप्त हो गया। तभी आकाश से नारद उतरे और बोले—

—कृष्ण ! चकित मत हो। यह तो तुम्हारा ही पुत्र है, प्रद्युम्न। जो सोलह वर्ष पहले तुमसे विछुड़ गया था।

नारद के वचन सुनकर सभी सन्तुष्ट हुए। प्रद्युम्न ने भी अपनी विद्या समेटी और पिता के चरणों में आ गिरा। विह्वल होकर कृष्ण ने उसे कंठ से लगा लिया। उनके हर्ष का ठिकाना न था। वलभद्र आदि सभी आनन्दित हो गए। कृष्ण ने प्रद्युम्न को अपने अक में बिठा लिया। मानो वह सोलह वर्ष का युवक न होकर सोलह दिन का अवोध शिशु ही हो। वे बार-बार उसका मस्तक चूमने लगे।

प्रद्युम्न के आगमन से द्वारका में प्रसन्नता की लहर दौड़ गई। स्थान-स्थान पर उत्सव मनाए जाने लगे। रुक्मिणी के तो मानो प्राण ही लौट आए। उसके महल में दीवाली ही मनाई जाने लगी। स्वामिनी के साथ-साथ दासियों के मुख भी गुलाब की भाँति खिल रहे थे।

वासुदेव को सोलह वर्ष बाद पुत्र मिला तो भानुक के विवाह की बात मानो भूल ही गए। तब दुर्योधन ने आकर कहा—

—वासुदेव ! मेरी पुत्री और आपकी पुत्र-वधू को कोई हर ले गया ।

—मैं कोई सर्वज्ञ तो हूँ नहीं । मेरे ही पुत्र प्रद्युम्न को कोई हर ले गया तो मैं कुछ न कर सका ।

सभी के मुख पर निराशा छा गई । तब प्रद्युम्न बोला—

—यदि आप लोगो की आज्ञा हो तो प्रज्ञप्ति विद्या द्वारा मैं पता लगाऊँ ।

सभी ने स्वीकृति दे दी । प्रद्युम्न ने वह कन्या लाकर खडी कर दी । जब कृष्ण ने उसका विवाह प्रद्युम्न से करना चाहा तो उसने कह दिया—‘यह छोटे भाई भानुक की स्त्री है ।’ भानुक के साथ उसका विवाह हो गया ।

प्रद्युम्न की इच्छा न होते हुए भी कृष्ण ने उसका विवाह कितनी ही खेचर कन्याओ से कर दिया ।

—त्रिषष्टि० ८।६

—उत्तर-पुराण ७२/७२-१६६

—वसुदेव हिंडी, पीठिका

- ० उत्तरपुराण में प्रद्युम्न का चरित्र कुछ विस्तार से वर्णित है । युवा-वस्था प्राप्त होने पर प्रद्युम्न ने अपनी सेवा और पराक्रम से विद्याधर पिता को प्रसन्न किया । उसकी प्रमुख घटनाएँ निम्न हैं —

(१) किसी दिन अग्निराज नाम का कालसभव (कालसवर का यहाँ यही नाम लिखा है) का शत्रु सेना लेकर चढ आया । तब देवदत्त (प्रद्युम्न का उत्तरपुराण में यही नाम बताया गया है) ने उसे प्रताप रहित करके युद्ध में जीत लिया और पिता के चरणों में ला गिराया ।

(श्लोक ७२-७३)

(२) उसके यौवन से काम-विकल होकर कचनमाला (विद्याधर कालसवर की पत्नी और प्रद्युम्न की पालक माता) उसे प्रज्ञप्ति विद्या देती है । जिसे वह शीघ्र ही सिद्ध कर लेना है ।

(श्लोक ७५-८१)

(३) इच्छा पूरी न करने पर कचनमाला ने उसकी शिकायत अपने पति से कर दी और विद्याधर ने विद्युदृष्ट आदि अपने पाँच सौ पुत्रों को बुला कर उसे मार डालने की आज्ञा दी । (श्लोक ८४-८६)

(४) विद्युदृष्ट आदि कुमार उसे वन में ले गए और एक अग्नि कुण्ड दिखाकर बोले—‘जो डमरू कूद पड़ेगा वह सबसे निर्भय गिना जायेगा ।’ प्रद्युम्न उस कुण्ड में कूद गया । वहाँ रहने वाली देवी ने आदरपूर्वक उसे वस्त्र-आभूषण दिए । इस तरह वह वहाँ से निकला । (श्लोक १०२-१०४)

(५) दूसरी बार प्रद्युम्न को उन पाँच सौ कुमारों ने विजयाद्वार पर्वत के किसी विले में घुसा दिया । वहाँ भेडे का रूप रखकर उस पर दो पर्वत आये किन्तु प्रद्युम्न ने उन्हें अपनी भुजाओं के बल से रोक दिया । इस पर वहाँ का देवता प्रसन्न हुआ और उसे मकर की आकृति के दो कुण्डल दिए । (श्लोक १०५-१०७)

(६) तीसरी बार उसे वराह नामक विल में घुसा दिया । वहाँ उसने अपने पराक्रम के फलस्वरूप देव से विजयधोष नाम का शख और महाजाल विद्या—ये दो वस्तुएँ प्राप्त की । (श्लोक १०८-११०)

(७) काल नाम की गुफा में महाकाल नाम के राक्षस को पराजित कर वृषभ नाम का रथ और रत्नकवच दो वस्तुएँ प्राप्त की । (श्लोक १११)

(८) दो वृक्षों के बीच [में] कीलित विद्याधर को छुड़ा दिया । उसने सुरेन्द्रजाल, नरेन्द्रजाल और प्रस्तर नाम की तीन विद्याएँ दी । (श्लोक ११२-११५)

(९) सहस्रवक्त्र नाम के नागकुमार भवन में जाकर उसने शख वजाकर नाग-नागिनी को प्रसन्न किया और उनसे चित्रवर्ण नाम का धनुष, नदक नाम की तलवार और कामरूपिणी अँगूठी पाई । (श्लोक ११६-११७)

(१०) कैय वृक्ष के देवता ने उसे दो उड़न-खड़ाऊँ दिये ।

(श्लोक ११७)

(११) अर्जुन वृक्ष पर रहने वाले पाँच फण वाले नागपति देव से उसे (१) तपन (२) तापन (३) मोहन (४) विलापन (५) मारण—ये पाँच वाण प्राप्त हुए ।

(श्लोक ११८-११९)

(१२) कदम्बकमुखी वापिका के देव से नागपाश की प्राप्ति हुई ।

(श्लोक १२०)

यह सब देखकर विद्युद्दृष्ट आदि पाँच मौं भाई बड़े दुःखी हुए । तब उन्होंने पातालमुखी वापिका में कूदने के लिए प्रद्युम्न से आग्रह किया । प्रद्युम्न ने प्रज्ज्वालि विद्या को अपना रूप बनाकर कुदा दिया और स्वयं छिप कर देखने लगा । सभी पाँच सौ विद्याधर पुत्र उसे वावड़ी में कूदा जान कर पत्थर मारने लगे । क्रोध में आकर उसने उन सबको नागपाश में बाँध लिया और उलटा लटकाकर ऊपर से झिला ढक दी । सबसे छोटे कुमार ज्योतिप्रभ को नगर में समाचार देने भेज दिया ।

(श्लोक १२१-१२६)

तभी नारदजी ने आकर उसको उसका अमली परिचय दिया ।

(श्लोक १२८)

इसके पश्चात् विद्याधर युद्ध के लिए आता है और प्रद्युम्न उसे सब कुछ बता कर सभी विद्याधर पुत्रों को वधन मुक्त कर देता है । फिर वह उनसे आज्ञा लेकर नारद के साथ द्वारका की ओर चल देता है ।

पहले वह हस्तिनापुर में कौरवों के यहाँ कौतुक करता है, फिर पांडवों के यहाँ और तब द्वारिका पहुँचता है । (श्लोक १३५-१३८)

इनके पश्चात् उसके द्वारका में किए गए कौतुको का वर्णन है ।

भानुक के लिए द्वारका में लाई हुई कन्याओं के साथ प्रद्युम्न ने सबकी सम्मति से विवाह किया ।

(श्लोक १६६)



जैन कथामाला

भाग ३३

श्रीकृष्ण-कथा

यदुवन के फूल

प्रद्युम्न का पराक्रम देखकर सत्यभामा चकित रह गई। उसके हृदय में नारी सुलभ लालसा जाग उठी। रुक्मिणी के प्रति ईर्ष्या भी जाग्रत हुई। वह कोप-भवन में जा लेटी। ज्योही श्रीकृष्ण को मालूम हुआ, वे पहुँचे और पूछने लगे—

—प्रिये ! क्या किसी ने तुम्हारा अपमान किया है ?

—नहीं !

—तो फिर रुष्ट होने का कारण ?

—आप है, आप !

—क्यों ? मैंने क्या किया ?

—आप ही ने तो किया है।

—कुछ बताओ भी तो ?

—रुक्मिणी को तो प्रद्युम्न जैसा पराक्रमी पुत्र और मुझे ?

—इसमें मेरा क्या दोष ? यह तो भाग्य की बात है।

—मैं कुछ नहीं जानती। आप कुछ भी करिये, मुझे प्रद्युम्न जैसा ही पराक्रमी पुत्र चाहिए।

पत्नी की हठ के सामने पति को झुकना पड़ा। आश्वासन दिया—

—मैं अपना भरपूर प्रयास करूँगा कि तुम वीर-पुत्र की माता बनो।

श्रीकृष्ण ने नैगमेषी देव को उद्दिष्ट करके अष्टमभक्त युक्त प्रौषध व्रत ग्रहण किया। देव ने प्रगट होकर पूछा—

—क्या इच्छा है वासुदेव ?

—सत्यभामा को प्रद्युम्न जैसे पराक्रमी पुत्र की इच्छा है।

—जिस स्त्री को तुम जैसे पुत्र की इच्छा हो, उसे यह हार पहना कर सेवन करो ।” —कहकर नैगमेषी देव ने एक हार दिया और अन्तर्धान हो गया ।

प्रसन्न होकर कृष्ण ने सत्यभामा को अपने शयन कक्ष में आने का निमन्त्रण भिजवाया ।

पिता को प्रीषध करते देखकर तो प्रद्युम्न को आश्चर्य नहीं हुआ किन्तु विमाता को शयन कक्ष में निमन्त्रण अवश्य रहस्यमय लगा । तुरन्त प्रज्ञप्ति विद्या से पूछा । सच्चाई जानकर प्रद्युम्न माता से बोला—

—माँ ! मेरे जैसे पुत्र की इच्छा हो तो वह हार ले लो ।

—रुक्मिणी ने उत्तर दिया—

—पुत्र ! मैं तो एक तुम से ही कृतार्थ हूँ । मुझे दूसरे पुत्र की कोई इच्छा नहीं क्योंकि स्त्री रत्न को बार-बार प्रसव उचित नहीं है ।

—यदि तुम्हारी कोई प्रिय सपत्नी हो तो मैं उसकी इच्छा पूर्ण करूँ ।

कुछ समय तक सोचने के बाद रुक्मिणी ने कहा—

—हाँ बेटा ! जब मैं तुम्हारे वियोग में दुखी थी तो जाववती ने सहानुभूति दिखाई थी । वह मुझे अधिक प्रिय है ।

—तो उसे बुलाओ ।

जाववती पुलाई गई । प्रद्युम्न ने उसका रूप अपने विद्या बल से सत्यभामा का सा बना दिया और सम्पूर्ण योजना समझा कर उसे श्रीकृष्ण के शयन कक्ष में पहुँचा दिया । कृष्ण ने उसे भामा समझकर हार पहिनाया और मुखपूर्वक क्रीडा की । जाववती उठकर इठलाती चली आई ।

कुछ समय पञ्चात् सत्यभामा ने शयनकक्ष में पदार्पण किया । उसे देखकर कृष्ण सोचने लगे—‘अहो ! स्त्रियो में काम की कैसी अधिकता ! अभी-अभी तो यहाँ से गई थी, फिर भी मन नहीं भरा, पुन लौट आई ।’ किन्तु कहा कुछ भी नहीं । उसके साथ क्रीडा करने लगे ।

जिस समय कृष्ण भामा के साथ क्रीडा कर रहे थे उसी समय प्रद्युम्न ने लोगो के हृदय को प्रकम्पित करने वाली कृष्ण की भेरी उच्च स्वर से वजा दी। सत्यभामा का हृदय भयभीत होकर धकधक करने लगा। कृष्ण भी क्षुब्ध होकर सेवको से पूछ बैठे—भेरी किसने वजाई ?

—रुक्मिणी-पुत्र प्रद्युम्न ने। —सेवको ने बताया।

कृष्ण मन ही मन-समझ गए कि 'प्रद्युम्न ने भामा को छल लिया। अब इसके भीरु पुत्र होगा क्योंकि इसका हृदय भय से प्रकम्पित है।' किन्तु होनी को बलवान समझकर चुप हो गए।

×

×

×

दूसरे दिन कृष्ण रुक्मिणी के महल में गए। वहाँ उन्हें जाववती भी वैठी दिखाई दी। उसके कण्ठ में पड़े दिव्यहार पर उनकी दृष्टि जम गई। अपनी ओर पति को निर्निमेष दृष्टि से निहारते हुए देखकर उसने मुस्करा कर पूछा—

—क्या देख रहे हैं, स्वामी ! मैं आपकी पत्नी जाववती ही तो हूँ। बदल तो नहीं गई।

—बदली तो नहीं परन्तु यह नया हार अवश्य पहन लिया है। कहाँ से मिला ? किसने दिया ? —कृष्ण ने भी मुसकरा कर पूछा।

—आप ही ने तो दिया, कल ही रात। बड़ी जल्दी भूल गए।

—हूँ ! तो वह तुम ही थी ?

—क्या किसी और को देने का विचार था ? मैं अनाधिकार ही ले आई ?—जाववती के इस प्रश्न का उत्तर दिया रुक्मिणी ने—

—हाँ, और क्या ? तुमने स्वामी की प्रिय-पत्नी के अधिकार का हनन कर लिया है। ऐसा तो नहीं करना चाहिए था।

—क्या इसमें मेरा ही दोष है ? पुत्र की इच्छा तो सभी स्त्रियो को होती है।

—होती तो है किन्तु तुमने अवसर शायद गलत चुना था। इसी-लिए स्वामी रुष्ट हैं।

—वाह दीदी ! अवसर तो आपने ही बताया था । सम्पूर्ण योजना तुम्हारी ही थी और अब साफ निकल रही हैं ।

कृष्ण दोनो की बातें सुनकर मुसकरा रहे थे । उन्हें पूर्णरूप से विश्वास हो गया कि प्रद्युम्न ने अपने विद्यावल से सत्यभामा का मनोरथ विफल कर दिया ।

हँस कर कहने लगे—

—तुम तीनों ने मिलकर अपना काम बना लिया । जाववती ! तुम्हारी इच्छा पूर्ण हुई ।

जाववती ने कहा—

—स्वामी ! रात को मैंने स्वप्न में एक सिंह देखा था ।

—तुम्हारे सिंह जैसा ही पराक्रमी पुत्र होगा । —कृष्ण ने बताया ।

महाशुक्र देवलोक से च्यवकर कैटभ का जीव जाववती की कुक्षि में अवतरित हो गया था ।

अनुक्रम से जाववती और सत्यभामा का गर्भकाल पूरा हुआ । दोनो ने पुत्रो को जन्म दिया । जाववती के पुत्र का नाम रखा गया शाव और सत्यभामा के पुत्र का भीरुकुमार । उसी समय सारथि दारुक को भी एक पुत्र की और सुबुद्धि मन्त्री को जयसेन नाम के पुत्र की प्राप्ति हुई ।

शनै शनै कुमार बढने लगे और युवावस्था आते-आते शाव सभी कलाओ में निपुण हो गया ।

प्रद्युम्न और शाव में पूर्वजन्म के सम्बन्धों के कारण विशेष प्रेम था । दोनो साथ-साथ ही रहते ।

—वसुदेव हिंडी, पीठिका

—त्रिषष्टि० ८।७

—उत्तरपुराण ७२।१७०—१७५

१० उत्तरपुराण में जाववती के पुत्र का नाम शम्भु अथवा जावकुमार बताया है और सत्यभामा के पुत्र का नाम सुमानु । (श्लोक १७४)

एक बार रुक्मिणी के हृदय में विचार आया कि 'मेरे भाई की पुत्री वैदर्भी भी विवाह योग्य हो गई होगी। यदि प्रद्युम्न के साथ उसका लग्न हो जाय तो . . . ' यह सोचकर उसने एक आदमी भोजकटनगर भाई के पास भेजा। उसकी बात सुनकर रुक्मि एकदम आग-बबूला हो गया। उसे पुराने वैर की स्मृति हो आई। अपना अपमान उसके स्मृतिपटल पर तैर गया। कुपित होकर बोला—

—चाडाल को कन्या दे देना अच्छा समझूंगा किन्तु कृष्ण के कुल में हरगिज नहीं दूंगा।

यह उत्तर सुनकर वह पुरुष लौट आया। भाई की भावना जानकर रुक्मिणी का मुख म्लान हो गया। उसका मलिन मुख देखकर प्रद्युम्न ने पूछा—

—क्या बात है, मातेज्वरी ! तुम्हारा मुख म्लान क्यों है ?

—कुछ नहीं। बेटा ऐसे ही।

प्रद्युम्न के अति आग्रह पर रुक्मिणी ने अपने विवाह की सम्पूर्ण घटना सुनाकर कहा—

—मैंने उस शत्रुता को मित्रता में बदलने का प्रयास किया किन्तु मुझे निराश होना पड़ा।

—तुम निराश मत हो माँ ! मैं मामा (मातुल) की इच्छा से ही वैदर्भी का परिणय करूँगा। मुझे भोजकटनगर जाने की आज्ञा दो।

रुक्मिणी ने जाने की आज्ञा देते हुए कहा—

—पुत्र ! ऐसा मत करना की वैर की परम्परा और भी बढ़ जाय।

—नही माँ ! निश्चिन्त रहो । सब कुछ मामा की स्वीकृति से ही होगा ।

माता की आज्ञा पाकर प्रद्युम्न और गाव्र दोनों भोजकटनगर जा पहुँचे । एक ने किन्नर का रूप बनाया और दूसरे चाडाल का । दोनों गलियों में सगीत कला का प्रदर्शन कर जनता का मन मोहने लगे । उनकी कला की प्रशंसा सुनकर रुक्मि ने उन्हें राजसभा में बुलाया और गाना सुनने की इच्छा प्रकट की । उसी समय उसकी पुत्री वैदर्भी भी वहाँ आ गई । दोनों ने अपनी सगीत कला से सब को प्रसन्न कर लिया । प्रभूत पारितोषक देकर रुक्मि ने पूछा—

—तुम लोग कहाँ से आए हो ?

—हम आकाश मार्ग से द्वारका नगरी आए जहाँ श्रीकृष्ण राज्य कर रहे हैं ?

वैदर्भी बीच में ही बोल पड़ी—

—क्या तुम रुक्मिणी-पुत्र प्रद्युम्न को जानते हो ?

—कामदेव के समान सुन्दर और महापराक्रमी प्रद्युम्न को कौन नहीं जानता ?

प्रद्युम्न की प्रशंसा सुनकर वैदर्भी के हृदय में अनुराग उत्पन्न हुआ । वह आगे कुछ पूछती इससे पहले ही हस्तिशाला के अधीक्षक ने आकर कहा—

—महाराज ! अपना निजी हाथी उन्मत्त होकर हस्तिशाला से भाग निकला है ।

तुरन्त ही हाथी को वश में करने के प्रयास किए गए किन्तु कोई भी उसे वश में न कर सका तब राजा ने उद्घोषणा कराई कि 'जो कोई हाथी को वश में करेगा उसे मुहमाँगा पुरस्कार मिलेगा ।' किन्तु इस घोषणा का भी कोई प्रभाव न हुआ । कोई व्यक्ति हाथी पकड़ने के लिए तैयार न हुआ । उसका उपद्रव बढ़ता ही जा रहा था । तब प्रद्युम्न ने यह घोषणा स्वीकार की और अपनी सगीत कला से हाथी को निर्मद कर दिया ।

जब उसकी कुशलता से प्रसन्न होकर राजा रुक्मि ने पुरस्कार माँगने को कहा ता वह बोला—

—महाराज ! हमें भोजन बनाने में बड़ी परेशानी होती है । इसलिए अपनी पुत्री वैदर्भी दे दीजिए ।

इस अनुचित माँग को सुनते ही रुक्मि एकदम आग-बबूला हो गया । दोनों को नगर से निकाल बाहर किया । राज-पुत्री इन किन्नर-चाडालो का चूल्हा फूँके यह कैसे सम्भव था ?

दोनों नगर से बाहर निकले और विद्या-बल से एक भवन बना कर रहने लगे । एक दिन शाव ने कहा—

—भैया ! हम तो यहाँ आनन्द से रह रहे हैं और उधर माता हमारी याद में व्याकुल होगी । जल्दी से विवाह करके द्वारका चलना चाहिए ।

प्रद्युम्न ने उसकी बात स्वीकार की और अर्धरात्रि में विद्या के प्रभाव से वैदर्भी के गयन कक्ष में जा पहुँचा । उसे जगाकर रुक्मिणी का पत्र दिया । पढ़कर वैदर्भी ने पूछा—

—आपको क्या दूँ ?

—सुन्दरी ! तुम स्वयं ही मुझे समर्पित हो जाओ । मैं ही रुक्मिणी पुत्र प्रद्युम्न हूँ । मेरे लिए ही माता ने तुम्हारी याचना की थी ।

वैदर्भी प्रद्युम्न के प्रति पहले ही आकर्षित थी । प्रत्यक्ष देखकर तो अनुरक्त हो गई । मुँह से कुछ न बोली । प्रद्युम्न ने ही पुन कहा —

—यदि तुम्हारी स्वीकृति हो तो मैं तुम्हारे साथ पाणिग्रहण करूँ ।

वैदर्भी ने सिर झुकाकर स्वीकृति दे दी । प्रद्युम्न ने वही उसके साथ गांधर्व विवाह किया । विवाह सूचक कगन आदि अलंकार पहनाए और गेप रात्रि वही व्यतीत की । चतुर्थ पहर की समाप्ति पर उठ कर चलने लगा तो उसने वैदर्भी को समझाया—

—कोई तुमसे मेरा नाम पूछे तो बताना मत ।

—तो क्या कहूँ ?

—बस चुप हो जाना ।

—आप नहीं जानते स्वामी ! माँन मे तो मेरी मरम्मत हो जायगी । पिताजी कुपित होकर मुझे तरह-तरह के त्रास देगे ।

—तुम्हे कोई त्रास नहीं दे सकता ।

—क्यों ?

—मैंने मन्त्र शक्ति से तुम्हारे शरीर को मन्त्रित कर दिया है, इसलिए ।

वैदर्भी को विश्वास हो गया और प्रद्युम्न वहाँ से चला आया । रात्रि जागरण के कारण प्रातः काल वैदर्भी गहरी निद्रा में निमग्न हो गई । धायमाता उसे जगाने आई तो विवाह के चिह्न देखकर चकित रह गई । वैदर्भी को जगा कर पूछा तो उसने कुछ भी उत्तर न दिया । धायमाता से रुक्मि को पता चला तो उसने भी पुत्री से पूछा । किन्तु पुत्री माँन ही रही । कभी वह प्रेम में पूछता तो कभी दण्ड का भय दिखाता किन्तु वैदर्भी तो मानो पत्थर की मूर्ति बन गई । हार-झकमार कर उसने अनुचर भेजा और उन दोनों किन्नर-चाटालो को बुलवा लिया । वैदर्भी को देते हुए उनमें कहा—

—इस कन्या को ग्रहण करो ।

प्रद्युम्न ने राज्य-कन्या से पूछा—

—क्या तुम सहर्ष मेरे साथ चलने को प्रस्तुत हो ?

वैदर्भी ने स्वीकृति दे दी । वे दोनों उसे लेकर चल दिए ।

कुछ समय पश्चात् रुक्मि राजसभा में आया । तब तक क्रोध शांत हो चुका था । वह अपने अकृत्य पर पश्चात्ताप करने लगा । बार-बार उसके हृदय में विचार उठता—मैंने बुरा किया । पुत्री को चाडाल के हवाले नहीं करना चाहिए !' तभी उसके कानों में वाद्यों की मधुर ध्वनि पड़ी । उसने सभामंदो से पूछा—

—यह मधुर ध्वनि कहाँ से आ रही है ?

कोई कुछ न बता सका । सभी मौन थे—अनभिज्ञ थे । अनुचरो को भेजकर पता लगवाया गया तो उन्होंने आकर बताया—स्वामी नगर के बाहर द्वारकाधीश कृष्ण के पुत्र प्रद्युम्न और शिव एक महल

मे ठहरे हुए हैं। उनके साथ वैदर्भी भी है। चारण लोग उत्तम वाद्यो से उनकी स्तुति कर रहे हैं। वही स्वर आपके कानो तक आ रहा है।

रुक्मि को यह समझते देर न लगी कि यह सब चमत्कार प्रद्युम्न का है। उसने तुरन्त ही उनको आदरपूर्वक बुलाया और वैदर्भी का विधिवत विवाह प्रद्युम्न के माथ कर दिया। विदा करते समय रुक्मि ने हँस कर कहा—

—छल-कपट मे वेटा वाप मे कुछ अधिक ही निकला। कृष्ण ने तो युद्ध मे मुझे जीता और तुमने बुद्धि से।

—सवाया कहिए मातुल ! क्योंकि शक्ति से युक्ति प्रबल होती है।—प्रद्युम्न ने उत्तर दिया।

रुक्मि हँस पडा और प्रेमपूर्वक सबको विदा कर दिया।

सभी लोग द्वारका आ पहुँचे। रुक्मिणी ने बहुत उत्सव मनाया। प्रद्युम्न वैदर्भी के साथ सूखपूर्वक रहने लगा।

शाव का विवाह भी हेमागद राजा की वेण्या की अप्सरा जैसी सुन्दर पुत्री सुहिरण्या^१ के साथ हो गया।

—त्रिषष्टि० ८१७

—वसुदेव हिंडी, पीठिका।

१ सुहिरण्या का परिचय वसुदेव हिंडी पीठिका मे इस प्रकार दिया है—

एक बार श्रीकृष्ण की आज्ञा मे कचुकी ने शावकुमार से निवेदन किया—हे देव ! रत्नकरडक उद्यान मे गणिका पुत्री सुहिरण्या और हिरण्या का नृत्य होगा, आप देख आवे।’

शावकुमार रथ मे बैठकर वहाँ पहुँचा और उमने नृत्य देखा। सुहिरण्या ने वत्तीस प्रकार का नृत्य करके शाव का मन मोह लिया। शाव ने आकर्षित होकर उससे वाग्दान कर लिया।

इसके बाद सुहिरण्या कई बार कृष्ण नन्दा में गई किन्तु शाव ने उसकी ओर ध्यान नहीं दिया। निराश होकर एक दिन उसने अपने गले में फाँसी का फन्दा डाल लिया। तब उसकी दार्मा भोगमातिनी ने उसे आश्वामन दिया कि वह उसे शाव में अवश्य मिलाएगी। तब उस दानी ने बुद्धिसेन (शाव का एक नेवर) को आर्क्षित किया और उनके द्वारा शाव के पास सुहिरण्या को भेजा। रात्रि भर सुहिरण्या शाव के कक्ष में उसके साथ रही तब जावयती और कृष्ण ने उसे स्वीकार कर लिया।

इस प्रकार शाव का विवाह (यद्यपि विधिवत नहीं) सुहिरण्या के साथ हो गया।

गाव भीरुक को सदा तग करता रहता—कभी उसे मारता तो कभी द्यूत-क्रीडा में उसका धन हरण कर लेता । भीरुक नाम से ही नहीं स्वभाव से भी भीरु (डरपोक-कायर) था । गाव से तो उसका कुछ वश चलता नहीं—माता सत्यभामा से जाकर उसकी शिकायत करता । नित्य की शिकायतों से तग आकर एक दिन सत्यभामा ने कृष्ण से कहा—

—स्वामी ! अब तो शाव बहुत उद्धत होता जाता है ।

—हाँ प्रिये ! उसका भी कुछ न कुछ प्रवन्ध करना ही पड़ेगा । मैंने भी उसकी बहुत शिकायतें सुनी हैं ।

सत्यभामा पति के आश्वासन से संतुष्ट हो गई । कृष्ण ने जाववती से शाव की शिकायत की तो वह बोली—

—आप क्या कह रहे हैं, नाथ ! मैंने तो उसके विरुद्ध कुछ नहीं मुना । बड़ा भद्र है वह तो ।

—सिंहनी को तो अपना पुत्र सौम्य ही लगता है । उन हाथियों से पूछो जिनके मस्तक वह क्रीडा मात्र में ही विदीर्ण कर देता है ।

—मुझे विश्वास नहीं है कि गाव ऐसा होगा ।

—तो मेरे साथ वेश बदल कर चलो और अपने पुत्र की करतूत अपनी आँखों से देखो ।

जाववती तुरन्त तैयार हो गई । कृष्ण ने अहीर का वेश बनाया और जाववती ने अहीरन का । दोनों छाछ (तक्र) बेचने चल दिये—द्वारिका की गलियों में । मार्ग में स्वेच्छा विहारी शाव मिल गया । अहीरन के रूप को देखकर आकर्षित हुआ और बोला—

—अहीरन मेरे साथ आओ, मुझे गोरस लेना है ।

आगे-आगे गाव चल दिया और पीछे-पीछे अहीरन । एक देवालय में शाव घुस गया किन्तु अहीरन द्वार पर ही खड़ी रह गई । शाव ने कहा—

—अन्दर आ जाओ । यहाँ तुम्हारा सम्पूर्ण गोरस खरीद लूँगा ।

—नही, यही से लेना हो तो लो, अन्यथा मैं चली ।

गाव ने लपक कर उसका हाथ पकड़ा और घसीटता हुआ बोला—

—चली कैसे जायेगी, मुझसे वंचकर ?

तभी अहीर भी आ पहुँचा और बोला—

—कौन दुष्ट मेरी स्त्री का हाथ पकड़ रहा है ?

शाव की दृष्टि ज्यों ही अहीर की ओर उठी तो उसे पिता श्री कृष्ण दिखाई दिए और अहीरन माता जाववती । माता-पिता को देखकर शाव मुँह छिपा कर वहाँ से भाग गया । किन्तु माता को अपने पुत्र के दुश्चरित्र का पता अवश्य लग गया । पुत्र की दुश्चेष्टा से माता का मुख नीचा हो गया ।

दूसरे दिन कृष्ण ने बलपूर्वक शाव को अपने पास बुलाया तो वह एक काठ की कीली बनाता हुआ उनके समक्ष आकर खड़ा हो गया । इस विचित्र चेष्टा को देखकर कृष्ण ने पूछा—

—कीली किस लिए बना रहे हो ?

—जो कल की बात मुझसे करेगा, उसके मुख में ठोकने के लिए ।

ऐसे निर्लज्जतापूर्ण उत्तर की आशा कृष्ण को स्वप्न में भी नहीं थी । उससे अधिक बात करना व्यर्थ समझ कर उन्होंने उसे नगरी से बाहर निकाल दिया । पूर्वभव के स्नेह के कारण प्रद्युम्न ने नगर से बाहर जाते समय उसे प्रज्जप्ति विद्या दी । विद्या लेकर शाव चला गया ।

गाव के जाने पर भी भीरुक की परेगानी खतम न हुई । अब उसे प्रद्युम्न तग करने लगा । एक दिन सत्यभामा ने प्रद्युम्न को उलाहना देते हुए कहा—

इतना ही प्रेम है शाव से तो उसकी ही भाँति नगरी से बाहर क्यों नहीं निकल जाते ? भीरुक को हमेशा क्यों तग करते रहते हो ?

—कहाँ जाऊँ ?—प्रद्युम्न ने हँस कर पूछ लिया ।

—श्मशान में जाओ, वही तुम्हारे लिए उचित स्थान है ?

—फिर कभी आऊँ या नहीं ?

—क्या आवश्यकता है तुम्हारी ? कौन सा काम रुक जायगा तुम्हारे बिना ?

—शायद कोई रुक ही जाए । सोच लो कभी आवश्यकता पड़ ही गई तो.....?

—तो जब मैं शाव को हाथ पकड़ कर लाऊँ तब तुम भी आ जाना । —क्रोधित होकर सत्यभामा ने कहा ।

‘जैसी माता की आज्ञा’ कहकर प्रद्युम्न चल दिया और श्मशान में जा बैठा । शाव भी घूमता-घामता वहाँ आ पहुँचा । दोनों भाई श्मशान में रहने लगे । नगर-निवासी जब कोई शव लाते तो कर लिये बिना अग्नि संस्कार न करने देते ।

×

×

×

सत्यभामा ने प्रयत्न करके भीरुक के लिए ६६ कन्याएँ एकत्र कर ली । वह अपने पुत्र का विवाह १०० कन्याओं से करना चाहती थी । एक कन्या की खोज और करने लगी । प्रज्ञप्ति विद्या द्वारा माता का विचार जान कर प्रद्युम्न और शाव ने एक पड्यत्र किया । प्रद्युम्न तो वन गया राजा जितशत्रु और शाव उसकी रूपवती पुत्री । वह कन्या एक बार भीरुक की धायमाता को दिखाई दे गई । धायमाता ने सत्यभामा को पता चला और उसने उसकी याचना की । जितशत्रु ने दूत से कहा—‘यदि महारानी सत्यभामा मेरी पुत्री का हाथ पकड़कर द्वारका ले जायँ और लग्न मण्डप में अपने पुत्र के हाथ के ऊपर मेरी पुत्री का हाथ रखे तो यह सम्बन्ध हो सकता है ।’ सत्यभामा को तो एक कन्या की खोज थी ही । उसने तुरन्त जितशत्रु की शर्त स्वीकार कर ली । वह जितशत्रु के शिविर में जा पहुँची । उस समय शाव ने

प्रज्ञप्ति विद्या से कहा—‘ऐसा करो कि सत्यभामा को तो मैं कन्या ही दिखाई पड़ूँ और बाकी सब लोगो को अपने असली रूप में शाव ही।’ विद्या ने शाव की इच्छा पूरी कर दी।

सत्यभामा राज-कन्या का हाथ पकड़ कर द्वारका में ले आई। उस समय नगरवासियो को बड़ा आश्चर्य हुआ कि भामा शाव का हाथ पकड़े लिए जा रही है। कहाँ तो इसे फूटी आँख भी नहीं देखना चाहती थी। किन्तु कहा किसी ने कुछ भी नहीं। कौन राजा-रानियो के बीच में बोलने और अपने सिर व्यर्थ की विपत्ति मोल ले।

लग्न मण्डप में भी शाव ने कपट से काम लिया। भीरुक के हाथ का इतनी जोर से दबाया कि वह व्यथित हो गया। उसने अपना हाथ अलग कर लिया। लोगो को दिखाने के लिए केवल नीचे लगाये रहा। बाकी १६ कन्याओ के हाथ भी शाव के करतल के नीचे रख दिये गये। बलशाली शाव के साथ विवाह होते देखकर सभी कन्याएँ सतुष्ट हो गईं।

वास गृह में कन्याओ के साथ शाव गया तो पीछे-पीछे भीरुक भी जा पहुँचा। शाव ने उसे फटकार कर भगा दिया। भीरुक ने अपनी माता सत्यभामा से जाकर कहा तो उसे पुत्र की बात पर विश्वास ही नहीं हुआ। स्वयं आई। शाव को देखकर बोली—

—निर्लज्ज ! तू फिर यहाँ आ गया ?

—हाँ माता ! आपकी कृपा से।

—कौन लाया तुझे ?

—आप स्वयं ही तो मुझे लाई और इन १६ कन्याओ से विवाह कराया।

—झूठ, बिल्कुल झूठ !—सत्यभामा को शाव की ढिठाई पर क्रोध आ गया।

—बिल्कुल सत्य। मेरा विश्वास न करो तो इन कन्याओ से, नगरवासियो से और अपनी ही दासियो से पूछ लो।

सत्यभामा ने कन्याओं से पूछा तो उन्होंने कह दिया कि हमारा विवाह भीष्म से नहीं शाव, से ही हुआ है। दासियों की वारी आई तो उन्होंने अंजलि वाँधकर कहा—

—महारानीजी ! क्रोध तो करिए मत। हमने तो अपनी आँखों से आपको गावकुमार को ही हाथ पकड़कर लाते देखा है और इसी के साथ इन कन्याओं का विवाह हुआ है।

जब सत्यभामा ने नगरजनो से पूछा तो उन्होंने भी कह दिया—

—महारानीजी ! क्षमा करे। आप स्वयं ही तो गावकुमार को हाथ पकड़कर लाई थी।

विवाह सम्पन्न कराने वाले पुरोहित तथा अन्य सभी लोगों की माक्षी सुनकर तो भामा के क्रोध का ठिकाना न रहा। रोपपूर्वक शाव से बोली—

—कपटी माता-पिता का पुत्र, कपटी भाई का अनुज—तू महा-कपटी है। मुझे कन्या का रूप रख कर छल लिया।

विमाता के कथन का शाव ने बुरा नहीं माना। वह मुस्कराता रहा। भामा क्रोध में पैर पटकती चली गई।

कृष्ण ने शाव का विवाह उन कन्याओं से लोगों के समक्ष कर दिया और जाववती ने बड़ा उत्सव मनाया।

अपनी छल विद्या से शाव फूला न समाया। एक दिन वसुदेवजी को प्रणाम करके बोला—

—दादाजी (पितामह) ! आपने तो सारी पृथ्वी पर घूम कर अनेक कन्याओं से विवाह किया और मैंने घर बैठे ही, देखी मेरी कुंगलता।

वसुदेव ने गम्भीरतापूर्वक उत्तर दिया—

—शाव ! तुम निर्लज्ज भी हो और ढीठ तथा अभिमानी भी। कुए के मेढक के समान पिता की नगरी से बाहर जाने का साहस ही न कर सके। भाई द्वारा प्रदत्त छल-विद्या से कन्याओं को जीत लेना कोई कुंगलता नहीं। मैंने जो कुछ किया अपने अकेले के ही बलबूते पर किया। मैं स्वावलम्बी हूँ और तुम परावलम्बी।

शाव को अपनी भूल ज्ञात हो गई। उसने अजलि वॉध कर कहा—
—क्षमा कीजिए दादाजी। मैं अज्ञानवश आपका तिरस्कार कर
वैठा।

क्षमा माँगकर उसने वसुदेव को प्रणाम किया और चला आया।

—वसुदेव हिंडी,

—त्रिषष्टि० ८।७

वशेष—वसुदेव हिंडी में शाव का १०८ कन्याओं के साथ विवाह का
उल्लेख है।

यहाँ प्रद्युम्न न तो बाहर ही जाता है और न शाव से मिलता है।
कथा अन्य प्रकार से दी हुई है।

सत्यभामा ने शाव की अनुपस्थिति में अपने पुत्र सुभानुकुमार का
विवाह १०८ कन्याओं से करना चाहा। १०७ कन्याएँ उसे प्राप्त हो
गईं। यह सब बात शाव को प्रज्ञप्ति विद्या द्वारा ज्ञात हो गई। उसने
एक कन्या का रूप बनाया और एक सार्थवाह के पास अपनी धात्री माता
(यह प्रज्ञप्ति विद्या थी) के साथ आया। धात्री माता और वह सार्थवाह
के साथ द्वारका आ गई। वहाँ सुभानु ने उसे देखा। उसके रूप-गुण पर
मोहित होकर उसने खाना-पीना त्याग दिया। तब कृष्ण और सत्यभामा
उसे लिवा लाए। उसने स्पष्ट कह दिया कि 'मैं गणिका पुत्री हूँ' किन्तु
सुभानु इस पर भी विवाह के लिए तैयार हो गया। तब शाव ने उन
१०७ कन्याओं को भी शाव के रूप-गुणों का बखान करके उन्हें सुभानु
के विरुद्ध कर दिया। कन्याओं ने सुभानु के साथ विवाह करने से इन्कार
कर दिया। तब शाव प्रगट हुआ और उसका विवाह उन १०७ कन्याओं
से हो गया। सुहिरण्या के साथ भी उसका विधिवत विवाह हुआ। इस
प्रकार शाव की १०८ पत्नियाँ हो गईं।

यवनद्वीप के कुछ व्यापारी जल-मार्ग से व्यापार हेतु द्वारका आ पहुँचे । अन्य माल तो उन्होंने वही बेच दिया किन्तु रत्नकम्बल नहीं बेचे । उन्हें आशा थी कि मगध की राजगृह नगरी में उन्हें अच्छा मूल्य मिल जायगा । अधिक लाभ की आशा में व्यापारी राजगृह जा पहुँचे और वे रत्नकवल मगधेश्वर की पुत्री जीवयशा को दिखाए । जीवयशा ने उन कवलो का आधा मूल्य ही लगाया । मुँह बिचकाकर व्यापारियों ने कहा—

—इससे दुगना मूल्य तो द्वारका नगरी में ही मिल रहा था ।

१ भवभावना, गाथा २६५६-६५ ।

किन्तु यहाँ अन्य ग्रन्थों में कुछ मतभेद है—

(क) मगध देश के कुछ वैश्यपुत्र जलमार्ग से व्यापार करते हुए भूल से द्वारवती नगरी जा पहुँचे । वहाँ में उन्होंने श्रेष्ठ रत्न खरीदे और राजगृह नगरी जाकर जरासंध को भेट किए । जरासंध ने पूछा तो उन्होंने द्वारवती नगरी का विस्तार से वर्णन किया ।

(उत्तर पुराण ७१/५३-६४)

(ख) जरासंध के पास अमूल्य मणियों के विक्रयार्थ एक वणिग पहुँचा ।

(हरिवंश पुराण ५०/१-४)

(ग) किसी व्यक्ति ने जरासंध को रत्न आदि अर्पित किए । पूछने पर उसने बताया कि मैं द्वारका पुरी से आ रहा हूँ । वहाँ श्रीकृष्ण राज्य करते हैं । यह सुनकर जरासंध क्रोधित होगया ।

(शुभचन्द्राचार्य प्रणीत—पांडव पुराण, १६/८-११)

—यह द्वारका नगरी कहाँ है ?

—समुद्र के किनारे, अति समृद्ध । स्वर्ग की अलकापुरी के समान ।

—कौन है, वहाँ का शासक ?

—यादव कुलभूषण वसुदेव-पुत्र श्रीकृष्ण ।

कृष्ण का नाम सुनते ही जीवयगा वहाँ से उठकर सीधी पिता के पास गई और रोने लगी । पुत्री से रोने का कारण पूछा तो उसने बताया—

—मेरे पति का हत्यारा कृष्ण अभी तक जीवित है और द्वारका नगरी पर राज्य कर रहा है । मुझे आज्ञा दीजिए कि मैं अग्नि में जलकर अपनी प्रतिज्ञा पूरी कर सकूँ ।

कृष्ण के जीवित रहने का समाचार जानकर जरासंध भी कुपित हो गया । धैर्य बँधाते हुए पुत्री से बोला—

—वत्से ! रो मत । मैं कृष्ण को मारकर यादवों का समूलोच्छेद कर दूँगा । यादव स्त्रियाँ अपने ही आँसुओं से भीग जायेगी ।

पुत्री को आश्वासन देकर जरासंध युद्ध की तैयारियों में जुट गया । उसकी सहायता के लिए चेदि नरेश शिशुपाल दुर्योधन आदि समस्त कौरव, महापराक्रमी राजा हिरण्यनाभ आदि आगए । प्रतिवासुदेव जरासंध ने चतुरगिणी सेना सजाकर प्रस्थान कर दिया । प्रस्थान के समय अनेक अपशकुन हुए किन्तु उसने कोई चिन्ता नहीं की और द्वारका की ओर बढ़ता रहा ।

×

×

×

जरासंध के आगमन का समाचार कौतुकी नारद तथा अन्य चरों ने कृष्ण को पहले ही दे दिया । युद्ध को अवश्यम्भावी जानकर यादव भी तैयारियाँ करने लगे । समस्त यादव-परिवार और सेना के साथ पाँचों पांडव भी उनसे आ मिले । श्रीकृष्ण द्वारका से प्रस्थित हुए और पैंतालीस योजन दूर सेनपल्ली में शिविर लगा दिया ।

उस समय कुछ विद्याधर आये और समुद्रविजय से प्रार्थना की—

—हे स्वामिन् ! यद्यपि आपके साथ श्रीकृष्ण जैसे महायोद्धा और अरिष्टनेमि जैसे अतुलित बली हैं। अकेले कृष्ण ही जरासंध को जीतने में समर्थ हैं। फिर भी आप हमें अपना सेवक समझिए। आपको हमारी सहायता की आवश्यकता तो नहीं है किन्तु जरासंध के साथ कुछ विद्याधर हैं। उन्हें रोकने के लिए वसुदेवजी के नेतृत्व में प्रद्युम्न तथा शाव कुमारों को हमारे साथ भेज दीजिए।

समुद्रविजय ने उन विद्याधरों की बात स्वीकार कर ली। उस समय अरिष्टनेमि ने अपनी भुजा पर जन्मस्नात्र के अवसर पर देवताओं द्वारा बाँधी गई अस्त्रवारिणी ओषधि वसुदेव को दे दी।

×

×

×

जरासंध ने अपना गिविर कृष्ण के पडाव से चार योजन दूर लगा दिया। उस समय उसके नीतिमान मंत्री हसक ने कहा—

—हे स्वामी ! शत्रु का बलाबल विचार करके ही युद्ध करना चाहिए।

—तुम्हारा आशय क्या है ?

—राजन् ! यादवों में अकेले वसुदेव ने ही कई बार आपको अपनी कुशलता दिखाई है जिसमें अब तो उनकी ओर एक से एक बढ़कर बली है। अरिष्टनेमि, दशों दशार्ह, कृष्ण, पाँचों पांडव आदि और हमारी ओर अकेले आप ! कहीं कस का सा-दुष्परिणाम न हो।

मंत्री के वचन सुनकर जरासंध जल उठा। रोपपूर्वक बोला—

—संभवतः यादवों ने तुम्हें रिश्वत दे दी है। तुम उनसे मिल गए हो। इसी कारण ऐसे खोटे वचन बोल रहे हो।

—यह दुर्वचन नहीं नीतिपूर्ण सलाह है।

—धिक्कार है तुम्हें जो रणभूमि से पीठ दिखाने की राय दे रहे हो। मैं अकेला ही शत्रु सेना को भस्म कर दूँगा।

तभी डिभक नाम का दूसरा मंत्री बोल उठा—

—सत्य है महाराज ! रणभूमि में पीठ दिखाना क्षत्रिय धर्म के विरुद्ध है। फिर युद्ध करते हुए मरने से लोक में यश और परलोक में

स्वर्ग मिलता है जबकि युद्ध से भाग जाने पर लोकापवाद ! अतः युद्ध करना ही श्रेष्ठ है ।

जरासव डिभक की बात सुनकर सतुष्ट हुआ । डिभक ने ही पुनः कहा—

—आपके हाथ में चक्र है और मेरे मस्तिष्क में चक्रव्यूह । मैं चक्रव्यूह की रचना करके शत्रु-योद्धाओं को उसमें फँसा लूँगा और आप अपने पौरुष से उनका गिरच्छेद कर दीजिए । वस किस्सा खतम ।

योजना पसंद आई जरासव को । वह अपनी विजय के प्रति आश्वस्त होकर फूल गया ।

दूसरे दिन प्रातः काल से ही डिभक ने एक हजार आरे वाले चक्रव्यूह की रचना प्रारम्भ कर दी । प्रत्येक आरे में एक-एक महाबलवान राजा अवस्थित कर दिया । उसके साथ १०० हाथी, २००० रथ, ५००० अश्व और १६००० पराक्रमी पैदल सैनिक थे । चक्रव्यूह की परिधि में ६२५० राजा और केन्द्र में अपने पुत्रों सहित स्वयं जरासव ५००० राजाओं के साथ जम गया । उसके पृष्ठ भाग में गांधार और सैन्धव सेना थी, दक्षिण भाग में दुर्योधन आदि १०० कौरव, वायी ओर मध्य देश के अनेक राजा और आगे अन्यान्य योद्धा तथा सुभट । इनके आगे शकट व्यूह रचकर प्रत्येक सविस्थल में पचास-पचास राजा नियुक्त कर दिये । चक्रव्यूह के बाहर भी विभिन्न प्रकार के व्यूहों की रचना की और कौणलाधिपति राजा हिरण्यनाभ को सेनापति बनाया । इस संपूर्ण व्यवस्था में ही दिन व्यतीत होगया ।

रात्रि में यादवों ने गरुडव्यूह की रचना की । व्यूह के मुख भाग पर अर्द्धकोटि महावीर, उनके पीछे बलराम और कृष्ण और उनके पीछे अक्रूर, जराकुमार आदि यादव, उग्रसेन आदि राजा, दक्षिण भाग में समुद्रविजय और अरिष्टनेमि आदि पुत्र तथा अन्य राजा, वाम पक्ष में युधिष्ठिर आदि पाँचों पांडव; तथा पृष्ठ भाग में भानु, भीरुक आदि अनेक यादवकुमार अवस्थित हो गए । इस प्रकार कृष्ण ने रात्रि में ही गरुडव्यूह की रचना पूरी कर दी ।

इसी समय गक्रोन्द्र ने भगवान् अरिष्टनेमि^१ के लिए अपना रथ और मातलि नाम का सारथि भेजा। उसने आकर नमस्कार किया और उन्हें सज्जित करके अमावृष्टि (एक यादव) को सेनापति पद पर प्रतिष्ठित कर दिया। कृष्ण के कटक में इस घटना पर इतना प्रबल जयनाद का गव्द हुआ कि जरासंध की सेना क्षुब्धित हो गई।

प्रातः काल ही दोनों ओर की सेनाओं में भयकर युद्ध प्रारम्भ हो गया। रक्त की धाराएँ बहने लगी। जरासंध की ओर से कई बार युद्ध नियमों का भंग हुआ किन्तु उसके सभी प्रमुख योद्धा—जयद्रथ, रुक्मि, शिशुपाल, कर्ण, दुर्योधन आदि वीरगति को प्राप्त हुए।

दूसरे दिन जरासंध अपने वचे-बुचे वीरों और अपने पुत्रों के साथ युद्धभूमि में उतरा। उसने वात की वात में समुद्रविजय के कई पुत्रों को मार डाला। उस समय वह साक्षात् काल के समान ही दिखाई पड़ रहा था। जिवर भी उसकी गदा घूम जाती यादव दल त्राहि-त्राहि पुकारने लगता। तब तक बलराम ने उसके २८ पुत्रों को मृत्यु की गोद में मुला दिया। पुत्रों की मृत्यु से तो वह साक्षात् आग ही हो गया। बलराम के वक्षस्थल पर भीषण गदा प्रहार किया तो वे रक्त वमन करके कटे वृक्ष की भाँति भूमि पर गिर पड़े। दूसरा गदा प्रहार करना चाहा तो धनुर्धारी अर्जुन बीच में आ गया। उसने बाणों की बाँछार से उसे रोक लिया। तब तक श्रीकृष्ण ने उसके ६६ पुत्रों को मार गिराया। जरासंध दौड़कर कृष्ण के सम्मुख जा पहुँचा और अफवाह फैला दी—‘श्रीकृष्ण मारे गए।’ इस अफवाह को सुनकर अरिष्टनेमि का सारथी मातलि घबड़ाया। उसने उनसे प्रार्थना की—

-
- १ (क) शुभचन्द्राचार्य के पांडव पुराण में अरिष्टनेमि के युद्ध में सम्मिलित होने का उल्लेख नहीं है। सिर्फ इतना ही उल्लेख है कि—नारद से जरासंध के युद्ध हेतु आगमन को जानकर कृष्ण ने उनसे अपनी जय वे सम्बन्ध में पूछा तो भगवान् ने मदहास्यपूर्वक ‘ओम्’ शब्द कहा। कृष्ण अपनी विजय के प्रति आश्वस्त हो गए। (पांडव पुराण १६/१२-१४)
- (ख) जिनसेन के उत्तर पुराण में भी यही वर्णन है। (७१/६८-७२)

—प्रभु ! यद्यपि आप सावद्य कर्म से विरत हैं किन्तु इस समय यादव कुल को बचाने के लिए कुछ लीला तो दिखाइये । यद्यपि आपके समक्ष जरासध मच्छर है किन्तु इस समय उसकी उपेक्षा उचित नहीं ।

मातलि की ओर देखकर प्रभु ने उसका अभिप्राय समझा और अपना पौरन्दर नाम का गख फूँक दिया । गख ध्वनि दिशाओं में गूँज गई । यादव सेना स्थिर हुई और गत्रु सेना अस्थिर । सारथी ने उनका रथ समस्त रणभूमि में घुमाया । अरिष्टनेमि ने हजारों ही वाण बरसाए । किसी का रथ भग हो गया तो किसी का क्षत्र और कोई-कोई तो शस्त्र विहीन ही हो गया । उनके अतुल पराक्रम के समक्ष युद्ध की तो बात ही क्या, किसी का सामने आने का भी साहस नहीं हुआ । अकेले अरिष्टनेमि ने ही एक लाख मुकुटधारी राजाओं को भग्न कर दिया । प्रतिवामुदेव वासुदेव द्वारा ही बध्य होता है—इस नियम की मर्यादा को ध्यान में रखकर उन्होंने जरासध को मारा नहीं ।

इतने में बलराम भी स्वस्थ हो गए और यादव सेना का जोश भी द्विगुणित हो गया । पुनः सेनाओं में युद्ध होने लगा । जरासध ने कृष्ण के सम्मुख आकर कहा—

—कृष्ण ! अब तक तो तुम कपट से जीवित रहे । छल और प्रपच से ही तुमने कस को मारा और कालकुमार को काल कवलित किया । अब मरने के लिए तैयार हो जाओ ।

मुस्कराकर कृष्ण ने उत्तर दिया—

—व्यर्थ की बातों से क्या लाभ ? शक्ति दिखाओ ।

जरासध और कृष्ण परस्पर झुंझ गए । धनुष-वाण, खड्ग, गदा आदि सभी युद्धों में जरासध की पराजय हुई । तब उसने अमोघ अस्त्र चक्र का प्रयोग किया किन्तु वह भी कृष्ण की प्रदक्षिणा देकर उनके हाथ में आ गया । एक बार कृष्ण ने उसे फिर सावधान किया किन्तु जरासध न माना । चक्र का प्रयोग करके उन्होंने जरासध का शिर-च्छेद कर दिया ।

उसी समय आकाश से देवो ने पुष्पवृष्टि की और जय-जयकार के बीच घोषणा की—‘नवे वासुदेव का उदय हो गया है।’

सभी राजा और सुभट अरिष्टनेमि के चरणों में जाकर उनसे विनय करने लगे—

—हे स्वामिन ! हमने आपका विरोध किया । हमें क्षमा कीजिए ।

उन सबको लेकर अरिष्टनेमि श्रीकृष्ण के पास आए । कृष्ण पहने तो अपने भाई में मिने और फिर सभी राजाओं को अभय दिया । अरिष्टनेमि के कहने तथा समुद्रविजय की आज्ञा से उन्होंने जरासंध के अवगेष पुत्रों का स्वागत किया । जरासंध के पुत्र सहदेव को मगध के चतुर्थ भाग का शासक बनाया । समुद्रविजय के पुत्र महानेमि को शौर्यपुर का राज्य दिया । हिरण्यनाभ के पुत्र ह्वमनाभ को कौशल देश का राजा बनाया । उग्रसेन के पुत्र धर को मथुरा का राज्य मिला ।

गक्रोन्द्र का मारुति मातलि भी अरिष्टनेमि को नमन कर रथ लेकर चला गया और सभी राजा अपने-अपने नगरों की ओर चल दिए ।

दूसरे दिन वसुदेव, प्रद्युम्न और शांब अनेक विद्याधरों पर विजय प्राप्त कर लौट आए । जरासंध और उसके अनुचर पूर्ण रूप से पराजित हो चुके थे ।

सहदेव ने अपने पिता जरासंध का अग्नि संस्कार किया और जीवयशा अपने पिता की मृत्यु जानकर अग्नि में जल मरी ।

कृष्ण ने सेनपल्ली ग्राम का नाम आनन्दपुर रखा और तीन खण्ड को विजय करने चल दिए । छह माह में उनकी विजय पूरी हो गई ।

द्वारका लौटने के पश्चात् अर्द्ध चक्रेश्वर के रूप में उनका अभिषेक बड़ी धूमधाम से मनाया गया । वासुदेव श्रीकृष्ण की समृद्धि विगाल थी—समुद्रविजय आदि बलवान दगार्ह, बलदेव आदि पाँच महावीर तो थे ही किन्तु उग्रसेन आदि सोलह हजार राजा, प्रद्युम्न आदि साठे तीन करोड़ कुमार, शांबादिक साठ हजार दुर्दान्त कुमार, वीरसेन प्रमुख इक्कीस हजार वीर, महासेन आदि महा बलवान सुभट

और अनुचरो के अतिरिक्त डम्प, श्रेष्ठि, मार्यपति आदि हजारो पुरुष अंजलि बाँधकर उनकी सेवा और आज्ञापालन में खड़े रहते थे ।

एक बार सोलह हजार राजाओं ने अपनी दो-दो पुत्रियाँ वासुदेव कृष्ण को दी । उनमें से सोलह हजार कन्याएँ तो श्रीकृष्ण ने स्वयं परणी, आठ हजार कन्याओं का विवाह बलराम से कर दिया और शेष आठ हजार का कुमारो के साथ लग्न कर दिया गया ।

श्रीकृष्ण, बलराम और सभी यादवकुमार मुखपूर्वक समय विताने लगे ।

—त्रिपण्डि० ८/७-८

—उत्तरपुराण ७१/५२-१२८

विशेष ? वैदिक साहित्य में जरामध युद्ध न होकर जरामध वध का वर्णन है । इन परम्परा के प्रमुख ग्रन्थ महाभारत में यह वर्णन निम्न प्रकार है—

कमवध होते ही जरामध की पुत्री जीवयशा विधवा हो गई और जरामध इसी कारण कृष्ण से शत्रुता मानने लगा । उसने ६६ बार घुमा कर गदा फेंकी जो मथुरा के पाम जाकर गिरी किन्तु कृष्ण की कोई हानि न हुई । उसने सत्रह बार मथुरा पर आक्रमण भी किया किन्तु नफल न हो सका । मथुरा की प्रजा भी बहुत पीड़ित हो गई तब अठारहवीं बार के आक्रमण के अवसर पर श्रीकृष्ण मथुरा में भागे और समुद्र तट के पाम जाकर द्वारका बसाई ।

किन्तु कृष्ण ने समझ लिया, कि जरामध को युद्ध में मारना बहुत कठिन है । अब भीमसेन और अर्जुन के साथ वे ब्राह्मणों के वेश में जरामध की सभा में पहुँचे । जरामध ने उठकर उचित स्वागत किया । कुशल आदि पूछी । कृष्ण ने कह दिया कि 'अभी इनका मौन है । अर्द्धरात्रि को बातें हो सकेंगी ।' तीनों को यज्ञशाला में ठहरा दिया गया ।

अर्द्धरात्रि को जरासध यज्ञशाला में आया। उस समय उसने कहा—‘आप लोग मुझे ब्राह्मण नहीं लगते। क्षात्र तेज स्पष्ट झलक रहा है।’ तब कृष्ण ने अपना और दोनों पांडु-पुत्रों का परिचय दिया और कहा हमसे जिसे चाहो द्वन्द्व युद्ध के लिए चुन लो। उसका अपराध कृष्ण ने यह बताया कि तुम क्षत्रियों की वलि देकर महादेव को प्रसन्न करना चाहते हो। इसीलिए हम तुम्हें मारना चाहते हैं।

जरासध ने भीम से युद्ध करना स्वीकार कर लिया। कार्तिक कृष्णा प्रतिपदा से चतुर्दशी तक दोनों का युद्ध चलता रहा। दोनों वीरों ने विभिन्न प्रकार का द्वन्द्व युद्ध किया। चौदहवें दिन जब जरासध थक गया तो श्रीकृष्ण ने भीम को प्रेरित किया—‘कुन्तीपुत्र! थके हुए शत्रु को सरलता से मारा जा सकता है।’

भीम इस प्रेरणा से और भी उत्साहित हो गया। उसने बड़े वेग से उम पर हमला किया और उसे ऊपर उठाकर तीव्र गति से घुमाने लगा। सौ बार घुमाकर पृथ्वी पर दे मारा और घुटना मार कर उसकी पीठ की हड्डी तोड़ दी। फिर पृथ्वी पर खूब रगड़ा और टांगें चीरकर दो टुकड़े कर दिए। जरासध यमलोक को चला गया।

सभी वन्दी राजाओं को बन्दीगृह में मुक्त करके उन्होंने जरासध के पुत्र सहदेव को मगध का शासक बना दिया।

—महाभारत, सभापर्व, अध्याय १६-२४

२ देवप्रभसूरि के पांडव पुराण के अनुसार महाभारत युद्ध अलग से हुआ था। इसमें पांडव विजयी हुए तथा कौरव मारे गए।

वैदिक ग्रन्थ महाभारत के अनुसार महाभारत युद्ध के नायक कौग्व-पांडव थे और पितामह भीष्म, गुरु द्रोणाचार्य, गुरुपुत्र अश्वत्थामा कृपाचार्य आदि सभी धनुर्धर तथा योद्धा कौरवों के पक्ष में लड़े और वीरगति को प्राप्त हुए। योद्धाओं के नाम पर केवल पाँच पांडव ही रह गए। धृतराष्ट्र तो बेचारे अन्धे थे ही। यहाँ कृष्ण युद्ध के नायक नहीं हैं। उन्होंने कोई भाग भी नहीं लिया। केवल अर्जुन के सारथी बने। हाथ में शस्त्र भी नहीं उठाया। हाँ, नीति अवश्य ही उनकी चली और उसी नीति के कारण पांडवों को विजय मिली।

नारद की करतूत

५

द्वारका के एक सद्गृहस्थ धनसेन ने राजा उग्रसेन के पुत्र नभ सेन के साथ अपनी पुत्री कमलामेला का विवाह निश्चित कर दिया। साधारण सी स्थिति का व्यक्ति था धनसेन; अतः कार्य का समस्त भार उसी पर आ पड़ा।

नारदजी डघर-उधर घूमते हुए उसके घर जा पहुँचे। किन्तु व्यस्त होने के कारण वह उनकी ओर न देख पाया। स्पष्ट ही यह नारदजी का अपमान था और इस अपमान का बदला लिए बिना वे कैसे रह सकते थे? वहाँ से चले तो सीधे सागरचन्द्र के पास जा पहुँचे।

सागरचन्द्र श्रीकृष्ण के बड़े भाई बलराम का पौत्र और निषध का पुत्र था। उसकी घनिष्ठ मित्रता थी शत्रु से। सागरचन्द्र ने देवर्षि को देखा तो तुरन्त उठकर सत्कार किया। सतुष्ट होकर नारद जी आसन पर विराजे। सागरचन्द्र ने पूछा—

—नारदजी! आप तो सदा भ्रमण करते ही रहते हैं, कोई आश्चर्यजनक वस्तु देखी हो तो बताइये।

—मुझे तो धनसेन की पुत्री कमलामेला के समान दूसरी कोई वस्तु नहीं जँची।

—क्या विशेषता है उसमें?

—एक कुलीन कुमारी कन्या मे जो विशेषताएँ होनी चाहिए वे सभी उसमें हैं। इसके अतिरिक्त अनुपम सुन्दरी है वह।

सुन्दरता और वह भी किसी कुमारी कन्या की—ऐसी वस्तु है

जिसकी ओर पुरुष का चित्त आकर्षित हो ही जाता है। सागरचन्द्र भी अनुरक्त हो गया।

नारदजी उठकर चल दिए, अब उनका वहाँ क्या काम ? सीधे जा पहुँचे कमलामेला के पास। उसने भी यही प्रश्न किया—

- कोई आश्चर्यकारी वस्तु बताइये।

- गम्भीर होकर नारदजी बोले—

—पुत्री ! एक हो तो बताऊँ। मैंने तो दो वस्तुएँ देखी हैं।

—दोनों ही बताइये मुनिवर !

—कुरूपता मे आश्चर्य है नभ सेन और सौन्दर्य मे सागरचन्द्र।

कमलामेला विचार मे पड़ गई और नारदजी उठकर चल दिए। उसे अपने भाग्य से शिकायत हुई और नभ सेन से नफरत। कौन कुमारी कुरूप को अपना पति बनाना चाहेगी ? वह सागरचन्द्र की ओर अनुरक्त हो गई और उसका नाम जपने लगी।

यही दशा सागरचन्द्र की थी। वह भी सोते-जागते कमलामेला का नाम रटने लगा।

- एक दिन शाव ने आकर हास्य मे पीछे से उसकी आँखें मीच ली। महसा सागरचन्द्र के मुख से निकला—

—कौन ? कमलामेला आ गई क्या ?

—कमलामेला नहीं कमलामेलापक !—हँसकर शाव ने कहा और उसकी आँखों पर से अपने हाथ हटा लिए।

—आप ठीक कहते हैं। कमलामेला से मिलाप आप ही करा सकते हैं।

—मैं नहीं करा सकता।—शाव ने स्पष्ट इन्कार कर दिया।

अपना प्रयोजन मिट्ट करके हेतु उसने शाव को मदिरा पिलाई। मदिरा-प्रेमी तो वह था ही, अधिक पी गया और पीकर वहकने लगा। तब सागरचन्द्र ने उससे कमलामेला के मिलाप का वचन ले लिया। नशा उतरने के बाद शाव को वचन की याद आई तो पछताने लगा किन्तु अब हो भी क्या सकता था। वचन तो पूरा करना ही पड़ेगा। सागरचन्द्र भी उससे बार-बार आग्रह करने लगा।

शाव ने प्रज्ञप्ति विद्या द्वारा कमलामेला और उसके पिता धनसेन का पूरा परिचय प्राप्त किया ।

अब चिन्ता यह थी कि कार्य कैसे संपन्न किया जाय । द्वारका के शासक श्रीकृष्ण हैं और उनके रहते नगरी में से किसी कन्या का अपहरण अथवा उसके पिता पर दवाव असंभव है । काफी ऊहापोह के बाद एक युक्ति सोच ली गई । युक्ति थी—नगर के बाहर उद्यान से से कमलामेला के कक्ष तक सुरंग बनाना और फिर उसी मार्ग से कन्या को लाकर सागरचन्द्र के साथ उसका लग्न कर देना ।

अथक परिश्रम करके शाव ने सुरंग का निर्माण किया । कन्या के पास यादवकुमार सागरचन्द्र जा पहुँचा । अपना परिचय बताकर चलने को कहा । कमलामेला तो अनुरक्त थी ही तुरन्त चल दी । उद्यान में आकर उसका लग्न भी हो गया ।

धनसेन को विवाह के समय जब कन्या घर में न मिली तो चारों ओर खोज करने लगा । खोजते-खोजते नगर के बाहर उद्यान में उसे अपनी पुत्री विद्याधर रूपी यादवकुमारों के मध्य बैठी हुई दिखाई पड़ी । दाँत पीसकर रह गया धनसेन । यादवकुमारों से वह भिड नहीं सकता था । इतनी शक्ति ही कहाँ थी ?

शीघ्र ही जाकर वासुदेव श्रीकृष्ण से पुकार की—

—आपके राज्य में ऐसा अन्याय ? पिता को खबर भी नहीं और पुत्री को विद्याधर लोग ले उड़े ।

श्रीकृष्ण तुरन्त ही उद्यान में जा पहुँचे । उन्होंने विद्याधरों को युद्ध के लिए ललकारा । वासुदेव के कोप से प्रज्ञप्ति विद्या भाग गई और यादवकुमार अपने असली रूप में आ गए । यह देखकर कृष्ण को बड़ा आश्चर्य हुआ । तब तक शाव आदि सभी कुमार उनके चरणों में गिर पड़े और विनम्र स्वर में बोले—

—द्वारकानाय । कोप करने से पहले हमारी भी सुनले ।

—क्या कहना चाहते हो तुम लोग ?

—इस कन्या से ही पूछ लें कि हम इसे बलात् लाए हैं अथवा ...

कन्या ने बताया कि मैं तो स्वयं ही सागरचन्द्र से लग्न की इच्छुक थी ।

धनसेन ने प्रतिवाद किया—

—किन्तु इसका वाग्दान तो राजा उग्रसेन के पुत्र नभ सेन के साथ हो चुका है । वारात आ चुकी है । मैं क्या मुँह दिखाऊँ ?

तब श्रीकृष्ण ने शाव से पूछा—

—यह सब कैसे हुआ ?

शाव ने सम्पूर्ण घटना बता दी ।

होनी को प्रवल मानकर कृष्ण ने कहा—अब क्या हो सकता है ?

इसके बाद उन्होंने कुमार नभ सेन को समझा-बुझाकर लौटा दिया और कमलामेला सागरचन्द्र को सौंप दी ।

विवश सा रह गया धनसेन । न वह यादवकुमारो से कुछ कह सकता था और न द्वारकानाथ से ही । असमर्थ और निर्वल व्यक्ति समर्थ और बलवान के समक्ष कर भी क्या सकता है ?

अपमान का कड़वा घूँट पीकर रह गया और सागरचन्द्र के दोष देखने लगा ।

—त्रिषष्टि० ८/८

वाणासुर का अन्त

६

गुहनिवासपुर के खेचरपति वाण की पुत्री उषा ने अपने योग्य वर की प्राप्ति हेतु गौरी नाम की विद्या का आराधन किया। प्रगट होकर विद्या ने बताया—

—पुत्री ! तेरा वर अनिरुद्ध है।

—अनिरुद्ध कौन ?

—वासुदेव श्रीकृष्ण का पौत्र और वैदर्भी से उत्पन्न प्रद्युम्न का पुत्र। वह इन्द्र के समान ही रूपवान और बलवान है।

विद्या अदृश्य हो गई और उषा अनिरुद्ध के विचारों में खो गई।

खेचरपति वाण ने भी गौरी विद्या के प्रिय शकर नाम के देव की आराधना की। पुत्री को पति की कामना थी तो पिता को अजेय होने की। गकर प्रसन्न हुआ और उसने प्रकट होकर पूछा—

—क्या चाहते हो, विद्याधर ?

—मैं ससार में अजेय हो जाऊँ। रणभूमि में कोई मुझे जीत न सके।

देव ने तथास्तु कह दिया। किन्तु ज्यो ही गौरी विद्या को मालूम हुआ उसने तुरन्त सावधान किया—देव ! तुम्हारा यह वरदान मिथ्या है।

—क्यों ?—अचकचाकर शकर ने पूछा।

—इसलिए कि वाण खेचरपति अजेय नहीं है। इसकी मृत्यु वासुदेव श्रीकृष्ण के हाथों युद्ध भूमि में ही होगी।

—अब क्या करूँ ?

—अभी वाण आराधना में ही बैठा है। उसे तुम्हारे चले आने का भान भी नहीं है। तुरन्त जाओ और अपने कथन में इतना और बढ़ा दो—‘स्त्री के कार्य के अतिरिक्त !’

शकर देव पुनः वाण के सामने प्रगट हुआ और बोला—

—खेचरपति ! स्त्री सम्बन्धी युद्ध के अतिरिक्त सभी युद्धों में तुम अजेय रहोगे।

वाण ने समझा कि उसे पूरा वरदान अब मिला है। उसकी साधना अब सफल हुई है। वह प्रसन्न हो गया।

×

×

×

उषा अनिघ सुन्दरी थी। अनेक विद्याधरो ने उसकी याचना की किन्तु खेचरपति वाण ने कोई स्वीकार नहीं की। वह किसी विशिष्ट पुरुष की आशा लगाये बैठा था और उधर पुत्री उषा अनिरुद्ध के नाम की माला जप रही थी। अन्यो की याचना स्वीकार कैसे होती ?

एक रात्रि उषा ने अपनी प्रिय विद्याधरी से अपनी हृदय व्यथा कही और अनिरुद्ध को लाने का आग्रह किया। चित्रलेखा ने उसकी इच्छा पूरी की। सोते हुए अनिरुद्ध को उठा लाई। किसी को कानों कान खबर न लगी।

उसी रात्रि उषा-अनिरुद्ध का गाथर्व विवाह होगया। उषा तो अनुरक्त थी ही, उसकी सुन्दरता पर अनिरुद्ध भी मोहित हो गया। जब उसे लेकर चलने लगा तो उद्घोषणा की—

—विद्याधर वाण और उसके सुभट कान खोलकर सुन ले मैं वासुदेव श्रीकृष्ण का पौत्र और प्रद्युम्न का पुत्र अनिरुद्ध उषा की इच्छा से उसका हरण कर रहा हूँ, साहस हो तो मुझे रोके।

वाण क्रोध में भर गया। उसकी सेना ने अनिरुद्ध को चारों ओर से घेर लिया। तब उषा ने उसे पाठमिद्ध^१ विद्याएँ दी। उन-विद्याओं

१ पाठमिद्ध-विद्याएँ वे होती हैं जिन्हें सिद्ध नहीं करना पड़ता केवल पढ़ते ही काम करने लगती हैं।

के बल से अनिरुद्ध युद्ध करने लगा। जब काफी देर हो गई और अनिरुद्ध पर बाण विजय प्राप्त नहीं कर पाया तो नागपाश में उसे बाँध लिया। अनिरुद्ध विवश हो गया। बाण ने व्यग किया—

—तुम्हारी तो कुल परम्परा ही है, कुमारियों का हरण करना। यही तुम्हारे प्रपिता कृष्ण ने किया, यही प्रद्युम्न ने और अब तुम भी उसी राह पर चले हो। किन्तु अब बन्दीगृह की हवा खाओ।

नागपाश में बाँधा अनिरुद्ध कुछ उत्तर न दे सका।

×

×

×

×

इधर जब प्रातः काल अनिरुद्ध शय्या पर नहीं मिला तो सभी को चिन्ता हुई। प्रज्ञप्ति विद्या ने वासुदेव को बताया कि 'अनिरुद्ध तो नागपाश में जकड़ा शुभनिवासपुर के बन्दीगृह में पड़ा है।'

पौत्र रक्षा हेतु श्रीकृष्ण बड़े भाई बलराम और पुत्र प्रद्युम्न, आदि के साथ बड़ी सेना लेकर चल दिए। बाण भी युद्ध हेतु निकल आया। उसने कटूक्ति की—

—दो चोर तीसरे चोर का पक्ष लेकर आए हैं।

—हम किसी का कुछ नहीं चुराते। —वासुदेव ने कटूक्ति का उत्तर गम्भीरता से दिया।

—स्त्रियों को चुराना—यह तुम्हारा काम नहीं है क्या ?

—मिथ्या कहते हो विद्याधर ! हम कभी किसी स्त्री को उसकी इच्छा बिना बलात नहीं लाए।

—उसकी न सही, पिता-परिवारीजनो की इच्छा बिना ही तो लाते हो।

—नहीं, उनकी भी स्वीकृति से।

—किन्तु यह नीति यहाँ नहीं चलेगी। जानते नहीं शकरदेव के वरदान से मैं अजेय हूँ।

—साधारण देव का वरदान सृष्टि का नियामक नहीं। शस्त्र उठाओ और देखो कौन अजेय है। —वासुदेव ने चुनौती दे दी।

वाण ने युद्ध प्रारम्भ कर दिया । श्रीकृष्ण और उसका युद्ध काफी देर तक चलता रहा, शस्त्रवल-विद्यावल सभी प्रयुक्त हुए । अन्त में वाण निरस्त्र हो गया और वासुदेव ने उसके शरीर के टुकड़े-टुकड़े कर दिए । अजेय वाण मारा गया । देव शंकर का वरदान भी उसे न बचा सका ।

वासुदेव उषा और अनिरुद्ध को साथ लेकर द्वारका लौट आए । वहाँ उनका विधिवत् विवाह कर दिया । वैदर्भी ने अपनी पुत्रवधू के के स्वागत में बहुत उत्सव किया ।

—त्रिषष्टि० ८/८

अरिष्टनेमि की प्रव्रज्या

७

पाचजन्य शख के तीव्र घोष से समस्त द्वारका नगरी स्तम्भित रह गई। श्रीकृष्ण और बलराम भी क्षुब्ध हो गए। एकाएक कृष्ण के हृदय में आशका उठी—‘क्या कोई दूसरा चक्रवर्ती उत्पन्न हो गया है अथवा इन्द्र स्वयं द्वारका में आया है।’ तभी अस्त्रागार के अधिकारी ने आकर उन्हें प्रणाम किया और बताया—

—स्वामी ! आपके अनुज अरिष्टनेमि ने अस्त्रशाला में आकर सुदर्शन चक्र को कुलाल चक्र की भाँति घुमा दिया, शार्ङ्ग धनुष को कमलनाल के समान मोड़ दिया, कौमुदी गदा एक साधारण छड़ी के समान घुमा डाली और पाचजन्य शख को इतने जोर से फूँका कि समस्त द्वारका भय से काँप उठी।

—तो क्या शखध्वनि अरिष्टनेमि ने की थी ? —कृष्ण ने साश्चर्य पूछा।

—हाँ स्वामी ! जिसकी प्रतिध्वनि अभी तक वातावरण में गूँज रही है।

—‘ठीक है ! तुम जाओ।’ कहकर कृष्ण ने अस्त्रागार अधिकारी को विदा कर दिया किन्तु वे उसकी बात पर विश्वास न कर सके। इन समस्त दिव्यशस्त्रों का प्रयोग वासुदेव के अतिरिक्त कोई नहीं कर सकता। इतना बली दूसरा होता ही नहीं। तो क्या अरिष्टनेमि मुझ से भी अधिक बलवान है ?

कृष्ण इस ऊहापोह में पड़े थे कि अरिष्टनेमि स्वयं वहाँ आ गए। कृष्ण ने पूछा—

—क्या तुमने शख फूँका था ?

—हाँ भैया ! —सहज उत्तर मिला ।

—और अन्य दिव्यशस्त्र भी ?

अरिष्टनेमि ने स्वीकृतिसूचक सिर हिला दिया । उनकी स्वीकृति से कृष्ण चकित रह गए । वे बोले—

—इन दिव्यशस्त्रों को प्रयोग करने की शक्ति मेरे अतिरिक्त और किसी में नहीं है । किन्तु तुम्हारे बल को जानकर मुझे अति प्रसन्नता हुई । व्यायामशाला में चलकर अपना भुजबल बताओ तथा मुझे और भी प्रसन्न करो ।

कृष्ण की चुनौती सुनकर अरिष्टनेमि ने सोचा—‘व्यायामशाला में यदि मैं इन्हे वक्षस्थल, भुजाओं, पाँवों से दवाऊँगा तो इनकी न जाने क्या दशा होगी ? साथ ही बड़े भाई की अविनय भी । इसलिए ऐसा करूँ कि इनकी इच्छा भी पूरी हो जाय और इन्हे कष्ट भी न हो तथा मैं भी अविनय का भोगी न बनूँ ।’ यह सोचकर उन्होंने कहा—

—आप मेरा बल ही तो देखना चाहते हैं, इसके लिए व्यायामशाला में जाने की आवश्यकता ?

—फिर ?

—आप अपनी भुजा फैला दीजिए । मैं उसे झुकाकर अपनी शक्ति का परिचय दे दूँगा ।

यह बात कृष्ण को पसन्द आई । उन्होंने अपनी दायी भुजा पूरी शक्ति से तान दी । अरिष्टनेमि ने उसे कमलनाल की भाँति झुका दिया । अब कृष्ण ने उनसे भुजा फैलाने का आग्रह किया । पहले तो अरिष्टनेमि न न करते रहे किन्तु विशेष आग्रह पर बायी भुजा लम्बी कर दी । कृष्ण उसे अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगाकर भी न झुका सके और बन्दर की तरह झूलने लगे । उन्होंने समझ लिया कि अरिष्टनेमि के बल की कोई सीमा नहीं है । भुजा छोड़कर उन्होंने आलिंगन किया और बोले—

—जिस तरह मेरे बल के कारण बड़े भैया बलराम ससार को तृण

के समान समझते हैं, उसी प्रकार तुम्हारे बल से आज मैंने भी ससार को तिनका समझ लिया ।

छोटे भाई के बल को देखकर प्रसन्नता तो स्वाभाविक ही थी किन्तु हृदय के एक कोने में से आगका के सर्प ने फन उठाया—कहीं यह मेरा राज्य हड़प ले तो ?^१ कृष्ण चिन्तातुर हो गए । उन्हें विचारमग्न देखकर अरिष्टनेमि चल दिए ।

अभी कृष्ण का विचार-प्रवाह चल ही रहा था—उनके मुख पर चिन्ता की रेखाएँ स्पष्ट थी कि बलराम आ गए । उन्होंने पूछा—
—क्या बात है कृष्ण ? चिन्तित क्यों हो ?

कृष्ण ने कहा—

—हमारा अनुज अरिष्टनेमि महाबली है । मैं उसकी भुजा से बन्दर की तरह झूल गया फिर भी झुका न पाया, जबकि उसने मेरी भुजा कमलनाल की भाँति मोड़ दी ।

—यह तो प्रसन्नता की बात है कि हमारा भाई ऐसा बली है ।

—प्रसन्नता के साथ-साथ चिन्ता भी है, यदि उसने सिंहासन छीन लिया तो ?...

१ इस घटना का वर्णन जिनसेनाचार्य ने अपने हरिवंश पुराण में दूसरे ढंग से किया है । संक्षिप्त घटना क्रम इस प्रकार है—

एक बार अरिष्टनेमि श्रीकृष्ण की राज्यसभा में गए । कृष्ण ने उन्हें संसम्मान विठाया । उस समय वीरता का प्रसंग चल रहा था । कोई अर्जुन की प्रशंसा कर रहा था, कोई भीम की और कोई श्रीकृष्ण की । तब बलराम ने कहा—जहाँ अतुलित बलशाली अरिष्टनेमि बैठे हो वहाँ किस वीर की प्रशंसा करनी । इस पर कृष्ण ने परीक्षा के लिए कहा । तब अरिष्टनेमि ने कहा—मल्लयुद्ध से क्या लाभ ? आप मेरा पाँव ही हिला दें । श्रीकृष्ण अपनी भरपूर शक्ति लगाने पर भी उन्नका चरण न हिला सके । तब उन्हें महान् बली समझकर उनके हृदय में सिंहासन के प्रति चिन्ता व्याप्त हो गई ।

(हरिवंश पुराण, ५५/१-१३)

—नही, नही, । यह गका निराधार है । देखते नहीं वह सासारिक सुखो से—राज्य से कितना निस्पृह है ?

—चित्तवृत्ति बदलते देर नहीं लगती ।

तभी आकाश से देववाणी हुई—

—अरिष्टनेमि की चित्तवृत्ति कभी नहीं बदलेगी । वे तुम्हारे राज्य से क्या, ससार से ही निस्पृह हैं ।

वलराम और कृष्ण आकाश की ओर देखने लगे । देवताओं ने अपना कथन स्पष्ट किया—

—तीर्थंकर नमिनाथ ने कहा था कि मेरे बाद होने वाले तीर्थंकर अरिष्टनेमि कुमार अवस्था में ही प्रव्रजित हो जायेंगे । इसलिए हे कृष्ण ! अपने सिंहासन की चिन्ता मत करो ।

देव-वाणी सुनकर कृष्ण सिंहासन के प्रति तो निश्चित हो गए किन्तु भाई के कुमार अवस्था में ही प्रव्रजित होने की बात सुनकर चिन्ता व्याप्त हो गई । एक चिन्ता छूटी तो दूसरी लगी । अब वे अरिष्टनेमि को ससार की ओर आकृष्ट करने में प्रवृत्त हुए । उन्होंने अपनी रानियों से कहा—अरिष्टनेमि युवावस्था में भी ससार-सुखों से विरक्त सा है तुम्हें उसे आकृष्ट करना चाहिए ।

पति का सकेत पत्नियाँ समझ गईं । वे अरिष्टनेमि के साथ क्रीड़ा करने लगीं । भाँति-भाँति के हाव-भाव और कटाक्षों से उन्हें ससार सुख की ओर प्रेरित करती किन्तु अरिष्टनेमि के हृदय में विकार उत्पन्न ही नहीं होता ।

एक दिन सभी लोग वसन्त क्रीड़ा हेतु उद्यान में गए । अरिष्टनेमि को भी कृष्ण की पत्नियाँ खींच ले गईं । सबने उनके साथ जल-क्रीड़ा की । भाभियों की जल-क्रीड़ा का प्रत्युत्तर उन्होंने भी दिया । इस प्रत्युत्तर से उत्साहित होकर सत्यभामा ने कहा—

—देवरजी ! तुम विवाह क्यों नहीं कर लेते ?

जाम्बवती ने कहा—

—यादव कुल में एक तुम्हीं हो जो ब्रह्मचर्य का पालन कर रहे हो ।

—मुझे स्त्री की कोई इच्छा नहीं है । —अरिष्टनेमि ने निर्विकार भाव से कह दिया ।

—स्त्री की इच्छा नहीं, या स्त्री के योग्य नहीं । —सत्यभामा ने विनोद किया ।

—कुछ भी कहो । जब ससार में रहना नहीं, उसे छोड़ना ही है तो विवाह की बात ही क्यों सोचनी ?

—विवाह तो तुम्हें करना ही पड़ेगा । —कृष्ण ने आकर कहा ।

—नहीं भैया । मुझे इस झझट में मत फँसाइये ।

—तो क्या हम सभी को दुखी करोगे ?

—मुझे प्रव्रजित तो होना ही है फिर विवाह से क्या लाभ ?

कृष्ण ने समझाया—

—देखो बन्धु । मैं तुम्हारी प्रव्रज्या में विघ्न नहीं डालना चाहता किन्तु यह अवश्य चाहता हूँ कि कुछ दिन गृहस्थाश्रम का पालन करो । आदि जिन ऋषभदेव भी गृहस्थाश्रम को भोग कर ही प्रव्रजित हुए थे और हमारे वंश में उत्पन्न हुए बीसवें तीर्थंकर मुनिसुव्रत ने भी गृहस्थाश्रम भोगा था । गृहस्थाश्रम मुक्ति में बाधक नहीं है ।

१ हरिवंश पुराण में जलक्रीडा से पश्चात् शख फूँकने की घटना का वर्णन है । उसका कारण इस प्रकार दिया है—

जलक्रीडा के पश्चात् अरिष्टनेमि ने अपने गीले वस्त्र निचोड़ने के लिए जाववती की ओर देखा तो उसने कटाक्षपूर्वक उत्तर दिया— मैं उन श्रीकृष्ण की पत्नी हूँ जिनका बल-पराक्रम विश्व विख्यात है । क्या आप उनसे अधिक दली हैं जो मुझसे वस्त्र निचोड़ने की आशा कर रहे हैं ? तब अपना बल दिखाने के लिए ही अरिष्टनेमि कृष्ण की आयुध-शाला में गए और पाचजन्य शख फूँका ।

—हरिवंश पुराण ५५/२६-७१

उत्तर पुराण में जाववती की वजाय सत्यभामा का नाम दिया है । शेष घटना क्रम यही है ।

—उत्तर पुराण ७१/१३५-३६

इस तर्क का उत्तर अरिष्टनेमि के पास नहीं था। वे चुप रह गए। कृष्ण ने उनके मौन को स्वीकृति समझा और समुद्रविजय आदि से कह दिया। उनके योग्य कन्या भी खोज ली गई उग्रसेन की पुत्री राजीमती।

समुद्रविजय ने नैमित्तिक कौष्ठिक से विवाह के लिये शुभ लग्न पूछा तो उसने कहा—

—राजन्! वर्षा ऋतु में कोई भी सासारिक शुभ कार्य नहीं किया जाता तो विवाह।

—विवाह का मुहूर्त तो शीघ्र ही निकालिए। देर करना उचित नहीं है। बड़ी कठिनाई से कृष्ण उसे राजी कर सका है।—समुद्रविजय ने आतुरता दिखाई।

कौष्ठिक ने स्थिति की गम्भीरता समझी और श्रावण शुक्ला ६ का मुहूर्त निकाल दिया।

वारात सज-धज कर चल दी। राजीमती भी अरिष्टनेमि जैसे पति की प्राप्ति की आशा में मगन थी।

ज्यों ही अरिष्टनेमि का रथ नगरी के समीप आया तो उन्हें पशुओं की पुकार सुनाई दी। उन्होंने सारथी से पूछा—

—यह पुकार कैसी ?

—आपकी वारात में आये लोगो के भोजन के लिये इन पशुओं को पकड़ा गया है।—सारथी ने बताया।

अरिष्टनेमि का हृदय दया से भर गया। उनकी आज्ञा से सारथी ने रथ पशुओं के बाड़े के समीप जा खड़ा किया। उन्होंने अपने हाथ

१ हिरनो (पशुओं) को श्रीकृष्ण ने एकत्रित करवाया था। वह कार्य उन्होंने अरिष्टनेमि को ससार में विरक्त करने के लिए किया था।

से वाड़ा खोलकर पशुओं को मुक्त कर दिया और स्वयं वापिस लौट आये । वर्षादान देकर श्रावण शुक्ला पष्ठी को प्रव्रजित हो गये । चौवन (५४) दिन की छद्मस्थ अवस्था के बाद आश्विन कृष्ण अमावस्या को उन्हें केवलज्ञान की प्राप्ति हो गई ।

राजीमती ने भी सयम स्वीकार कर लिया ।

—त्रिपण्डि० ८।६

—उत्तरपुराण ७१/१३०-१८१

देवर्षि नारद के आने पर पाँचों पांडवों और कुंती आदि सभी ने उठकर उनका स्वागत किया किन्तु द्रौपदी ने उन्हें असयत जानकर उनकी पर्युपासना नहीं की।^१ ऊपर से भद्र और विनयी दिखाई देने वाले नारद द्रौपदी के इस व्यवहार पर जल उठे। किन्तु उस समय वे अपने मनोभावों को छिपाकर पांडुराजा से कुशलक्षेम की बात-चीत करके चले गए।

नारदजी हस्तिनापुर के अन्तःपुर से चले तो आए किन्तु उनके हृदय में द्रौपदी के अशिष्ट व्यवहार से उत्पन्न हुई शल्य खटकती रही। वे यही सोचते रहे कि द्रौपदी को किम उपाय से कष्ट पहुँचाया जाय ? क्या किया जाये कि उसका दर्प-दलित हो ?

सती स्त्री को दारुण-दुःख एक ही होता है—पति-विछोह। नारदजी इसी उपाय पर विचार करने लगे। उन्होंने सोचा—‘दक्षिण भरतार्द्ध’

१ (क) ज्ञानाधर्म में नारद का नाम कच्छुल्ल बताया है—

तए ण ना दोवड्ढेवी कच्छुल्ल नारय अविरय अप्पडिह्य-
पच्चक्खायपावकम्म ति कट्ठु नो आढोड नो परियाणाड नो
अवमुट्ठेइ, नो पज्जुवामाड।

(ज्ञानाधर्मकथा, अध्ययन १६, सूत्र १६०)

(ख) हरिवंश पुराण में द्रौपदी की इस अशिष्टता का दूसरा कारण बताया गया है—

द्रौपदी आभूषण धारण करने में व्यस्त थी, अतः उसने नारद को देखा नहीं।

—हरिवंश पुराण ५४।५

मे तो श्रीकृष्ण के भय से कोई राजा न उसका हरण कर सकता है और न ही किसी अन्य उपाय से उसे उत्पीडित कर सकता है ।’

‘किसी अन्य स्थान पर जाऊँ । इसका अप्रिय करना ही मुझे इष्ट है ।’ यह विचार करके नारद आकाश मार्ग से उड़ते हुए धातकीखड के भरतक्षेत्र की अमरकका नगरी जा पहुँचे ।

अमरकका नगरी का अधिपति राजा पद्मनाभ विलासी और व्यभिचारी स्वभाव का था । वह अपने क्षेत्र के वामुदेव कपिल के अधीन था । नारद ने उसे अपने इष्ट की पूर्ति में उपयुक्त पात्र समझा और वहाँ उतर पड़े ।

पद्म ने नारद का उचित आदर किया और अपना अन्तःपुर दिखाने ले गया । उसके अन्तःपुर में एक-से-एक सुन्दर स्त्रियाँ थी । रानियों का प्रदर्शन करने के बाद पद्म बोला—

—नारदजी ! आप तो अनेक स्थानों पर घूमते हैं । इससे सुन्दर अन्तःपुर आपने कहीं और देखा है ?

नारदजी खिल-खिलाकर हँस पड़े । पद्मनाभ तो सोच रहा था कि वे उसकी प्रशंसा करेंगे किन्तु नारद की व्यगपूर्ण हँसी ने उसके अरमान मिट्टी में मिला दिये । पूछने लगा—

—आप हँस क्यों पड़े ?

—तुम्हारी कूप-मंडूकता पर ।

—कैसे ?

—तुम जिस अन्तःपुर को सुन्दरियों का समूह समझ रहे हो, उनमें सुन्दरता है ही कहाँ ? तुम क्या जानो सुन्दरता किसे कहते हैं ?

पद्मनाभ के गर्व को चोट लगी—

—इनसे अधिक सुन्दर स्त्री और कहाँ है, बताइये ।

—कितनी गिनाऊँ ? बहुत है । एक से एक सुन्दर ।

—उनमें से सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी ही बता दीजिए ।

नारदजी कहने लगे—

—राजन् ! यो तो ससार में एक-से-एक सुन्दर स्त्री है, परन्तु

जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में हस्तिनापुर के पांडुराजा की पुत्रवधू सर्वश्रेष्ठ है। तुम्हारा सम्पूर्ण अन्त पुर उसके पैर के एक नाखून की भी समता नहीं कर सकता।

—ऐसी सुन्दर हैं?—पद्मनाभ ने विस्मित होकर पूछा।

—हाँ ऐसी ही।—नारद ने प्रत्युत्तर दिया।

नारद के मुख से द्रौपदी की प्रशंसा सुनकर पद्मनाभ की आँखों में चमक आ गई। उसके हृदय में काम जाग्रत हो गया। नारदजी ने देखा कि तीर निशाने पर लगा है तो उठकर खड़े हो गए। पद्मनाभ ने उन्हें सत्कारपूर्वक विदा कर दिया।

देवर्षि नारद तो उसकी वासना भड़का कर चले गए पर अब पद्मनाभ को चैन कहाँ? वह कल्पना में ही द्रौपदी की सुन्दरता के चित्र बनाने लगा। किन्तु कल्पना से काम नहीं चलता, फल प्राप्ति के लिए कर्म आवश्यक है। उसने अपने इष्टदेव का स्मरण किया। उसका इष्टदेव पातालवासी सागतिक देव था। आराधना से प्रसन्न होकर वह प्रकट हुआ और बोला—

—पद्मनाभ! मुझे क्यों स्मरण किया? तुम्हारा क्या काम करूँ?

अजलि बाँध कर पद्मनाभ ने कहा—

—द्रौपदी को लाओ।

सागतिक देव ने अवधिज्ञान से उपयोग लगाकर देखा और पद्मनाभ से कहने लगा—

—राजन्! द्रौपदी पांडवों के अतिरिक्त और किसी की इच्छा नहीं करती। उसे बुलाना व्यर्थ है।

—जब वह यहाँ आ जायेगी तो मैं उसे मना लूँगा। तुम उसे यहाँ ले आओ।

देव ने समझ लिया कि पद्मनाभ मानेगा नहीं। इसलिए वह 'जैसी तुम्हारी इच्छा' कहकर अन्तर्धान हो गया।

रात्रि को हस्तिनापुर के अन्त पुर में सागतिक देव पहुँचा। उसने अवस्थापिनी विद्या से सबको गहरी नीद में सुला दिया और द्रौपदी को

हरण करके अमरककापुरी में राजा पद्मनाभ को सौंपकर अपने स्थान को चला गया। राजा पद्मनाभ द्रौपदी की सुन्दरता पर मुग्ध होकर उसके जागने की प्रतीक्षा करने लगा।

प्रातःकाल द्रौपदी की निद्रा टूटी तो उसने स्वयं को नए स्थान में पाया। न यह उसका अन्त पुर था और न उसके पार्श्व में सोये हुए युधिष्ठिर। महल भी उसका अपना नहीं था। वह विस्मित होकर चारों ओर देखने लगी। उसके मुख में निकला—यह स्वप्न है, या इन्द्र-जाल अथवा देवमाया ?

—न यह स्वप्न है, न इन्द्रजाल और न देवमाया वरन् यथार्थ है, सुन्दरी !—राजा पद्मनाभ ने सम्मुख आकर उत्तर दिया।

द्रौपदी राजा पद्मनाभ को देखती रह गई। ऊपर से नीचे तक देखने के बाद उसने पूछा—

—भद्र ! आप कौन हैं ? मेरे लिए अपरिचित ?

—देवी ! परिचित होने में कितनी देर लगती है ? वैसे मैं तो तुम्हें जानता ही हूँ। तुम द्रौपदी हो।

—हाँ मैं तो द्रौपदी ही हूँ किन्तु आप कौन हैं ?

—मैं, मैं पद्मनाभ हूँ।

—कौन पद्मनाथ ?

—अमरककापुरी का अधिपति।

द्रौपदी ने पुनः पूछा—

—आप अपना पूरा परिचय दीजिए। मैं इस समय कहाँ हूँ ? यहाँ कैसे आ गई ?

पद्मनाभ ने बताया—

—सुमुखि ! इस समय तुम घातकीखंड द्वीप के भरतक्षेत्र की अमरककानगरी में हो। तुम किसी बात की चिन्ता मत करो। मेरे साथ भोगो का आनंद उठाओ।

—तो तुमने मेरा हरण कराया है !—द्रौपदी के मुख से सहसा निकल पड़ा।

—तुम ठीक समझो—

—मुझे वापिस भेज दो अन्यथा

—अन्यथा क्या होगा ?

—तुम्हारा नाग ! पद्मनाभ तुम केवल मेरे नाम से ही परिचित हो। यह नहीं जानते कि मैं वासुदेव श्रीकृष्ण की वहिन हूँ। वे तुम्हारा सत्यानाश कर देंगे।

द्रौपदी के शब्दों को सुनकर खिलखिलाकर हँस पड़ा पद्मनाभ। कहने लगा—

—तुम भ्रम में हो द्रौपदी ! वे वासुदेव होंगे जम्बूद्वीप में स्थित भर-ताड के और यह धातकीखण्ड का भरतक्षेत्र है। नाम साम्य से तुम्हें भ्रम हो गया है। वे यहाँ मेरा कुछ न बिगाड़ सकेंगे। तुम्हें मेरी इच्छा स्वीकार करनी ही होगी।

पद्मनाभ की बात पर द्रौपदी विचारमग्न हो गई। उसने समझ लिया कि इस समय तो मैं इस व्यभिचारी के पजे में फँस गई हूँ अतः चतुराई से काम लेना पड़ेगा। उसने शान्त स्वर में कहा—

—ठीक है, अब तुम्हारी इच्छा स्वीकार करने के अतिरिक्त और उपाय भी क्या है। मैं तुम्हारी बात मानूँगी किन्तु एक शर्त है ...

—वह क्या ?

—मुझे कुछ समय चाहिए।

—क्यों ?

द्रौपदी ने मधुर स्वर में समझाया—

—राजन् ! तुम इतना भी नहीं जानते। अपने पति को स्त्री एकाएक कैसे भूल सकती है ? ठीक है कि तुमने मेरा अपहरण करा लिया। मेरा शरीर तुम्हारे वश में हो सकता है किन्तु मन को वश में करने के लिए कुछ समय तो चाहिए ही।

पद्मनाभ द्रौपदी के मधुर शब्दों से आश्चस्त सा हुआ। उसे लगा कि द्रौपदी का कथन यथार्थ है। ठीक ही तो कहती है कोई नारी अपने पति को, उसके साथ किये सुख-विलासों को अचानक ही कैसे भूल सकती है। हृदय कोई पट्टी तो है नहीं कि लिखा और मिटा दिया। इस प्रकार विचार करके बोला—

—कितना समय चाहिए, तुम्हें ?

—एक मास^१ का । यदि एक मास के अन्दर मेरे स्वजन मुझे यहाँ से ले जायेंगे तो ठीक अन्यथा •

मुस्कराकर पद्मनाभ ने कहा—

—तुम्हरी अवधि मुझे स्वीकार है । पर कितनी भोली हो तुम ? अव भी तुम्हें अपने स्वजनो के आने की आशा शेष है ।

पद्मनाभ तो द्रौपदी की इच्छा स्वीकार करके चल गया और द्रौपदी ने अभिग्रह ले लिया—‘पति बिना मैं एक मास तक भोजन नहीं करूँगी ।’^२

और वह अपनी आत्मा को इस तप से भावित करके रहने लगी ।

—त्रिषष्टि० ८।१०

- १ (क) हरिवंश पुराण में भी एक ही मास की अवधि का उल्लेख —
मासम्याम्यन्तरे भूप यदीह स्वजना मम ।
नागच्छन्ति तदा त्व मे कुरुष्व यदभीप्सितम् ॥

(हरिवंशपुराण ५४।३६)

- (ख) किंतु ज्ञाताधर्मकथा में छह माह की अवधि का उल्लेख है :—

“तए ण सा दोवईदेवी पउमणाम एव वयासी, एव खलु देवाणु-
प्पिया ! जबुद्धीवेदीवे भारहेवासे वारवइये नयरीए कण्हेणाम
वासुदेवे ममप्पिय भाउए परिवसइ, त जइ ण से छण्ह मासाण मम
कूव नो हव्वमागच्छइ ।” (ज्ञातासूत्र, अ० १६, सूत्र २०६)

२ ज्ञाताधर्म० में पष्ठ-पष्ठ आयविल तप का वर्णन है—

“तए ण सा दोवईदेवी छट्ठ छट्ठेण अण्णिकखत्तेण आयविल-
परिग्गहिण तवोकम्मेण अप्पाण भावेमाणी विहरइ ।”

(ज्ञाताधर्मकथा, अ० ६, सूत्र ३११)

प्रातः काल युधिष्ठिर को पार्श्व में सोई हुई द्रौपदी न दिखाई दी तो वे चिंतित हुए। सारा महल छान डाला गया किन्तु द्रौपदी कहीं न मिली।

पांडवों ने द्रौपदी की बहुत खोज कराई परन्तु सब प्रयास व्यर्थ हुए। अन्त में सब ओर से निराश होकर उन्होंने अपनी माता कुन्ती को बुलाया और कहा—

—तुम श्रीकृष्ण के पास जाओ और उनसे द्रौपदी की खोज करने की विनती करो।

पुत्रों की इच्छा जानकर कुन्ती द्वारका नगरी पहुँची। वासुदेव श्रीकृष्ण ने अपनी बुआ के चरण-स्पर्श करके स्वागत किया और आने का कारण पूछा। कुन्ती ने बताया—

—पुत्र युधिष्ठिर द्रौपदी के साथ सुखपूर्वक सो रहा था। जागने पर वह दिखाई न दी। न जाने कौन उसका हरण कर ले गया? हमने बहुत प्रयास किया किन्तु वह न मिली। वासुदेव! अब तुम्हीं उसकी खोज करो तो वह मिले अन्यथा मेरा अन्तर्मन कहता है कि उसका मिलना असंभव है।

वासुदेव ने द्रौपदी का हरण मुना तो उनके माथे पर बल पड़ गए। बोले—‘कौन ऐसा दुष्ट है जो अकारण ही काल का ग्रास बनना चाहता है।’ कुन्ती को आश्वासन देते हुए कहा—‘आप चिन्ता न कीजिए। मैं उसे अवश्य ही खोज निकालूँगा।’ यह कह कर उन्होंने कुन्ती को विदा कर दिया।

श्रीकृष्ण ने अपने अनुचर सभी दिशाओं में भेज दिए किन्तु द्रौपदी का पता कहीं न लगा।

प्राणीमात्र की इच्छा होती है कि अपने किये कार्य का परिणाम देखे। कच्छुल नारद भी अपने कार्य का परिणाम देखने द्वारका की राज्य सभा में जा पहुँचे। श्रीकृष्ण ने उनका यथोचित आदर किया और पूछा—

—नारदजी ! आप तो स्वच्छन्द विहारी हैं। सर्वत्र घूमते हैं। कहीं द्रौपदी भी नजर आई ?

—क्यों द्रौपदी को क्या हुआ ? —नारदजी ने आश्चर्य प्रगट किया।

—वह रात्रि को सोते हुए ही अदृश्य हो गई। न जाने कौन अपहरण कर ले गया ?

—ओह अव समझा। —नारदजी बोले—मैंने धातकीखण्ड के भरतक्षेत्र की अमरकका नगरी के अन्त पुर में द्रौपदी जैसी एक स्त्री देखी थी। मैं तो समझा कोई अन्य होगी। सम्भवत वही द्रौपदी हो, पर इतनी दूर कैसे पहुँच गई ?

—सब आपकी माया है। —श्रीकृष्ण ने मन्द मुस्कान के साथ कहा।

—मेरी क्यों, भाग्य की गति बड़ी बलवान हैं। नारदजी तुनके।

—चलिए, यही सही। अब यह भी बता दीजिये कि उस नगरी का राजा कौन है ?

—उस नगरी का राजा है, पद्मनाभ। —नारदजी ने बता दिया।

कुछ समय तक इधर-उधर की बातें करने के बाद नारदजी वहाँ से उड़ गये।

वासुदेव ने अनुचर द्वारा पांडवों को बुलवाया और उनसे बोले—

—राजा पद्मनाभ ने द्रौपदी का अपहरण कराया है। मैं वहाँ जाकर उसे वापिस ले आऊँगा। तुम खेद मत करो।

श्रीकृष्ण से आश्वासन पाकर पांडव सन्तुष्ट हुए। वासुदेव उनको साथ लेकर पूर्व दिशा के समुद्र की ओर चल दिए। समुद्र तट पर पहुँचते ही पांडवों के मुख उतर गए। वे श्रीकृष्ण से कहने लगे—

—वासुदेव ! यह समुद्र तो दुर्लभ है । इसमें पर्वत जैसे विशाल जन्तु है । कैसे पार कर सकेंगे, इसे ?

—मेरे होते हुए तुम्हें क्या चिन्ता ? वस देखते जाओ । —वासुदेव ने मुस्करा कर कहा और तट पर बैठकर लवण समुद्र के अधिष्ठायक सुस्थित देव की आराधना की ।

उनकी आराधना से प्रसन्न होकर सुस्थित देव प्रगट हुआ और पूछने लगा—

—तुम्हारा क्या काम करूँ ?

—अमरकका नगरी के राजा पद्मनाभ ने द्रौपदी का हरण कर लिया है । उसी को वापिस लाने के लिये तुम्हारी आराधना की है ।

—श्रीकृष्ण ने अपना अभिप्राय बताया ।

देव बोला—

—हे कृष्ण ! तुम कहो तो जिस प्रकार पद्मनाभ ने पातालवासी सागतिक देव के द्वारा द्रौपदी का अपहरण कराया है वैसे ही मैं भी उसे उठा लाऊँ ।

—नही देव ! इस प्रकार का कर्म चौर-कर्म कहलाता है । यह न तुम्हारे लिये शोभनीय है, न मेरे लिये ।

—तो, पद्मनाभ को उसके पुर, बल, वाहन आदि सहित समुद्र में डुवो दूँ ।

—नही, इस उपाय में व्यर्थ की हिंसा होगी ।

—तो फिर क्या करूँ ?

—तुम सिर्फ इतनी ही सहायता कर दो कि पांडवों सहित हमारे छहो रथ निर्विघ्न अमरकका नगरी तक पहुँच जायें ।

सुस्थित देव ने श्रीकृष्ण की इच्छा स्वीकार की और पाँचों पाँडवों तथा वासुदेव कृष्ण के रथ अमरकका नगरी जा पहुँचे ।

नगर के बाहरी उद्यान में रुककर श्रीकृष्ण ने अपने सारथि दारुक को समझाकर राजा पद्मनाभ की सभा में भेजा ।

बलवान स्वामी का दूत भी निर्द्वन्द्व और निर्भय होता है । दारुक

भी निर्भय पद्मनाभ की सभा में पहुँचा और योग्य अभिवादन करके बोला—

—राजन् ! यह तो मेरी व्यक्तिगत विनय प्रतिपत्ति है । अब मेरे स्वामी का सन्देश सुनिये ।

यह कहकर दारुक ने भ्रुकुटि चढाई, क्रोध से नेत्र लाल किये और उछल कर पद्मनाभ के सिंहासन में ठोकर मारी । इतने कार्य करने के पश्चात् उच्च स्वर से गर्जता हुआ कहने लगा—

—हे मृत्यु की इच्छा करने वाले, दुष्ट और व्यभिचारी ! श्री, ह्री और बुद्धि से रहित पद्मनाभ ! आज तू जीवित नहीं बच सकती । तूने श्रीकृष्ण की बहन द्रौपदी का अपहरण किया है । यदि तू अपने प्राण बचाना ही चाहता है तो द्रौपदी को तुरन्त सम्मान सहित लौटा दे ।

पहले तो दूत के इस अचानक परिवर्तित रूप को देख कर सम्पूर्ण सभा स्तब्ध रह गई किन्तु इस उद्धत व्यवहार से राजा पद्मनाभ कुपित हो गया । बोला—

—मैं द्रौपदी को नहीं दूँगा ।

—तो स्वयं को काल के मुख में प्रवेश हुआ ही समझो ।

—कौन पहुँचायेगा मुझे यमलोक ?

—स्वयं वासुदेव श्रीकृष्ण पाँचों पांडवों के साथ यहाँ आ गए हैं । वह तुम्हें यमलोक पहुँचाएँगे ।

—अच्छा हुआ, वे स्वयं यहाँ आ गए । अब देखना है कौन किसको यमलोक पहुँचाता है ? जाकर कह दो मैं स्वयं युद्ध के लिए तैयार होकर आ रहा हूँ । —पद्मनाभ ने रक्त नेत्रों से कहा ।

दूत को उसने पिछले द्वार से निकाल दिया ।^१

दारुक ने समस्त घटनाएँ श्रीकृष्ण से निवेदन कर दी ।

×

×

×

×

१. 'पिछले द्वार में निकालना' शब्द का अर्थ है बिना आदर मुत्कार के अपमानित करके निकाल देना ।

राजा पद्मनाभ अपनी सेना लेकर युद्ध हेतु नगर से बाहर निकला ।
उसे आया देखकर श्रीकृष्ण ने पांडवों से पूछा—

—तुम लोग युद्ध करोगे या मैं करूँ ?

—आप देखिए, हम लोग ही युद्ध करेंगे । पांडवों ने उत्तर दिया
और 'आज हम हैं या पद्मराजा है' यह प्रतिज्ञा कर पाँचों भाई युद्ध में
कूद पड़े ।

युद्ध में उतर तो पड़े पाँचों भाई किन्तु पद्मनाभ का सामना न कर
सके । उसके तीक्ष्ण वाणों से विह्वल हो गए । राजा पद्मनाभ ने अपने
तीव्र शस्त्रों से उनका गर्व नष्ट कर दिया । उनके ध्वजादि चिन्ह कट
कर नीचे गिर पड़े । उनका पराभव हो गया ।

पाँचों भाई युद्ध से परागमुख होकर श्रीकृष्ण के पास लज्जा से
नीचा मुख लिए लौट आये और बोले—

—यह पद्मनाभ राजा महापराक्रमी और दुर्बल है । हम इस पर
विजय नहीं प्राप्त कर सकते । अब आप ही कुछ कीजिए ।

मन्द मुस्कान के साथ वासुदेव कृष्ण बोले—

—पांडवों ! तुम्हारे हृदय में आत्मविश्वास की कमी थी । जाते
समय तुमने प्रतिज्ञा की थी कि 'आज हम हैं, या पद्मराजा है' । इसमें
तुमने पद्मनाभ को अपने समान ही बली मान लिया । और फिर तुम
पाँच भाई थे, वह अकेला । तुम्हारी शक्ति पाँच भागों में विभाजित
हो गई तो तुम कैसे जीत सकते थे ?

—तो हमको क्या प्रतिज्ञा करनी चाहिए थी । —पाँचों ने उत्सुक
होकर पूछा ।

—तुम्हें दृढ़ विश्वास के साथ प्रतिज्ञा करनी चाहिए थी 'हम ही हैं
पद्मनाभ नहीं ।' पांडवों ! दृढ़ आत्मविश्वास ही सफलता की कुंजी है ।

पांडवों ने सफलता के इस मन्त्र को हृदयगम किया ।

वासुदेव बोले—

—'मैं ही हूँ, पद्मनाभ नहीं' यह प्रतिज्ञा करके मैं युद्ध प्रारम्भ
करता हूँ । मेरी विजय निश्चित है । तुम लोग दूर खड़े रहकर देखो ।

यह कहकर वासुदेव ने अपनी रथ बढ़ाया और पद्मनाभ की सेना

के वीचोवीच जा पहुँचे । प्रथम ही उन्होंने सम्पूर्ण शक्ति से पांचजन्य शख को फूँका । शख की कठोर-ध्वनि दशो दिशाओं में गूँज गई । उस ध्वनि के कारण ही पद्मनाभ एक-तिहाई कटक हत हो गया ।

अभी शख-ध्वनि शान्त भी नहीं हो पाई थी कि कृष्ण ने अपना शार्ङ्ग धनुष हाथ में लेकर तीव्र धनुष्टकार किया और शत्रुराजा की दूसरी एक-तिहाई सेना भग हो गई ।

पद्मनाभ भयभीत हो गया । 'जिस महायोद्धा की मात्र शखध्वनि और धनुष्टकार से दो-तिहाई सेना नष्ट हो गई उसका सामना कैसे कर सकूँगा'—यह सोचकर पद्मनाभ अपने वचे-खुचे एक-तिहाई दल को लेकर नगरी में जा छिपा और द्वार बन्द करवा लिए ।

राजा पद्मनाभ की इस कायरता से कृष्ण को बड़ा क्रोध आया । उन्होंने उसका पीछा किया और अमरकका के द्वार तक जा पहुँचे । नगर-द्वार को बन्द देखकर वे रथ से उतर पड़े । समुद्धात से उन्होंने एक विशालकाय नरसिंह का रूप बनाया और घोर गर्जना करके पृथ्वी पर पाद-प्रहार करने लगे । उनके चरणाघात से पृथ्वी काँप गई और नगर की अट्टालिकाएँ तथा किन्ने की दीवारें गिरने लगी । नगर-निवासी प्राणों की रक्षा के लिए इधर-उधर भागने लगे । सभी के मुख से 'ब्राहिमाम्-ब्राहिमाम्' निकल रहा था ।

भयभीत राजा पद्मनाभ द्रौपदी के चरणों में जा गिरा । बोला—
—क्षमा करो, देवि । क्षमा करो । यमराज के समान भयकर श्रीकृष्ण से मेरी प्राण-रक्षा करो ।

—क्यों ? क्या काम-पिपासा शांत हो गई ?—द्रौपदी ने उलाहना दिया ।

—इस समय व्यग मत करो । मेरे प्राण सकट में हैं ।

—अब तो मालूम हो गया कि मैं किस महायोद्धा की वहन हूँ । मेरे अपहरण का परिणाम क्या है ?

—परिणाम ! परिणाम तो मैं क्या सारा नगर ही भोग रहा है ।

तब तक नगर-निवासियों की भयग्रस्त चीख-पुकार और 'रक्षा

करो-रक्षा करो' गव्व द्रौपदी के कानो पड़े । वह द्रवित हो गई । बोली—

—अब तुम मुझे आगे करके, स्वयं स्त्री का वेश धारण करो और श्रीकृष्ण के चरण पकड़ लो तो तुम्हारी रक्षा हो सकती है, अन्यथा नहीं ।

राजा पद्मनाभ ने द्रौपदी के कहे अनुसार ही श्रीकृष्ण के चरण पकड़ लिए और विनीत शब्दों में कहने लगा —

—हे महाभुज । मैं आपके अपार पराक्रम को देख चुका । मैं आपकी शरण हूँ । आप मुझे क्षमा करें । ऐसा दुष्कर्म अब कभी नहीं करूँगा ।

कृष्ण का कोप विनीत वचनों से शांत हो गया । वे बोले—

—यद्यपि तुम्हारा अपराध अक्षम्य है किन्तु फिर भी मैं तुम्हें क्षमा करता हूँ क्योंकि शरणागत की रक्षा करना क्षत्रिय का धर्म है । अब तुम मेरी ओर से निर्भय हो जाओ ।

यह कहकर वासुदेव ने पुनः समुद्रघात द्वारा अपना सहज सौम्य रूप बना लिया और द्रौपदी को रथ पर बिठाकर पांडवों के पास आए । उन्होंने स्वयं अपने हाथ से द्रौपदी पाँचों पांडवों को सौंप दी ।

पांडव द्रौपदी को पाकर हर्षित हुए । रथारूढ होकर सभी लोग जिस मार्ग में आये थे उसी मार्ग से वापिस चल दिए ।

× × × ×

घातकीखण्ड के भरतक्षेत्र की चम्पानगरी के पूर्णभद्र उद्यान में कपिल वासुदेव भगवान् मुनिसुव्रत प्रभु के ममवसरण में बैठा उनका पावन प्रवचन सुन रहा था । श्रीकृष्ण द्वारा पूरित पाचजन्य शख की ध्वनि उसके कानों में पड़ी । विस्मित होकर वह सोचने लगा—'क्या यह मेरा जैसा ही शखनाद नहीं है ? तो क्या इस क्षेत्र में कोई दूसरा वासुदेव उत्पन्न हो गया ?' उसने प्रभु से पूछा—

—नाथ । यह किस महावली की शखध्वनि थी ?

—यह वासुदेव कृष्ण की शखध्वनि है ।

—तो क्या इस क्षेत्र में दूसरा वासुदेव उत्पन्न हो गया ?

—एक क्षेत्र में दो तीर्थंकर, दो चक्रवर्ती, दो बलदेव और दो वासुदेव एक समय में नहीं होते ।

—तो फिर यह कृष्ण कहाँ के वासुदेव है ?

प्रभु ने अमरकका नगराधिपति द्वारा द्रौपदी के अपहरण की घटना बताते हुए कहा—कृष्ण जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र के वासुदेव हैं ।

अपने समान ही दूसरे वीर से भेट करने की इच्छा कपिल वासुदेव के हृदय में उत्पन्न हो गई, वह बोला—

—प्रभु ! मेरी हार्दिक इच्छा है कि मैं इनका जातिस्थ करूँ ।

भगवान ने फरमाया—

—कपिल ! ऐसा न कभी भूतकाल में हुआ है और न भविष्य में हो सकेगा कि एक तीर्थंकर दूसरे तीर्थंकर को, चक्रवर्ती दूसरे चक्रवर्ती को, बलदेव-बलदेव को और वासुदेव दूसरे वासुदेव को देखे । तुम उसे देख भी नहीं सकोगे । तुम अधिक से अधिक उसकी श्वेत-पीत ध्वजा को देख सकोगे और शख-ध्वनि का मिलाप कर सकोगे ।

कपिल वासुदेव ने भगवान को नमन किया और रथारूढ होकर समुद्र तट पर आये । लवण समुद्र के बीच में जाते हुए श्रीकृष्ण के रथ की श्वेत-पीत ध्वजा उन्हें दिखाई दी । हर्षित होकर उन्होंने शख-नाद किया । शख-ध्वनि कृष्ण के कानों में पड़ी । उन्होंने भी शखनाद का उत्तर गंख पूरित करके दिया ।

समवेत शख-स्वर दशों दिशाओं में गूँज गया । अपने समान ही वाली कृष्ण वासुदेव की शख-ध्वनि को सुनकर कपिल वासुदेव सतुष्ट हुए ।

तत्काल ही उन्हें पद्मनाभ के दुष्कृत्य का स्मरण हो आया । वे अमरकका नगरी जा पहुँचे और पद्मनाभ की बहुत भर्त्सना की । उसे राज्य-भ्रष्ट कर दिया और उसके पुत्र को वहाँ का गौसक बना दिया ।

पद्मनाभ को अपनी करनी का उचित फल मिला ।

X

X

X

X

पाडवो सहित श्रीकृष्ण का रथ जब लवण समुद्र में बहने वाली महानदी गंगा की धारा के समीप पहुँचे तो उन्होंने कहा—

—पाडवो ! तुम लोग गंगा नदी को पार करो तब तक मैं लवण समुद्र के अधिपति सुस्थित देव से मिलकर आता हूँ ।

कृष्ण की आज्ञा मानकर पाडव तो गंगा की धारा के पास पहुँचे और श्रीकृष्ण सुस्थित देव के पास जा पहुँचे ।

पाँचो पाडवो ने एक छोटी सी नौका की खोज की और उसमें बैठकर गंगा नदी को पार किया । तट पर उतरने के बाद वे परस्पर विचार करने लगे—‘नाव को यहाँ छिपा दिया जाय, देखे वे गंगा को भुजाओ से पार कर सकते हैं, या नहीं ।’ पाँचो भाइयो की इस बात पर सहमति हो गई । उन्होंने नाव को छिपा दिया ।

जब मनुष्य के दुर्दिन आते हैं तो वह ऐसे ही अकरणीय कार्य किया करता है ।

श्रीकृष्ण जब सुस्थित देव से मिलकर महानदी गंगा की धारा के समीप पहुँचे तो उन्हें कही नाव नहीं दिखाई दी । एक क्षण को उनके मानस में विचार आया—‘साढ़े वासठ योजन लम्बी महानदी गंगा की विगल धारा में विपरीत दिशा में तैर कर कैसे पार कर सकूंगा ? साथ में रथ भी है ।’ किन्तु दृढ़ निश्चय के धनी और प्रबल आत्म-विश्वासी श्रीकृष्ण ने यह विचार दूसरे क्षण ही उखाड़ फेंका । उन्होंने एक हाथ से रथ यामा और दूसरे हाथ की सहायता से तैरने लगे ।

आधी दूरी पार होते-होते श्रीकृष्ण के शरीर पर थकान के लक्षण दिखाई देने लगे । तभी गंगा की अधिष्ठात्री देवी ने जल का स्थल बना दिया । उन्होंने एक मुहूर्त वहाँ विश्राम किया और फिर गंगा में तैरने लगे । तैरते-तैरते उनके हृदय में विचार आया—‘पाडव बड़े बलवान हैं, जो महानदी गंगा को भुजाओ से पार कर गए ।’

तब तक किनारा आ गया । श्रीकृष्ण ने तट पर खड़े पाडवों को देखा । जल से निकल कर भूमि पर आ खड़े हुए और बोले—

—पाडवो ! तुम बड़े बलवान हो, क्योंकि तुमने महानदी गंगा

को भुजाओ से तैर कर पार कर लिया । जान पड़ता है, तुमने जान-बूझकर राजा पद्मनाभ को परास्त नहीं किया ।

—हमने तो गंगा महानदी नौका में बैठकर पार की ।—पाडवो ने ने बतलाया ।

—फिर वह वापिस क्यों नहीं छोड़ी ?

—आपके बल की परीक्षा करना चाहते थे, इसलिए । —कहते-कहते पाडवो के मुख पर मुस्कान खेल गई ।

श्रीकृष्ण ने इस मुस्कान को व्यग समझा और वे भडक कर बोले—

—मेरे बल की परीक्षा ! जब मैंने दो लाख योजन लवण समुद्र को पार किया, पद्मनाभ को मर्दित किया, अमरकका नगरी को पाद-प्रहार से ध्वस्त कर दिया और द्रौपदी को लाकर तुम्हें सौंप दिया—तब भी तुम्हें मेरा बल नहीं दिखा । अब देखो मेरा बल ॥

यह कहकर वासुदेव ने लोह दण्ड से उनके रथों को चूर-चूर कर दिया । उसी समय उनके निर्वासन की आज्ञा देते हुए बोले—

—यह है मेरा माहात्म्य ।

वासुदेव की वक्र भ्रू-भंगिमा को देखकर पाडव सहम गए । उनके मुख से एक गव्द भी न निकल सका । वे क्षमायाचना भी न कर पाए ।

उस स्थान पर रथमर्दन नाम का नगर बस गया ।

श्रीकृष्ण वहाँ से चले गए और अपनी सेना के साथ द्वारका जा पहुँचे ।

पाडव भी निरागमुख हस्तिनापुर पहुँचे । उन्होंने मुरझाए चेहरों से अपने निर्वासन की आज्ञा माता कुन्ती को बतला दी ।

—तुमने वामुदेव श्रीकृष्ण का अप्रिय करके बहुत बुरा किया । यह कह कर कुन्ती ने पुत्रों की भर्त्सना थी । पाडवो ने दुःखी स्वर में क्षमायाचना सी करते हुए माता से कहा—

—माँ ! हम से भूल तो हो ही गई । अब तुम्हीं द्वारका नगरी जाओ और वामुदेव से पूछो कि हम लोग कहाँ रहे ?

कुन्ती गजारूढ होकर कृष्ण के पास द्वारका नगरी पहुँची। श्रीकृष्ण ने उसका पहले के समान ही आदर किया और आने का कारण पूछा। कुन्ती ने पुत्रों की ओर से क्षमा माँगते हुए कहा—देवानुप्रिय! तुमने पाँचों पांडवों को निर्वसिन की आज्ञा दी है। समस्त दक्षिण भरताट्र के स्वामी भी तुम्ही हो। अब बताओ कि वे किस दिशा-विदिशा को जाएँ ?

- कृष्ण ने अपनी सहज, मधुर वाणी में उत्तर दिया—

—वासुदेव, बलदेव, चक्रवर्ती आदि महापुरुषों के वचन अमोघ होते हैं। अतः पाँचों पांडव दक्षिण दिशा के वेलातट (समुद्र किनारा) पर जायें और नई नगरी पाण्डुमथुरा बसा कर वहाँ मेरे प्रच्छन्न सेवक के रूप में रहें।

वासुदेव की इस आज्ञा को सुनकर कुन्ती वहाँ से चली आई और यह आदेश पुत्रों को कह मुनाया।

इस आदेश के अनुसार पाँचों पांडव हस्तिनापुर में चल दिए और दक्षिण दिशा के वेलातट पर पहुँच कर वहाँ नई नगरी पाण्डुमथुरा बसाकर सुखपूर्वक रहने लगे।

हस्तिनापुर के राज्य पर श्रीकृष्ण ने अपनी बहन सुभद्रा के पौत्र और अभिमन्यु के पुत्र परीक्षित का अभिषेक कर दिया।

—त्रिषष्टि० ८/१०

—ज्ञाताधर्म० अ० १६

दो मुनियो को अपने द्वार पर देखकर देवकी फूली नहीं समाई। सिंह केशरिया मोदको से भक्तिपूर्वक उन्हें प्रतिलाभित किया। मुनि चले गए। देवकी बैठ भी नहीं पाई कि दो मुनि पुनः पारण हेतु आए। देवकी ने देखा बिल्कुल वैसे ही मुनि है। चित्त में सगय तो हुआ परन्तु बोली कुछ नहीं। उन्हें भी भक्तिपूर्वक सिंह केशरिया मोदको से प्रतिलाभित किया और आसन पर बैठकर सोचने लगी। उसे यह विचित्र ही लग रहा था कि जैन श्रमण एक दिन में दो बार एक ही घर में भिक्षा हेतु आएँ। वह इन विचारों में निमग्न ही थी कि पुनः दो मुनि बिल्कुल वैसे ही द्वार पर दिखाई दिए। देवकी ने उन्हें सिंह केशरिया मोदको से प्रतिलाभित करके पूछ ही लिया—

—मुने ! आप दिग्भ्रमित होकर बार-बार यहाँ आ जाते हैं; अथवा १२ योजन लम्बी और ६ योजन चौड़ी समृद्धिशाली द्वारका में अन्यत्र शुद्ध भोजन नहीं मिलता ?

कहने को कह तो गई देवकी किन्तु उसे अपने शब्दों पर पश्चात्ताप होने लगा। उसके हृदय में विचार आया कि श्रमणों के प्रति ऐसी शका अनुचित है।

मुनियो ने शांत-सहज स्वर में कहा—

—हम छह भाई हैं, बिल्कुल एक से। देखने वाले भ्रम में पड़ जाते हैं। आज हम दो-दो के सघाड़े में छट्ठ तप के पारण हेतु निकले थे। संभवतः हम से पहले वे लोग आए हों।

देवकी की शका का समाधान हो गया। किन्तु एक शका मिटी तो दूसरी ने आ घेरा। उसे अतिमुक्तक मुनि की भविष्यवाणी की स्मृति हो

आई—‘देवकी तेरे आठ पुत्र होंगे और सभी जीवित रहेंगे।’ छह पुत्रों पर तो कम की कृपा हो गई। सातवाँ पुत्र कृष्ण जीवित है। किन्तु इन छोटी मुनियों पर मेरा वात्सल्य क्यों उमड़ रहा है ? इनसे मेरा क्या सम्बन्ध है ? ‘आदि प्रश्न उसके मानस में चक्कर काटने लगे। इन प्रश्नों का उत्तर कौन दे ? अचानक ध्यान आया—जब अर्हत अरिष्टनेमि ही नगर के बाहर विराजमान है तो उन्हीं से क्यों न पूछूँ ?

यह विचार आते ही देवकी अरिष्टनेमि के समवसरण में जा पहुँची। नमन-वन्दन करके एक ओर बैठी। उसके मानस में प्रश्न चल ही रहे थे। अपनी शकाओं का समाधान करना ही चाहती थी कि अन्तर्यामी भगवान ने कहा—

—तुम्हारे हृदय में मुनियों के प्रति विविध प्रकार के भाव उठ रहे हैं ?

—हाँ, प्रभु ! और मैं यही पूछने आई हूँ कि मुनि अतिमुक्तक की भविष्यवाणी मिथ्या कैसे हो गई। —देवकी ने कहा।

प्रभु ने बताया—

—नहीं, मुनि के वचन मिथ्या नहीं हुए। अब तक तुम्हारे सात पुत्र जीवित हैं।

भगवान के वचन सुनकर देवकी उनकी ओर देखती ही रही। तब उन्होंने रहस्य उद्घाटित करते हुए कहा—

भद्रिलपुर में नाग गाथापति रहता है, उसकी स्त्री का नाम सुलसा^१ है। सुलसा की बाल्यावस्था में ही किसी निमित्तज्ञ ने बताया कि ‘यह कन्या मृत-पुत्रों को जन्म देने वाली होगी।’ सुलसा हरिण-गमेपी देव की पूजा-अर्चना करने लगी। उसकी भक्ति से देव प्रसन्न हुआ। अतः वह सुलसा और तुमको एक ही समय में ऋतुमती करने लगा। जब तुम जीवित पुत्रों को जन्म देती तो उसी समय-सुलसा

१ हरिवंश पुराण में पिता का नाम सुदृष्टि और माता का नाम अलका बताया गया है। (देखिए—हरिवंश पुराण ५६।११५)
यही नाम उत्तरपुराण में भी दिए गए हैं। (७१-२६५)

मृत-पुत्रों को । देव मृत-पुत्र तुम्हारे पास रख आता और तुम्हारे जीवित पुत्र मुलसा को दे देता । हे देवकी ! जिन मुनियों को तुमने आज भोजन से प्रतिलाभित किया वे तुम्हारे ही पुत्र हैं ।

देवकी का सगय मिट गया । उसने अपने छहो पुत्रों—मुनि अनीक्यगा, अनन्तसेन, अजितसेन, निहितगन्धु, देवयशा और गूरसेन की वन्दना की । उसका मातृ-हृदय उमड़ आया । कहने लगी—

—पुत्रों ! तुमने जिनदीक्षा ली यह तो बहुत अच्छा किया । मैं बहुत प्रसन्न हूँ किन्तु मेरा नातृत्व निष्फल गया । सात पुत्र जने किन्तु एक को भी गोदी में लेकर खिलाया नहीं—जी भरकर प्यार नहीं किया ।

प्रभु ने कहा—

—देवकी ! खेद क्यों करती हो ? पूर्वजन्म में किये कर्मों का फल तो भोगना ही पड़ता है ।

—ऐसा क्या पाप किया था, मैंने ?

—तुमने अपनी सपत्नी के सात रत्न चुरा लिए थे । जब वह बहुत रोई तो एक वापिस किया । इसलिए तुम्हारे भी छह रत्न तुमसे विछड़ गये । सिर्फ एक ही तुम्हारे सामने है ।

देवकी अपने कर्मों की निन्दा करते हुए प्रभु को नमन करके घर चली आई । कृष्ण ने माता को उदास देखा तो पूछा—

—माता ! उदास क्यों हो ?

—पुत्र ! मेरा तो जीवन ही व्यर्थ गया ।

—क्या हुआ ?

—वत्स ! उस स्त्री का भी कोई जीवन है जो अपने पुत्र को अक में लेकर प्यार न कर सके ? पुत्र की वाल-लीलाओं से जिसका आँगन न गुँजा, उस माँ का घर श्मशानवत् ही है ।

कृष्ण ने माता के हृदय की पीड़ा समझी । पूछा—

—आपकी यह इच्छा कैसे पूरी हो सकती है ?

माता ने बताया—

—मुनि अतिमुक्तक ने भविष्यवाणी की थी कि 'मेरे आठ पुत्र होंगे' अभी तक सात हुए हैं।

वासुदेव सब कुछ समझ गये। बोले—

—आपका मनोरथ अवश्य पूरा होगा।

यह कहकर उन्होंने सौधर्म इन्द्र के सेनापति नैगमेयी देव की आराधना की। देव ने प्रकट होकर कहा—

—तुम्हारी माता के आठवाँ पुत्र होगा किन्तु युवावस्था में ही दीक्षित हो जायगा।

कुछ समय बाद ही देवकी के उदर में स्वर्ग से च्यवकर कोई महद्भिक देव अवतरित हुआ। गर्भकाल पूरा होते ही उसने पुत्र उत्पन्न किया और प्रेम से लालन-पालन करने लगी। देवकी की इच्छा पूर्ण हो गई। उसने जी भर कर पुत्र को खिलाया और नाम रखा गजसुकुमाल।

गजसुकुमाल युवा हुआ तो पिता वसुदेव ने उसका विवाह द्रुम राजा की पुत्री प्रभावती से कर दिया।

एक दिन श्रीकृष्ण को उसी नगर के सोमशर्मा ब्राह्मण की कन्या दिखाई पड़ गई। उन्होंने उसे गजसुकुमाल के लिये पसन्द कर लिया। यद्यपि कुमार की इच्छा तो नहीं थी किन्तु अग्रज और माता के आग्रह के समक्ष झुकना पड़ा। सोमा का विवाह भी उसके साथ हो गया।

उसी समय भगवान् अरिष्टनेमि द्वारिका पधारे। गजसुकुमाल भी वदन हेतु गया। देशना सुनकर वह प्रव्रजित हो गया। माता और भाई का आग्रह भी उसे न रोक सका। प्रभु से आज्ञा लेकर उसी दिन सध्या समय श्मशान में जाकर मुनि गजसुकुमाल कायोत्सर्ग में लीन हो गए।

सोमिल ब्राह्मण भी वन से समिध, दर्भ, कुश आदि लेकर लौट रहा था। उसने गजसुकुमाल को ध्यानावस्थित देखा तो उसका माथा

ठनका । सोचने लगा—यह तो मेरी पुत्री के जीवन के साथ खिलवाड़ है । यदि प्रव्रजित ही होना था तो मेरी पुत्री का जीवन क्यों बरबाद किया । उसे क्रोध आ गया । बदला लेने की ठानी । उसने चारों ओर देखा कोई नहीं था । विवेकान्ध होकर उसने पास की तलैया में से गोली मिट्टी लेकर उनके सिर पर पाल-वाँधी । उसमें जलती चिता से उठाकर अगारे भर दिये और चला आया ।

मुनि गजसुकुमाल का नवमु डित सिर जलने लगा । असह्य वेदना हुई । किन्तु उन्होंने इसे समताभाव से सहन किया और गरीर त्याग कर अशरीरी बने, मुक्त हो गए ।

दूसरे दिन प्रातः श्रीकृष्ण परिवार सहित भगवान् अरिष्टनेमि की बदना हेतु पहुँचे किन्तु वहाँ मुनि गजसुकुमाल को न देखकर पूछा—

—प्रभो ! मुनि गजसुकुमाल नहीं दिखाई दे रहे हैं ?

भगवान् ने बताया—

—वह तो रात्रि को ही कृतकृत्य हो गया ।

चकित होकर कृष्ण ने पूछा—

—एक ही दिन में लक्ष्य प्राप्ति ? ऐसी अद्भुत साधना ?

—हाँ, आत्मा में अनन्तशक्ति है, इसमें आश्चर्य ही क्या ? फिर उसे एक सहायक भी मिल गया ।

कृष्ण समझ गये कि किसी विद्वेपी ने धोर उपसर्ग किया होगा जिसको समतापूर्वक सहकर मुनि गजसुकुमाल ने मुक्ति पाई । उनकी आँखें लाल हो गई । किन्तु विनम्रतापूर्वक पूछा—

—यह अनार्य कर्म किसने किया ? कहाँ रहता है वह ?

—रहता तो इसी नगरी में है किन्तु तुम उससे द्वेष मत करो । वह तो मुनि को मुक्ति-प्राप्ति में निमित्त ही हुआ । जिस प्रकार तुम उस वृद्ध के लिए सहायी हुए । —भगवान् ने कहा ।

वास्तव में वासुदेव ने नगरी से बाहर निकलते समय एक वृद्ध की सहायता की थी । वह वृद्ध पुरुष अति जर्जरित था । बाहर, पड़े हुए ईंटों के ढेर में से एक-एक ईंट ले जाकर अन्दर रखता था । श्रीकृष्ण

को दया आ गई। वे स्वयं हाथी से उतरे और उन ईंटों को पहुँचाने लगे। उन्हें ईंट उठाते देखकर सेवकगण भी इस कार्य में जुट पड़े और वृद्ध पुरुष की ईंटें पलक झपकते ही अन्दर पहुँच गईं। श्रीकृष्ण को इस घटना की स्मृति हो आई किन्तु फिर भी उनके हृदय में उस व्यक्ति को देखने जानने की लालसा रही, यद्यपि उनका क्रोध शान्त हो चुका था। उन्होंने पूछा—

—भगवन् ! मैं उस व्यक्ति को देखना चाहता हूँ।

—जब तुम यहाँ से वापिस जाओगे तो वह पुरुष नगर प्रवेश के समय मिलेगा और तुम्हें देखते ही मर जायगा। —भगवान ने बताया।

इधर सोमिल को जब ज्ञात हुआ कि वासुदेव अरिष्टनेमि के पास गए हैं तो उसने समझ लिया कि मेरा कुकृत्य अब छिप नहीं सकेगा। प्राण बचाने हेतु वह अरण्य की ओर जाने लगा। तभी वासुदेव ने नगर में प्रवेश किया। भयभीत होकर वह उनके हाथी के सामने जा गिरा और उसके प्राण पखेरू उड़ गये।

वासुदेव समझ गए कि यह वही दुष्ट है जिसने मुनि गजसुकुमाल पर उपसर्ग किया था। उन्होंने उसके शव को वन में फिकवा दिया।

गजसुकुमाल के गोक से व्यथित होकर अनेक यादवों ने सयम स्वीकार कर लिया। वसुदेव के अतिरिक्त नौ दशार्ह भी दीक्षित हो गए। प्रभु की माता शिवादेवी, नेमिनाथ के सात सहोदर, कृष्ण के अनेक कुमार प्रव्रजित हुए। कम की पुत्री एकनाशा के साथ अनेक यादव कन्याएँ, देवकी, रोहिणी और कनकवती के अतिरिक्त वसुदेव की समस्त स्त्रियाँ साध्वी हो गईं। कनकवती ने घर में रहकर भी ससार की स्थिति का चिंतन करते हुए घाती कर्मों का नाश किया और केवल-ज्ञान प्राप्त किया। देवों ने जब उसका कैवल्योत्सव मनाया तब लोग चकित रह गए। कनकवती उसके पश्चात् साध्वीवेश धारण करके नेमिप्रभु के समवसरण में गईं और एक मास का अनशन करके मोक्ष प्राप्त किया।

सागरचन्द्र^१ ने भी अणुव्रत ग्रहण करके प्रतिमा^२ धारण कर ली । एक बार वह व्मशान भूमि में कायोत्सर्ग में लीन था । उसी समय उसका विरोधी नभ सेन उधर आ निकला । वह बोला—

—अरे पाखंडी ! कमलामेला के अपहरण^३ का फल अब भोग ।

यह कहकर उसने चित्ता में से अगारे लेकर एक ठीकड़े में भरे और उसके सिर पर रख दिए ।

तीव्र वेदना में भी यथाशक्ति सागरचन्द्र ने समताभाव रखा और पचपरमेष्ठी का जाप करते हुए प्राण त्यागे । वह मरकर देवलोक में गया ।

—त्रिषष्टि० ८।१०

—उत्तरपुराण ७१।२००—३००

—अन्तकृत, वर्ग ३, अध्ययन ८



१ सागरचन्द्र वलराम का पौत्र और निषध का पुत्र था ।

२ श्रावक की ग्यारह प्रतिमाओं का पालन करना ।

३ सागरचन्द्र और नभ प्रभ के शत्रुभाव के कारण और कमलामेला के अपहरण के लिए पीछे पड़िए इसी पुस्तक में ।

विशेष—यहाँ उत्तरपुराण में देवकी और उसके पुत्रों के पूर्वभवों का विस्तार पूर्वक वर्णन है । संक्षिप्त कथानक इस प्रकार है—

देवकी ने भगवान् अरिष्टनेमि के गणधर वरदत्त से पूछा—
भगवन् ! आज मेरे घर दो-दो करके छह मुनि पारणहेतु आए । उन्हें देखकर मेरे मन में वात्सल्य भाव क्यों जाग्रत हुआ ?

वरदत्त गणधर देवकी को उसके पूर्वभव वताने लगे—

इसी जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र के मथुरा नगर में शौर्य देश का स्वामी सूरसेन नाम का राजा रहता था । उसी नगर में भानुदत्त नाम के सेठ के उसकी स्त्री यमुनादत्ता से मुभानु, भानुकीर्ति, भानुपेण, भानुसूर, सूरदेव, सूरदत्त और सूरसेन सात पुत्र हुए । किसी दिन अभयनदी आचार्य के पास

राजा ने नश्वर ले लिया। वह देखकर मानुदत्त और यमुनादेत्ता भी प्रव्रजित हो गए। माता-पिता के दीक्षित हो जाने पर माता भाइयों ने व्यसनो में फँस कर पिता का नारा धन नष्ट कर डाला। राजा ने उन कुकर्मियों को नगर से बाहर निकाल दिया। सातों भाई उज्जयिनी पहुँचे। वहाँ नवमे छोटे भाई सूरसेन को तो उन्होंने श्मशान में छाड़ा और बाकी छहों नगर में चोरी करने चले गए।

श्मशान में एक विचित्र घटना हुई। उस नगर में राजा वृषभध्वज राज्य करता था। उसके दृष्टप्रहार्य नाम का एक महन्मठ योद्धा था। उसकी वपुश्री नाम की स्त्री के वज्रमुष्टि नाम का पुत्र था। उसी नगर के नेठ विमलचन्द्र की स्त्री विमला से उत्पन्न पुत्री मगी के साथ वज्रमुष्टि का विवाह हुआ था। वनतकृतु में वनतक्रीडा हेतु मगी भी अपनी सानू वपुश्री के साथ गई। वपुश्री से घड़े में पुष्पहार के साथ काला सर्प भी रख दिया था। ज्योंही मगी ने घड़े में हाथ डाला त्योंही उसको सर्प ने टम लिया और वह विषप्रभाव से मूर्च्छित हो गई। वपुश्री उसे घास में ढक कर चली आई। वज्रमुष्टि ने अपनी माँ में मगी के बारे में पूछा तो उसने झूठमूठ की बातें बना दी। वज्रमुष्टि उसके शोक में व्याकुल होकर नगी तलवार हाथ में लिए मगी को ढूँढ़ने निकला। उसे श्मशान में ही वरधर्म मुनि के दर्शन हुए। उसने उन्हें नमन करके प्रतिज्ञा की 'हे स्वामी यदि मुझे मेरी स्त्री मिल जाय तो हजार दल वाले कमल से आपकी पूजा करूँ।' थोड़ी दूर जाने पर ही पलाल (घास) से ढकी उसे अपनी स्त्री दिखाई दे गई। उसने उसे लाकर मुनि के चरणों में डाल दिया। मुनिस्त्री के प्रभाव मगी निर्विष हो गई। प्रसन्न होकर वज्रमुष्टि हजार दल वाले कमल की खोज में चल दिया।

यह नव कौतुक श्मशान में छिपा सूरसेन देख रहा था। उसने मगी की परीक्षा लेने के उद्देश्य से उसे रिझाया, मीठी-मीठी बातें बनाई और खुगामद की। मगी उस पर अनुरक्त होकर कहने लगी—'मुझे अपने साथ कहीं ले चलो।' तब तक वज्रमुष्टि जाता दिखाई पड़ गया। सूरसेन एक वृक्ष की ओट में जा छिपा। वज्रमुष्टि ने नगी तलवार मगी

को दी और स्वयं मुनि की पूजा करने लगा। उसी समय मगी ने तलवार का प्रहार अपने पति वज्रमुष्टि पर किया किन्तु सूरसेन ने उसे अपने हाथ पर रोक लिया। उसकी अंगुलियाँ कट गईं। वज्रमुष्टि ने मगी से कहा—‘प्रिये ! डरो मत !’ वह मगी की कुटिलता को न समझ पाया।

तब तक सूरसेन के छोटी भाई चोरी करके लौट आए और उसे उसका भाग देने लगे। सूरसेन ने कहा—‘मुझे धन नहीं चाहिए मैं तो सयम लेता हूँ।’ भाइयों के आग्रह पर उसने अपने वैराग्य का कारण बता दिया। सभी भाइयों ने धन अपनी स्त्रियों को दिया और वरधर्म मुनि के पास प्रव्रजित हो गए। स्त्रियाँ भी विरक्त होकर आर्या जिनदत्ता के पास दीक्षित हो गईं।

अन्यदा ये मातो ही मुनि उज्जयिनी नगरी में आए तो वज्रमुष्टि उनके वैराग्य का कारण जानकर वरधर्म मुनि के पास प्रव्रजित हो गया। उन अजिकाओं से वैराग्य का कारण जान कर मगी भी साध्वी हो गई।

वे मातो भाई मरकर पहिले स्वर्ग में देव हुए। वहाँ से च्यवकर घातकीखण्ड के पूर्व भरतक्षेत्र में विजयाद्ध पर्वत की दक्षिण श्रेणी के नित्यलोक नगर के राजा चित्रशूल और रानी मनोहारी के सुभानु का जीव चित्रागद नाम का पुत्र हुआ। बाकी छह भाई भी दो-दो करके तीन बार में इन्हीं राजा चित्रशूल के पुत्र हुए। उनके नाम गरुडध्वज, गरुडवाहन, मणिचूल, पुष्पचूल, गगानदन और गगनचर थे। इसी श्रेणी के मेघपुर नगर में राजा धनजय राज्य करता था। उसकी पुत्री का नाम धनश्री था। उसी श्रेणी के नदपुर नगर के स्वामी हरिवेण का पुत्र था—हरिवाहन। धनश्री का स्वयंवर अयोध्या नगरी (घातकी खण्ड के पूर्व भरतक्षेत्र की) में किया गया। अयोध्या के चक्रवर्ती नरेश पुष्पदत्त का पुत्र मुदत्त बड़ा पापी था। धनश्री ने हरिवाहन के गले में वरमाला डाली किन्तु मुदत्त ने उसी समय हरिवाहन को मारकर धनश्री को छीन लिया। यह देखकर सातो भाई विरक्त हुए और भूतानन्द तीर्थंकर के चरणों में प्रव्रजित हो गए। सातो ही सयमपूर्वक देहत्याग कर चौथे स्वर्ग में सामानिक देव हुए।

स्वर्ग में अपना आयुष्य पूर्ण करके मुमानु का जीव इसी भरतक्षेत्र कुरुजागल देश के हस्तिनापुर नगर में सेठ श्वेतवाहन की स्त्री वधुमती का पुत्र शल्ल हुआ, और बाकी के छहो भाई उसी नगर के राजा गगदेव की रानी नदयशा के गर्भ से दो-दो करके तीन बार में छह पुत्र हुए। उनके नाम थे—गग, नददेव, खड्गमित्र, नंदकुमार, सुनद और नदिषेण। जब नदयशा के सातवाँ गर्भ रहा तो राजा उससे उदास रहने लगा। रानी ने समझा कि कोई कुपुत्र गर्भ में आ गया है। अतः पुत्र उत्पन्न होते ही उसने रेवती नाम की धाय को सौंपकर कहा—इसे मेरी बहिन वधुमती को सौंप आओ। वधुमती ने उसका नाम निर्नामक रखा और उसका पालन किया।

एक दिन ये सब लोग नदन वन गए। वहाँ राजा के छहो पुत्र एक साथ बैठ कर खा रहे थे। शल्ल ने उनके साथ निर्नामक को भी बिठा दिया। यह देखकर नदयशा को बहुत क्रोध आया। उसने निर्नामक को एक लात मारी। इससे शल्ल और निर्नामक को बहुत दुःख हुआ।

अन्यदा अवधिज्ञानी मुनि द्रुमसेन पधारें उनसे शल्ल ने निर्नामक और नदयशा का सम्बन्ध पूछा। तब मुनिश्री ने बताया—

सोरठ देश के गिरपुर नगर में चित्ररथ नाम का राजा राज्य करता था। उसके यहाँ अमृत रसायन (सुधाररसायन) नाम का रमोइया था। वह मास खिलाकर राजा को प्रसन्न किया करता था। इसलिए उसने उसे बारह गाँव दे दिए। किसी दिन राजा चित्ररथ ने सुधर्म मुनि से उपदेश सुनकर व्रत ग्रहण कर लिए। उसके पुत्र मेघरथ ने भी श्रावक के व्रत स्वीकार कर लिए। उसने रसोइये से ११ गाँव भी छीन लिए। दूसरे दिन वे ही मुनि आहार के निमित्त राजा के यहाँ पधारें। रमोइये ने गाँव छिनने के वैर के कारण कड़वी तूबी का आहार दे दिया। मुनि गिरनार पर्वत पर जाकर समाधिस्थ हो गए और मरकर अपराजित विमान में अहमिन्द्र हुए। रसोइया भी मरकर तीसरे नरक में उत्पन्न हुआ। वहाँ से निकल कर बहुत समय तक उसने ससार-भ्रमण किया।

फिर इसी भरतक्षेत्र के मलय देश में पलाशकूट गाँव के एक गृहस्थी यक्षदत्त की स्त्री यक्षदत्ता से यक्ष नाम का पुत्र हुआ। उनके दूसरा पुत्र यक्षिल हुआ। बड़ा भाई निर्दय था इसलिए लोग उसे निरनुकप कहते थे और छोटा भाई दयावान था इसलिए उमका नाम सानुकप पड़ गया। एक दिन निरनुकप वर्तनो ने भरी वैलगाड़ी ला रहा था और मार्ग में एक अन्धा मर्प बैठा था। सानुकप के बार-बार मना करने पर भी निरनुकप ने गाड़ी उम सर्प पर चला दी। सर्प मर कर ज्वेतविका नगरी के राजा वासव की रानी वसुधरा से यह नदयशा नाम की पुत्री हुई है। उसके बाद सानुकप के बहुत समझाने पर निरनुकप की कपाये कुछ जात हुई और मरकर यह निर्नामिक हुआ। पूर्वजन्म के वैर के कारण ही नदयशा इस पर क्रोध करती है।

मुनि द्रुमसेन का यह कथन सुनकर छोहो राजपुत्र, शख और निर्नामिक मंत्र विरक्त होकर दीक्षित हो गए। नदयशा और रेवती धाय ने भी सुत्रता आर्या के पास नयम से लिया।

एक दिन नदयशा ने अपनी मूर्खता में यह निदान किया कि दूसरे जन्म में भी मैं इन सातों पुत्रों की माता बनूँ और रेवती ने यह निदान किया कि मैं इन छोहो पुत्रों का पालन करूँ। आयु के अंत में सभी महाशुक्र विमान में मामानिक देव हुए।

यह पूर्वजन्म का वृत्तान्त सुनाकर वरदत्त गणधर ने देवकी ने कहा—

हे देवकी ! नदयशा का जीव तो तुम हुई और रेवती मलय देश के महिलपुर नगर के सेठ सुहृष्टि की स्त्री अलका नाम की सेठानी हुई। तुम्हारे छोहो युगल पुत्रों का इसने पालन किया।

शख का जीव वलभद्र हुआ है और निर्नामिक ने म्वयभू नाम के वासुदेव (नारायण) की समृद्धि देख कर निदान किया था। उसके फल-स्वरूप कृष्ण हुआ है।

देवदत्त, देवपाल, अनीकदत्त, अनीकपाल, शत्रुघ्न और जितशत्रु तुम्हारे ही पुत्र हैं। इसी कारण इन्हें देखकर तुम्हारे हृदय में वात्सल्य भाव जाग्रत हुए थे।

नोट—इस प्रकार उत्तर पुराण के अनुसार देवकी के मात ही पुत्र थे। गज-सुकुमाल की उत्पत्ति का वहाँ कोई उल्लेख नहीं है।

एक बार इन्द्र ने अपनी सभा में कहा—वानुदेव कृष्ण न किसी के अवगुण देखते हैं और न अधम (नीच) युद्ध ही करते हैं। वे गुण-ग्राहक और वर्मयुद्ध ही करने वाले हैं। यह प्रणसा एक देव को अच्छी न लगी। वह परीक्षा लेने के विचार से द्वारका आया और वन में एक रोगिणी कुतिया का रूप बनाकर बैठ गया। उस कुतिया का भारा बारीर नडा हुआ था और उसमें से दुर्गन्ध आ रही थी।

उस समय कृष्ण रथ में बैठकर स्वेच्छा विहार हेतु वन में जा रहे थे। कुतिया को देखकर मारथी से बोले—

—देखो ! इसके दाँत कैसे मोती में चमक रहे हैं ? कितने सुन्दर हैं ?

यह कहकर कृष्ण आगे बढ़ गए। देव न कुतिया का रूप छोड़ा और एक तस्कर का रूप बनाकर उनका अश्व रत्न ले उड़ा। मेना ने पीछा किया तो उसने समस्त सेना को पगजित कर दिया। तब तक कृष्ण भी वहाँ पहुँच गए और ललकारते हुए बोले—

—अरे तस्कर ! मेरे अश्व को कहाँ लिए जा रहा है ? छोड़ इसे।

—युद्ध करके ले लीजिए।—तस्कर ने निर्भीक उत्तर दिया।

—मैं रथारूढ हूँ और तू भूमि पर ! यह युद्ध कैसे हो सकता है ? तेरे पास कोई गस्त्र भी तो नहीं है ?

—मुझे न रथ की आवश्यकता है, न गस्त्रों की। इनके बिना ही लड़ लूँगा।

—यह कैसे हो सकता है ?

—हो क्यों नहीं सकता ? हम दोनों बाहुयुद्ध करके जय-पराजय का निर्णय करले ।

—नहीं, यह नहीं हो सकता । मैं अधम युद्ध^१ नहीं करता । तू घोड़े को ले जा ।—वासुदेव ने निर्णीत स्वर में कहा ।

देव प्रसन्न हुआ । उसने अपना असली रूप प्रगट करके वरदान माँगने को कहा । वासुदेव ने कहा—

—यो तो मुझे किसी वस्तु की आवश्यकता नहीं है किन्तु इस समय द्वारका में रोग बहुत फैल रहे हैं । इनको शांत करने का कोई उपाय बताओ ।

देव ने एक भेरी देकर कहा—

—कृष्ण ! इस भेरी को वजाते ही रोग शांत हो जाएँगे और छह महीने तक कोई नई बीमारी नहीं होगी ।

भेरी पाकर कृष्ण ने उसे वजाया । रोग शांत हो गए ।

हर छह महीने बाद वासुदेव भेरी वजा देते और प्रजा रोगमुक्त रहती । छह महीने के लिए भेरी उसके रक्षक के पास सुरक्षित रख दी जाती ।

अद्भुत वस्तुओं की महिमा स्वतः ही फैल जाती है और यदि वे लोकोपकारी हो तो बहुत ही शीघ्र । भेरी की महिमा भी शीघ्र ही चारों ओर फैल गई । दाह ज्वर से पीड़ित एक श्रेष्ठी द्वारका आया । किन्तु उसे कुछ बिलव हो गया । कुछ ही दिन पहले भेरी वज चुकी थी । लोगो ने बताया अब छह महीने तक प्रतीक्षा करनी पड़ेगी । किन्तु एक तो वह दाहज्वर का रोगी—जिसमें कि शरीर सदैव ही अगारे के समान तपता रहता है, तीव्र वेदना होती है और फिर धनवान

१ वासुदेव और चोर का युद्ध अधम युद्ध था । इसी प्रकार शस्त्ररहित पर शस्त्र से चोट करना, युद्ध मर्यादा के विपरीत अंगो—जैसे उदर आदि पर घात करना, भागते हुए, पीठ दिखाते हुए, क्षमा माँगते हुए आदि शत्रुओं पर चोट करना, छिपकर चोट करना आदि—यह सब अधम युद्ध कहलाते हैं ।

श्रेष्ठी; वह इतने समय तक प्रतीक्षा कैसे करें संकतां था ? जा पहुँचा सीधा भेरी रक्षक के पास । उसे अपनी स्थिति बताई और भेरी में से एक छोटा सा टुकड़ा देने का आग्रह किया । पहले तो रक्षक 'ना, ना' करता रहा किन्तु जब एक लाख दीनार उसको मिल गई तो एक छोटा सा टुकड़ा काटकर दे दिया । श्रेष्ठी ने उसे घोटकर पिया और नीरोग हो गया । रक्षक ने उतना ही बड़ा चदन की लकड़ी का टुकड़ा लगाकर भेरी को पूरा कर दिया ।

अब तो रक्षक को घनवान बनने का और रोगियों को रोगमुक्त होने का अचूक उपाय मिल गया । रक्षक भेरी के टुकड़े काट-काटकर देता रहा । शनै-शनै पूरी भेरी ही चन्दन की हो गई । दिव्य भेरी के टुकड़े तो घनवान ले ही गए ।

छह माह बाद वासुदेव ने भेरी वजाई तो उसमें से मशक की सी ध्वनि निकली । नगरी की तो बात ही क्या सभाभवन भी न गूँज सका । ध्यानपूर्वक भेरी को देखा तो सब रहस्य समझ गए । रिश्वत-खोर कर्तव्यच्युत रक्षक को प्राण दण्ड दिया और अष्टम तप करके पुनः चमत्कारी भेरी प्राप्त की ।

इस बार वासुदेव ने इस रिश्वत का मूल कारण ही मिटाने का प्रयास किया । उन्होंने सोचा—रोगमुक्त होने के लिए लोग बाहर से आएँगे ही और लोभ देकर वह अनाचार कराएँगे ही । अतः उन्होंने वैतरणि और धन्वन्तरि दो वैद्यों को आज्ञा दी कि वे लोगो की व्याधि की चिकित्सा किया करे ।

वैतरणि तो भव्य परिणाम वाला था अतः लोगो की योग्यता और सामर्थ्य के अनुसार औषधि देता किन्तु धन्वन्तरि पापमय चिकित्सा करता । यदि कोई सज्जन पुरुष कहता भी कि यह औषधि अभक्ष्य है मेरे खाने योग्य नहीं तो वह टका-सा जवाब दे देता—साधुओं के योग्य वैद्यक शास्त्र मैंने नहीं पढ़ा । मेरे पास जैसी औषधि है लेनी हो तो लो, नहीं तो कही और जाओ; मैं क्या करूँ ।

इस प्रकार वैतरणि और धन्वन्तरि दोनों ही द्वारका में वैद्यक करने लगे ।

एक वार प्रभु अरिष्टनेमि द्वारका आए तो कृष्ण ने पूछा—

—भगवान् ! यह धन्वन्तरि और वैतरणि मरकर कहाँ जाएँगे ?

प्रभु ने बताया—

—धन्वन्तरि तो मरकर सातवे नरक के अप्रतिष्ठान नाम के नरका-वास में जन्म लेगा और वैतरणि विध्याचल अटवी में युवा यूथपति वानर होगा। वहाँ एक साधु के निमित्त से आठवे सहस्रार देवलोक में मर्हद्विक देव होगा।

—वह कैसे प्रभो !—वामुदेव ने जिज्ञासा की तो प्रभु ने समाधान दिया—

—एक सार्थ के साथ कुछ मुनि जाएँगे। उनमें से एक मुनि के पग में काँटा लग जाएगा। अन्य मुनि वही रुकना चाहेंगे तो वह मुनि यह कहकर उन्हें जाने के लिए प्रेरित करेंगे कि सार्थ भ्रष्ट होकर सभी साधुओं के प्राणों पर वन आएगी। अत्यधिक आग्रह पर अन्य मुनि वहाँ से चले जाएँगे। उस मुनि को अकेला जंगल में देखकर इस वानर को जातिस्मरण ज्ञान होगा। इसे वैद्यक का ज्ञान भी याद आ जाएगा। तब विगल्या और रोहिणी औषधियों-द्वारा यह मुनि के काँटे को निकालकर घाव को भर देगा और तीन दिन का अनगन ग्रहण कर देवलोक में उत्पन्न होगा। वहाँ से आकर मुनि को अन्य साधुओं के पास पहुँचा देगा।

भगवान के वचनों पर विश्वास करके कृष्ण नगरी को लौट आए और प्रभु अन्यत्र विहार कर गए।

[१] वीरक

एक बार भगवान् अरिष्टनेमि वर्षावाम हेतु द्वारका में मनवसृत हुए। कृष्ण ने सहज ही जिज्ञासा की—

—भगवन् ! सन्त तो स्वेच्छाविहारी होते हैं, फिर भी वर्षा ऋतु में चार मास तक गमन नहीं करते—क्या कारण है ?

प्रभु ने बताया—

—वर्षाऋतु में व्रम-स्थावर जीवों की अधिक उत्पत्ति हो जाती है। जीवों की विराधना न हो इस कारण अहिंसा महान्त धारी श्रमण गमनागमन नहीं करते। एक ही स्थान पर रहकर ज्ञान-सयम की आराधना करते हैं।

—तब तो मैं भी वर्षा ऋतु में दिग्विजय आदि के लिए प्रस्थान नहीं कहूँगा, न ही सभा आदि का आयोजन करूँगा। कृष्ण ने निर्णय किया।

इस निर्णय के अनुसार सभा आदि में कृष्ण का आना-जाना स्थगित हो गया। वे राजमहल से बाहर न निकलते। सेवकों को आज्ञा दे दी कि 'किमी को भी राजमहल में न आने दिया जाय।'।

इस आज्ञा का सबसे अधिक प्रभाव हुआ वीरक पर। वह कृष्ण के प्रति विशेष अनुरागी था। उनके दर्शन किये बिना भोजन न करता। कृष्ण बाहर निकले नहीं तो उसे दर्शन भी न हुए। वह राज-महल के बाहर बैठा रहता किन्तु दर्शन न होने से भोजन न करता।

वह अत्यन्त कृश हो गया। वर्षाकाल बीत जाने पर कृष्ण बाहर निकले तो उससे पूछा—

—अरे वीरक ! तुम इतने निर्बल कैसे हो गए ?

वीरक तो कुछ न बोला किन्तु द्वारपालो ने हकीकत कह सुनाई। कृष्ण को बड़ा दुःख हुआ और वीरक पर दया भी आई। उन्होंने उसे निराबाध प्रवेश की आज्ञा दे दी।

इसके बाद कृष्ण अरिष्टनेमि को वदन करने गए तो यतिधर्म सुनकर बोले—

—मैं स्वयं तो यतिधर्म का पालन करने में अपने को असमर्थ पाता हूँ, किन्तु यदि कोई सयम लेना चाहेगा तो उसका अनुमोदन करूँगा और अपनी ओर से प्रेरणा भी दूँगा।

यह अभिग्रह लेकर कृष्ण घर लौट आए। उनकी पुत्रियाँ नमस्कार करने आईं। उनसे पूछा—

—स्वामिनी बनोगी या दासी ?

दासी कौन बनना चाहे ? सबने स्वामिनी बनने की इच्छा प्रकट की। कृष्ण ने बताया—

—स्वामिनी बनना है तो सयम ग्रहण करो।

अतः उनकी प्रेरणा से सभी ने अरिष्टनेमि के पास जाकर प्रव्रज्या ग्रहण कर ली।

यह देखकर एक रानी ने अपनी पुत्री केतुमजरी को सिखाया कि जब पिता तुमसे पूछे तो दासी बनने की इच्छा प्रकट करना। माता के वहकावे में आकर पुत्री ने कहा—

-- पिताजी ! मैं तो दासी बनूँगी।

इस विपरीत इच्छा को सुनकर कृष्ण विचारने लगे कि इस पुत्री को शिक्षा देनी चाहिए। यदि इसका पाणिग्रहण किसी राजा के साथ कर दिया गया तो अन्य संतानें भी इसका अनुसरण करेंगी और भोग का फिसलन भरा मार्ग चालू हो जायेगा। इसलिए ऐसा उपाय करूँ कि लोग भोग के कीचड़ में न फँसे।

यह सोचकर कृष्ण ने उसके विवाह का विचार किया—किसी राजा से नहीं, वरन् साधारण पुरुष से । उन्हें आस-पास वीरक कौलिक ही दिखाई दिया । एकान्त में उससे पूछा—

—तुमने कोई वीरता का कार्य किया हो तो बताओ ।

—मैंने तो ऐसा कार्य कोई नहीं किया जो कहने योग्य हो ।
—विनम्रतापूर्वक कौलिक ने उत्तर दिया ।

—याद करो कुछ तो किया ही होगा ? —वासुदेव ने जोर दिया ।
वीरक याद करके वताने लगा—एक बार मैंने वृक्ष पर बैठे रक्त मुख नाग को पत्थरो से मार डाला था । गाड़ियों के पहियों से बनी हुई नालियों के बहते हुए गन्दे पानी को वाएँ पाँव से रोक दिया था और एक बार बहुत सी मक्खियाँ एक घड़े में घुस गई थी तब मैंने अपने हाथ से उस घड़े का मुँह बन्द कर दिया और वे मक्खियाँ फड़फड़ाती रही ।

उसके इन कृत्यों का बखान करते हुए कृष्ण ने अपनी सभा में कहा—

— वीरक ने अपने जीवन में जो कार्य किये हैं वे इसकी जाति के गौरव से बढकर हैं । इसने एक बार भूमि गस्त्र से रक्त फन वाले नाग को मार दिया । चक्र से खोदी हुई, कलुषित जल को बहन करने वाली गंगा नदी को अपने पैर से ही रोक दिया । घटनगर में रहने वाली घोष करती हुई विगल सेना को वाएँ हाथ से रोके रखा । इन कार्यों को करने वाला निस्सन्देह क्षत्रिय है । इसलिये मैं अपनी पुत्री केतुमजरी इसे देता हूँ ।

केतुमजरी का विवाह वीरक से हो गया ।

× × × ×

एक दिन कृष्ण ने वीरक से पूछा—

— कहो भद्र ! केतुमजरी उचित रूप से पत्नीधर्म का निर्वाह तो करती है ? तुम्हारी सेवा तो करती है, न !

—कहाँ महाराज ? वह तो आदेश देती रहती है, सेवा करने का कार्य तो मेरा है । वीरक ने कह ही दिया ।

—कैसे पति हो तुम, जो पत्नी की सेवा करते हो ?

—स्वामी ! वह आपकी पुत्री है, उसे तनिक भी कष्ट न हो यह देखना मेरा कर्त्तव्य है ।

—नहीं, वह तुम्हारी पत्नी है । उससे सेवा लेना ही तुम्हारा कर्त्तव्य है । यदि तुम कर्त्तव्यच्युत हुए तो घोर दण्ड के भागी होंगे ।

श्रीकृष्ण के ये वद सुनकर वीरक भय से काँप उठा । वह समझ गया कि मुझे क्या करना है । घर आकर उसने केतुमंजरी को गृह-कार्य करने की आज्ञा दी ।

पति का आदेशात्मक स्वर केतुमंजरी के लिए अनोखी घटना थी । उसने एक बार गौर से देखा उसके चेहरे पर और आँखें निकाल कर कहने लगी—

—गायद तुम भूल गए हो कि मैं वासुदेव की पुत्री हूँ । मुझे आदेश देने का अर्थ है मेरा अपमान । अपनी मर्यादा का ध्यान रखो ।

—अपनी मर्यादा का ही ध्यान आ गया है आज, मुझे । तुम मेरी पत्नी हो । पत्नीधर्म का पालन करते हुए मेरी सेवा करो ।

—तुम्हारी सेवा और मैं करूँ—यह असम्भव है ।

—तुम्हें करनी ही पड़ेगी ।

—नहीं करूँगी ।

वात बढ़ गई । वीरक ने केतुमंजरी को पीट दिया । वह भाग कर अपने पिता के पास गई और करने लगी वीरक की शिकायत ? कृष्ण ने टका-सा उत्तर दे दिया—

—मैं क्या करूँ ? पत्नीधर्म का पालन नहीं करोगी तो दण्ड पाओगी ही । इसीलिये तो मैंने तुमसे पहले पूछा था स्वामिनी बनोगी या दासी । दासी बनोगी तो सेवा तो करनी ही पड़ेगी ।

केतुमंजरी की आँखें खुल गई । पिता के चरणों पर गिरकर बोली—

—मैंने माताजी के कहने से भूल की । अब मैं स्वामिनी बनना चाहती हूँ ।

उसके अत्यधिक आग्रह पर कृष्ण ने वीरक को समझाया और केतुभजरी भगवान अरिष्टनेमि के पास प्रव्रजित हो गई।

एक बार कृष्ण वामुदेव भगवान अरिष्टनेमि की धर्मसभा में गए। वहाँ साधु मण्डली को देखकर विचार आया—‘आज सभी सन्तो का विधिपूर्वक वन्दन करूँ।’

सभी सन्तो को अनुक्रम से भाव वन्दन करने लगे। देखादेखी वीरक ने भी उनका अनुकरण किया। १५००० सन्तो की वन्दना के पश्चात् बैठे तो भगवान से विनम्र स्वर में पूछा—

—प्रभो! मैंने जीवन में ३६० सग्राम किए हैं किन्तु कभी ऐसा श्रम नहीं हुआ जैसा आज।

भगवान ने बताया—

—वासुदेव अन्य सग्रामों में तो तुम बाह्य शत्रुओं से लड़े थे और इस समय आन्तरिक शत्रुओं से।

कृष्ण बात का रहस्य न समझ पाए तो भगवान ने स्पष्ट किया—

—सतसमाज के भाववन्दन से तुमने सातवीं भूमि का वधन तोड़कर तीसरी का कर लिया है, सम्यक्त्व की प्राप्ति हुई है और तीर्थंकर प्रकृति का वन्ध हुआ। कर्मप्रकृतियों के वधन तोड़ने के कारण ही तुम्हें अधिक श्रम हुआ है।

उत्सुकतावश कृष्ण ने पूछ लिया—

—और इस वीरक को ?

—इसने तो कायक्लेव ही किया। तुम्हें प्रसन्न करने हेतु इसने द्रव्यवदन किया और द्रव्यवदन से काया-कण्ट ही होता है।—प्रभु ने फरमाया।

[२] शाम्ब और पालक

शाम्ब और पालक दोनों ही कृष्ण के पुत्र थे। एक दिन वासुदेव ने कहा—जो भी कल प्रातः भगवान को पहले वन्दन करेगा उसे मुँह-माँगा पुरस्कार मिलेगा।

पालक को रात भर नीद नहीं आई । उसे वासुदेव के दर्पक अश्व को पाने की इच्छा थी । प्रातः काल ही उठकर प्रभु के पास जा पहुँचा और जल्दी-जल्दी वदन करके लौट आया ।

शाम्ब की प्रवृत्ति दूसरे प्रकार की थी । उसे पुरस्कार का लोभ नहीं जागा । चैन से सोया । प्रातः उठकर शय्या से उतरा और वही से भक्तिभाव-विभोर होकर नमस्कार किया ।

श्रीकृष्ण के पास पहुँचकर पालक ने दर्पक अश्व की माँग की । वासुदेव ने जाकर भगवान से पूछा—

—प्रभो ! आपको आज प्रातः प्रथम वन्दन किसने किया—शाम्ब ने अथवा पालक ने ?

—भाव से शाम्ब ने और द्रव्य से पालक ने ।—प्रभु ने बताया । निर्णय हो गया । पुरस्कार गाव को मिला ।

[३] ढढण मुनि

श्रीकृष्ण की ढढणा नाम की रानी से उत्पन्न ढढणकुमार पुत्र था । वह भगवान अरिष्टनेमि की धर्मदेशना सुनकर प्रव्रजित हुआ । अल्प समय में ही उग्र तपोसाधना करने लगा ।

एक बार श्रीकृष्ण ने पूछा—

—प्रभो ! आपके १८००० श्रमणों में सबसे अधिक उग्रतपस्वी और कठोर साधक कौन हैं ?

सर्वज्ञ सदैव स्पष्ट और यथार्थवक्ता होते हैं । भगवान ने कहा—

—ढढण मुनि ।

चकित होकर वासुदेव ने पुनः पूछा—

—अल्प समय में ही ऐसी कौनसी कठोर साधना की, उन्होंने ।

—अलाभ-परीपह को जीत लिया । अन्तराय कर्म के प्रबल उदय के कारण उसे निर्दोष भिक्षा नहीं मिलती, अतः वह नहीं लेता ।

प्रभु का यह कथन सुनकर साधुओं ने जिज्ञासा की—

—आप जैसे त्रैलोक्यनाथ का शिष्य और वासुदेव जैसे त्रिखण्डाधिपति का पुत्र होते हुए भी उसे भिक्षा नहीं मिलती जबकि द्वारका में अनेक उदार गृहस्थ हैं और वे सदैव साधुओं को भिक्षा देने के लिए उत्सुक रहते हैं ।

भगवान ने बताया—

—यह सब होते हुए भी कर्म का उदय प्रबल होता है । पूर्वजन्म में जब यह मगधदेश में धान्यपूरक गाँव में पारासर नाम का ब्राह्मण था तो राजा की भूमि में खेती करवाता था । उस समय भोजन की बेला होने पर भी यह उनको खाने का अवकाश नहीं देता था । जिन लोगों का भोजन आ भी जाता था उन्हें भी वहाँ न खाने देता । जब मनुष्यों के साथ इसका ऐसा व्यवहार था तो पशुओं के साथ तो और भी बुरा । उन्हें तो एक-एक मास तक भूखा रखता । इस प्रकार इसने लाभान्तराय कर्म का तीव्र बन्ध कर लिया और अब उसके उदय के कारण इसे निर्दोष भिक्षा नहीं मिलती ।

यह सुनकर ढढण मुनि को बड़ा पश्चात्ताप हुआ । उन्होंने और भी कठोर अभिग्रह लिया—‘आज से मैं पर-लब्धि से प्राप्त भोजन ग्रहण नहीं करूँगा ।’

इस अभिग्रह का पालन करते हुए कितने ही दिन गुजर गए । न उन्हें निर्दोष भिक्षा मिली और न उन्होंने ग्रहण की ।

एक दिन गजारूढ कृष्ण नगरी में प्रवेश कर रहे थे । सामने से भिक्षा की गवेपणा करते हुए ढढण मुनि दिखाई पड़े । वासुदेव ने गज से नीचे उतर कर मुनि को वन्दन किया । वासुदेव अपने महल में चले गए और मुनि नगर में ।

यह दृश्य अपने भवन के गवाक्ष में से एक सेठ देख रहा था । उसने सोचा—‘यह मुनि अवश्य ही श्रेष्ठ तपस्वी है, तभी तो वासुदेव ने स्वयं हाथी से उतर कर इनकी वन्दना की ।’

ज्यों ही मुनि ने उस सेठ के घर में भिक्षार्थ प्रवेश किया त्यों ही

उसने भक्तिपूर्वक मोदक वहरा दिए। भिक्षा लेकर मुनि भगवान के चरणों में पहुँचे और विनम्रतापूर्वक जिज्ञासा की—

—प्रभो ! क्या मेरा अन्तराय कर्म क्षीण हो गया है ? क्या यह भिक्षा मेरी अपनी लब्धि की है ?

भगवान ने बताया—

—न तो तुम्हारा अन्तराय कर्म क्षीण हुआ और न ही यह भिक्षा स्व-निमित्त की है। श्रीकृष्ण के प्रभाव से तुम्हें इसकी प्राप्ति हुई है।

मुनि ने सुना तो विना चित्त में खेद किए एकान्त प्रासुक स्थान में पहुँचे। विवेक से मोदको को परठने (डालने) लगे। विचार शुद्ध से शुद्धतम हो गए। घनघाती कर्म की जजीरे टूट गई। उन्हें अक्षय केवलज्ञान की प्राप्ति हुई। तब वे भगवान की प्रदक्षिणा कर केवल परिषद् में जा बैठे।

[४] थावच्चापुत्र

थावच्चापुत्र का यह नाम उसकी माता के नाम पर पड़ा। माता का नाम था थावच्चा अतः पुत्र का नाम हो गया—थावच्चा-पुत्र। वह किसी सार्यवाह का पुत्र था। किन्तु थावचपन से ही गभीर चिन्तक। एक बार पड़ोस में मंगल गीतों की ध्वनि सुनाई पड़ी तो माँ से पूछा—

—ये कर्णप्रिय मधुर गीत क्यों गाए जा रहे हैं ?

—पड़ोस में बालक का जन्म हुआ है, इसलिए। —माँ ने बताया।

बालक थावच्चापुत्र बड़े मनोरंजन से सुनने लगा। एकाएक मधुर गायन आक्रन्दन में परिणत हो गया। उसने पुनः पूछा—

—माँ ! यह आक्रन्दन कैसा ? बड़ा भयानक लग रहा है।

आँखों में आँसू भरकर माँ ने बताया—

—अभी-अभी जिस बालक का जन्म हुआ था उसकी मृत्यु हो गई है।

—माँ ! लोग जन्म पर गाते और मृत्यु पर रोते क्यों हैं ?

—बेटा ! जन्म होने पर प्रसन्नता और मृत्यु पर दुःख जो होता है ।

—जब मैं मरूँगा तो तुम्हें भी दुःख होगा, तुम भी रोओगी ।

अबोध बालक की यह बात सुनकर माँ का हृदय भर आया । उसकी आँखों से आँसू बहने लगे । पुत्र ने सहज बाल-चपलता से कहा—

—अभी तो मैं मरा नहीं और तुम रोने लगी ।

माँ ने लाल को अक में भर लिया और बोली—

—मृत्यु से भी अधिक दुःखदायी उसका विचार है । तू ऐसी बातें मत किया कर । मुझे कष्ट होता है ।

—अच्छा ! मैं फिर कभी ऐसी बात नहीं करूँगा । पर यह तो बता दे कि क्या मैं कभी नहीं मरूँगा ।

माँ ने ठण्डी साँस लेकर कहा—

—पुत्र ससार में अमर कौन है ? जो पैदा हुआ है वह एक न एक दिन अवश्य मरेगा । पर अब तू जा, खेल । फिर कभी ऐसी बातें मत करना ।

बालक थावच्चापुत्र खेल में लग गया किन्तु मृत्यु शब्द उसके कोमल मानस से न निकल सका ।

समय गुजरता गया और वह युवक हो गया ।

एक बार भगवान् अरिष्टनेमि की देशना सुनकर वह प्रतिबुद्ध हुआ और माता से सयम लेने का आग्रह करने लगा । माँ ने बहुत समझाया-बुझाया पर जब वह न माना तो अन्त में राजी हो गई और अभिनिष्क्रमण उत्सव मनाने हेतु छत्र, चँवर आदि कृष्ण के पास माँगने गई । उन्होंने कहा—

—तुम चिन्ता न करो । मैं स्वयं उसका अभिनिष्क्रमण उत्सव करूँगा ।

इसके पश्चात् उसकी वैराग्यभावना की दृढ़ता की परीक्षा करने के लिए पूछा—

—थावच्चापुत्र ! तुम श्रमण बनने की अपेक्षा मेरी छत्रछाया में रहकर काम-भोगों का सेवन करो । मैं तुम्हारी रक्षा करूँगा ।

—क्या आप वृद्धावस्था और मृत्यु से भी मेरी रक्षा कर सकेंगे ?
थावच्चापुत्र ने प्रश्न किया ।

इस प्रश्न पर वासुदेव मौन हो गए और थावच्चापुत्र प्रव्रजित ।

(ज्ञातासूत्र, अ० ५)

[५] श्रीकृष्ण और पिशाच

एक समय श्रीकृष्ण, बलदेव, सात्यकि और दारुक—ये चारो वन विहार को गए । भयंकर वन में ही सूर्यास्त हो गया । प्रगाढ़ अंधकार के कारण नगर लौटना संभव न था अतः एक विशाल वृक्ष के नीचे विश्राम करने का विचार किया । सभी थके-हारे थे किन्तु वन में सुरक्षा भी होनी आवश्यक थी—कहीं कोई हिंसक पशु न आ जाय । अतः निश्चित हुआ कि एक-एक व्यक्ति एक-एक पहर तक जाग कर पहरा दे और बाकी तीन आराम से सो जायँ ।

इस व्यवस्था के अनुसार दारुक ने निवेदन किया—

—प्रथम पहर मेरा है, आप तीनों सुख से नींद ले ।

सभी ने उसकी बात स्वीकार की और सो गए । दारुक पहरा देने लगा । कुछ समय पश्चात् ही वहाँ एक भयंकर पिशाच आया और बोला—

—दारुक ! मैं बहुत दिन से भूखा हूँ । मुझे भोजन नहीं मिला है । तुम अपने प्राण बचाओ और मुझे इन तीनों को खा लेने दो ।

परन्तु दारुक पिशाच की इस इच्छा को कहाँ स्वीकार करने वाला था ? उसने गर्जते हुए कहा—

—अरे पिशाच ! मेरे जीवित रहते खाना तो बहुत दूर, तू इनको छू भी नहीं सकता ।

—खा तो मैं जाऊँगा ही । तुम चाहो तो मेरी बात मान कर अपने प्राण बचा सकते हो । —पिशाच ने चाल चली ।

—तू यहाँ से चला जा, क्यों व्यर्थ ही काल के गाल में जाना चाहता है । —दारुक ने गर्वोक्ति की ।

—तो मैं तुझे ही खा जाऊँगा ।

—शक्ति हो तो युद्ध कर ।

पिशाच ने चुनौती स्वीकार कर ली । दोनों युद्ध करने लगे । ज्यो-ज्यो दारुक का क्रोध बढ़ता गया त्यों-त्यों पिशाच अधिकाधिक बल-शाली होता गया । दारुक थक गया, परन्तु पिशाच पर विजय न प्राप्त कर सका । उसे काफी चोटे भी आई । प्रथम प्रहर व्यतीत हो गया और पिशाच अन्तर्धान ।

द्वितीय प्रहर प्रारम्भ होते ही सात्यकि उठकर पहरा देने लगा और दारुक सो गया । वह इतना निढाल हो गया था कि पिशाच के बारे में सात्यकि को कुछ बता भी न सका ।

सात्यकि को पहरा देते कुछ ही समय गुजरा कि पिशाच फिर आ धमका । सात्यकि भी अपने साथियों की प्राण-रक्षा के लिए जी-जान से लड़ने लगा, किन्तु पिशाच परास्त न हुआ ।

तीसरे पहर बलदेव भी पिशाच से लड़ते रहे पर स्थिति वही रही । वे भी थककर निढाल हो गए ।

चौथे पहर श्रीकृष्ण पहरा देने लगे । पिशाच फिर आया । शात-भाव से कृष्ण ने पूछा—

—भाई ! तुम कौन हो और यहाँ क्यों आए हो ?

—मैं पिशाच हूँ । कई दिन से भूखा हूँ । क्षुधा की ज्वाला से मैं क्रोधान्व हो रहा हूँ । आज मुझे भाग्य से वढिया भोजन मिला है ।
—पिशाच ने श्रीकृष्ण के तीनों सोते हुए साथियों की ओर सकेत किया ।

कृष्ण उसकी इच्छा समझ गए । उन्होंने दृढ स्वर में प्रतिवाद किया । किन्तु मानव और पिशाच के बलावल को जानकर शान्त भाव से खड़े रहे । उनकी शांति और दृढता को देखकर पिशाच को क्रोध आ गया । वह युद्ध हेतु आगे बढ़ा । कृष्ण ने कहा—

—पिशाच ! तुम बहुत बलशाली हो, गजब के योद्धा हो ।

इन मधुर वचनों ने पिशाच की क्रोधाग्नि में घी का काम किया । वह और भी कुपित हो गया । ज्यो-ज्यो उसका क्रोध बढ़ा त्यों-त्यों

बल क्षीण होता गया। कृष्ण मुसकराते रहे। वे जानते थे—उबसमेण हूणे कोह। पिशाच अपनी ही क्रोधाग्नि में जलकर क्षीण-बलहीन हो गया। वह उनके चरणों में आ गिरा और बोला—

—कृष्ण ! तुमने मुझे जीत लिया। मैं तुम्हारा दास हूँ।

तब तक चौथा प्रहर भी समाप्त हो चुका था। प्रातः की प्रथम किरण के साथ सात्यकि, दारुक और बलदेव भी उठ बैठे। उनकी दशा बुरी थी। सभी लोहलुहान और घायल थे। कृष्ण ने पूछा—

—आप सब लोगो की यह दशा कैसे हुई ?

—रात को पिशाच आया था। उससे युद्ध का परिणाम है।

—युद्ध तो मैंने भी किया। —कृष्ण ने कहा।

सभी आश्चर्य से उनके अक्षत शरीर को देखने लगे। तभी कृष्ण ने कहा—

—साथियो ! तुम्हें युद्धकला का समुचित ज्ञान नहीं है। क्रोध को सदा मधुर वचन और उपशान्त भाव से जीतना चाहिए। जिस पिशाच को तुम युद्ध में नहीं जीत सके, वह क्षमा, मधुर वचन और उपशान्त भाव के अमोघ अस्त्र से विजित यहाँ पड़ा है।

सभी ने कृष्ण की महानता की सराहना की।

—उत्तराध्ययन २।३१ की टीका

विशेष—थावच्चापुत्र का वर्णन ज्ञाताधर्मकथा, श्रुतस्कन्ध १, अध्ययन ५ में भी आया है। वहाँ इतना उल्लेख और है कि उन्होंने प्रव्रजित होने के पश्चात् भगवान् अरिष्टनेमि से हजार साधुओं के साथ जनपद विहार की आज्ञा माँगी। भगवान् की आज्ञा मिलने पर वे शैलकपुर नगर में पहुँचे और वहाँ के राजा शैलक को उपदेश देकर पाँच सौ मन्त्रियो सहित श्रमणों-पासक बनाया।

सौगन्धिका नगरी (विहार जनपद) में शुक परिव्राजक को तत्त्व ज्ञान देकर प्रव्रजित किया।

कुछ काल बाद राजा शैलक भी प्रव्रजित होकर मुक्त हुआ।

—ज्ञाताधर्मकथा, श्रु० १, अ० ५

सहस्राश्रवन मे भगवान् अरिष्टनेमि की वैराग्यपरक धर्मदेशना मुनकर कृष्ण विचारने लगे—धन्य है, जालि, मयालि, उवयालि आदि यादवकुमार जिन्होंने युवावस्था मे सयम ग्रहण करके आत्म-कल्याण का पथ ग्रहण किया और एक मैं हूँ, जो काम-भोगो से विरुक्त ही नहीं हो पा रहा हूँ। यो तो अर्द्धचक्री हूँ किन्तु प्रव्रज्या मे कितना असमर्थ ?

अन्तर्यामी भगवान् ने कृष्ण के हादिक भावो को जानकर कहा—

—कृष्ण ! सभी वामुदेव सदैव कृत-निदान होते हैं अतः वे सयम पथ पर चल ही नहीं सकते ।

—तो क्या मैं भी सयम नहीं ले सकता ।—कृष्ण ने सविनय पूछा ।

—ऐसा ही है ।

अब कृष्ण को और भी चिन्ता हुई । वे अपने मरण के प्रति जिज्ञासु हो गए । पूछा—

—प्रभो ! मेरा मरण किस प्रकार होगा ?

—तुम्हारे भाई जराकुमार के द्वारा ।—प्रभु ने बताया ।

—क्या द्वारका मे ही ?

—नही, द्वारका तो पहले ही विनष्ट हो जायगी ।

—कारण ?

—मदिरा, द्वीपायन और अग्नि ही इसके विनाश के कारण होंगे ।

द्वारका का विनाश सुनकर सभी यादव चिन्तित हो गए । कृष्ण ने ही पुनः पूछा—

—प्रभो ! स्पष्ट बताइये कि द्वारका के विनाश में ये तीनों किस प्रकार कारण बनेगे । यह द्वीपायन कौन है ?

प्रभु वताने लगे—

गौर्यपुर के बाहर परासर नाम का एक तापस रहता है। उसने यमुना द्वीप में जाकर एक निम्न कुल की कन्या के साथ सबव स्थापित किया था। उससे द्वीपायन नाम का पुत्र हुआ है। यादवों के प्रति स्नेह के कारण वह द्वारका के समीप रहने लगेगा। ब्रह्मचर्य को पालने वाला वह ऋषि एक बार तपस्थारत बैठा होगा तब यादव कुमार मदिरा के नशे में उन्मत्त होकर उसे उत्पीड़ित करेंगे और वह क्रोधान्व होकर द्वारका को जलाकर भस्म कर देगा।

उस समय तुम और वलभद्र वच निकलोगे। तब दक्षिण दिशा में पांडुमथुरा जाते हुए वन में जराकुमार के वाण से तुम्हारा प्राणान्त हो जायगा और तुम तीसरी बालुकाप्रभा पृथ्वी में उत्पन्न होओगे।

तीसरी पृथ्वी में उत्पन्न होने की बात सुनकर श्रीकृष्ण के मुख पर खेद की रेखाएँ उभर आईं। तब अरिष्टनेमि ने कहा—

—दुःखी मत हो कृष्ण। तृतीय पृथ्वी से निकल कर तुम जबूद्वीप के भरतक्षेत्र में पुंड्र जनपद के शतद्वार नगर में उत्पन्न होगे। उस समय तुम अमम नाम के बारहवें तीर्थंकर होगे।

तीर्थंकर जैसे महागौरवशाली पद की प्राप्ति सुनकर श्रीकृष्ण हर्षित हो गए। तभी वलदेव ने भी अपनी मुक्ति की जिज्ञासा प्रकट की। प्रभु ने बताया—

—यहाँ से कालधर्म प्राप्त कर तुम ब्रह्मदेवलोक में उत्पन्न होगे। वहाँ से च्यवकर मनुष्य होगे, फिर देव और तब मनुष्य भव प्राप्त करके अमम तीर्थंकर के शासनकाल में मुक्त हो जाओगे।

वलदेव भी सतुष्ट हो गए किन्तु जराकुमार द्वारा कृष्ण की मृत्यु अन्य यादव न भूल सके। वे उसे हेय दृष्टि से देखने लगे। जराकुमार को भी अपने हृदय में बड़ा दुःख हुआ। वह विचारने लगा—मेरे हाथ से भाई की मृत्यु—यह तो घोर पाप है। मुझे चाहिए कि इस नगर को छोड़ कर इतनी दूर चला जाऊँ कि फिर कभी भी न आ सकूँ। न मैं

पास रहूँगा और न भातृ-हत्या मेरे हाथ से होगी । यह निश्चय करके उसने धनुष-बाण लिए और सर्वज्ञ की वाणी को अन्यथा करने हेतु वन की ओर चला गया ।

वासुदेव भी धर्मसभा से उठे और नगर में आकर मद्यपान का सर्वथा निषेध कर दिया । राजाज्ञा से लोगो ने समस्त मदिरा कदव वन की कादवरी गुफा में प्रकृति-निर्मित शिलाकुडो में फेंक दी । नगर में मदिरापान बन्द हो गया और प्रजा धर्मनिष्ठ जीवन विताने लगी ।

द्वीपायन को भी कर्ण-परपरा से भगवान की भविष्यवाणी ज्ञात हुई तो वह द्वारका की रक्षा के निमित्त नगर के बाहर आकर तपस्या करने लगा ।

प्रभु की देशना सुनकर वलभद्र का सिद्धार्थ नाम का सारथी प्रबुद्ध हुआ । उसने वलभद्र से विनती की—

—स्वामी ! अब मुझे आज्ञा दीजिए, मैं सयम ग्रहण करना चाहता हूँ ।

वलभद्र ने उसे स्वीकृति देते हुए कहा—

—सिद्धार्थ ! तुम मेरे सारथी ही नहीं, भाई जैसे हो । तुमने प्रव्रजित होने की बात कही मो रोकूँगा नहीं । यदि तुम देव वन जाओ और मैं कदाचित्त कभी मार्ग-भ्रष्ट हो जाऊँ तो भाई के समान मुझे प्रतिबोध अवश्य देना ।

सिद्धार्थ ने स्वामी की इच्छा शिरोधार्य की और प्रव्रजित होकर छह मास तक तपस्या करके स्वर्ग गया ।

×

×

×

शिलाकुडो में पड़ी-पड़ी मदिरा अधिक नशीली भी हो गई और स्वादिष्ट भी । एक बार वैशाख की गर्मी में प्यास से व्याकुल यादव-कुमारो के किसी सेवक ने उसे पी लिया । उत्कृष्ट स्वाद से लालायित होकर एक पात्र भरकर वह उनके पास लाया । यादवकुमारो ने पूछा—

—ऐसी उत्तम मदिरा तुझे कहाँ से मिल गई ? द्वारका में तो मद्यपान निषिद्ध है ।

—कदव वन की कादवरी गुफा में विशाल भंडार है।—सेवक ने बताया।

यादवकुमारो को बहुत दिन बाद मदिरा पीने को मिली थी। वे लालायित हो उठे। सीधे कदव वन में जा पहुँचे और मद्यपान की गोष्ठी ही आयोजित कर डाली। सभी ने छककर मदिरा पी और उत्सव सा मनाते हुए नगर की ओर चल दिये।

संयोग से द्वीपायन ऋषि पर उनकी दृष्टि पड़ी। देखते ही क्रोध आ गया। नशे में अवे तो थे ही। बोले—

—अरे! इसी के कारण तो द्वारका का विनाश होगा। इसे मार-पीट कर खतम कर डालो।

वस, सबके सब ऋषि को मारने लगे। कोई हाथ से और कोई लात से। कुछ देर तक तो ऋषि पिटते रहे किन्तु जब मारने वाले रुके ही नहीं और पीडा असह्य हो गई तो उन्होंने संपूर्ण द्वारका को भस्म करने का निदान कर लिया।

ऋषि को अधमरा छोड़कर यादवकुमार नगर में आ गये।

कृष्ण को ज्यों ही इस घटना का पता लगा त्यों ही अग्रज बलभद्र के साथ द्वीपायन के कोप को शांत करने हेतु जा पहुँचे। क्षमा माँगते हुए बोले—

—हे ऋषि! यादवकुमारो की घृष्टता और उद्धण्डता के लिए मैं क्षमा माँगता हूँ। आप भी शांत होकर उन्हें क्षमा कर दीजिए।

—वासुदेव! तुम्हारे मधुर वचन मेरी कोपाग्नि को और भी भड़का रहे हैं। तुम्हें कुमारो को पहले ही रोकना चाहिए। क्या यही तुम्हारा राजधर्म है कि तपस्वियों को ताड़ना दी जाय।—तपस्वी द्वीपायन ने सकोप कहा।

—मैं कुमारो को दण्डित करने का वचन देता हूँ। आप

—दण्डित तो मैं करूँगा, संपूर्ण द्वारका को भस्म करके। न द्वारका रहेगी न यादवकुमार।—द्वीपायन ने बात काटकर कहा।

—गात ! गात !! तपस्वी गात होइये । क्रोध हपी राक्षस जीवन भर की तपस्या को नष्ट कर डालता है ।

—वह तो नष्ट हो ही चुकी, कृष्ण ! मैंने द्वारका-नाश का निदान कर लिया है ।

—अब भी समय है । आलोचना करके निदान को मिथ्या कर डालिए ।—कृष्ण ने विनम्र स्वर में कहा ।

—नहीं ! अब यह नहीं हो सकता । गात-तपस्वी की क्रोधाग्नि किस प्रकार प्रलय के अगारे बनकर बरसती है, यह द्वारका अवश्य देखेगी ।—तपस्वी द्वीपायन की आँखों से अगारे बरस रहे थे ।

कृष्ण कुछ बोलना ही चाहते थे कि बलभद्र ने रोककर कहा—

—वामुदेव ! क्या तुम सर्वज्ञ भगवान् अरिष्टनेमि के गन्धो को मिथ्या करना चाहते हो । यह न त्रिकाल में हुआ है और न होगा ।

श्रीकृष्ण जैसे मिथ्या मोह से जागे । होनी के सम्मुख उन्होंने सिर झुका दिया और खिन्न मन वहाँ से चले आये ।

द्वीपायन तपस्वी मरकर अग्निकुमार देवों में उत्पन्न हुआ । पूर्वभव की शत्रुता का स्मरण करके तुरन्त द्वारका आया किन्तु नगरवासी छट्टम, अट्टम तप आदि अनेक धार्मिक क्रियाओं में लीन रहते थे इसलिए वह कुछ न कर सका । अवसर की खोज में वह ११ वर्ष तक प्रतीक्षा करता रहा ।

इधर गनै-गनै द्वारकावासी भी धर्मपालन में शिथिल होते गए । उन्होंने भक्ष्याभक्ष्य भोजन प्रारम्भ कर दिया । उन्हें विश्वास हो गया कि अब द्वीपायन कुछ नहीं बिगाड़ सकता । इस मिथ्या विश्वास के कारण वे लोग आमोद-प्रमोद में लीन हो गए । मद्यपान तथा मासाहार भी करने लगे ।

अग्निकुमार देव द्वीपायन तो इसी प्रतीक्षा में था । उसने उत्पात करना प्रारम्भ कर दिया । सर्वत वायु के प्रयोग से वन का काण्ठ, घास आदि द्वारका में एकत्र हो गया । तभी अगारे बरसे और द्वारका जलने लगी । श्रीकृष्ण के अस्त्र-गस्त्र और दिव्य वस्त्र तक जल गए । नगर-

वासी नगर से बाहर निकलने का प्रयत्न करते तो द्वीपायन देव उन्हें उठाकर अग्नि में होम कर देता । सारा नगर ब्राहि-ब्राहि करने लगा ।

इस भयकर अग्निकांड और विनाशलीला में भी कृष्ण अपने माता-पिता का ध्यान न भूले । उन्होंने वसुदेव, देवकी और रोहिणी को रथ में बिठाया तथा कृष्ण-वलभद्र दोनों भाई चल पड़े । अब्ब कुछ ही कदम चल सके कि द्वीपायन देव ने उन्हें स्तम्भित कर दिया । अश्वों को वहीं पर छोड़ा और दोनों भाई रथ को खींचकर जैसे-तैसे नगर-द्वार के समीप तक लाए । तभी रथ टट गया । भीषण ताप से कराहते हुए माता-पिता ने पुकार की—अरे बेटा कृष्ण-वलराम ! हमें बचाओ । माता-पिता का आर्तनाद ही रहा था कि नगर-द्वार बन्द हो गया । वलभद्र ने आगे बढ़कर पाद-प्रहार से द्वार को तोड़ डाला और माता-पिता को लेने लपके । तभी द्वीपायन देव ने प्रगट होकर कहा—

—हे कृष्ण ! हे वलराम ! तुम्हारा परिश्रम व्यर्थ है । मैं वहीं द्वीपायन तपस्वी हूँ । सिर्फ तुम दोनों ही जीवित निकल सकते हो । बाकी सभी को इस अग्नि में भस्म होना ही पड़ेगा । इसके लिए ही तो मैंने अपना सम्पूर्ण तप बेचा है और ग्यारह वर्ष तक प्रतीक्षा की है ।

देव की बात पर दोनों भाइयों ने तो ध्यान दिया नहीं किन्तु वसुदेव, रोहिणी और देवकी ने समवेत स्वर में कहा—

—पुत्रो ! अब तुम चले जाओ । तुम दोनों जीवित हो तो समस्त यादवकुल ही जीवित है । तुमने हमें बचाने का बहुत प्रयास किया, किन्तु हमारी मृत्यु इसी प्रकार है । अब हम सथारा लेते हैं ।

यह कह कर तीनों ने भगवान् अरिष्टनेमि की शरण ग्रहण की, चारों प्रकार का आहार त्याग कर सथारा लिया और महामन्त्र नव-कार का जाप करने लगे । आकाश से अगारे वरस ही रहे थे । तीनों अपनी आयु पूर्ण करके स्वर्ग गए ।

माता-पिता जल रहे थे, और त्रिखण्डेश्वर, महावली, नीति-निपुण श्रीकृष्ण खड़े-खड़े देख रहे थे—विवश निरुपाय । बारह योजन लम्बी

और नौ योजन चौड़ी वासुदेव की नगरी द्वारका धू-धू करके जल रही थी। जिस नगरी को वासुदेव ने अपने तप के प्रभाव से सुस्थित देव द्वारा निर्मित कराया था। कुवेर ने जिसे अनुपम रत्नो और अक्षय कोपो से परिपूर्ण किया था। जो इन्द्रपुरी से होंड लगाती थी। जिसकी समृद्धि और सम्पन्नता समस्त दक्षिण भरताद्ध में विख्यात थी। वही द्वारका अग्नि-लपटों में घिरी हुई थी।

वासुदेव के दिव्य अस्त्र-गस्त्र जो उनके पुण्य योग से प्रकट हुए थे, उनके दिव्य आभूषण, वस्त्र सब कुछ अग्नि में स्वाहा हो रहा था।

यह था मद्यपान का भयकर दुष्परिणाम।

निराग और विवश कृष्ण-वलराम नगर में बाहर निकलकर जीर्णोद्धान में खड़े हो गए और द्वारका को जलती हुई देखने लगे। कृष्ण अत्यन्त दुखी स्वर में बोले—

—भैया ! मुझ ने अब यह विनाशलीला नहीं देखी जाती। कहीं और चलो।

फिर कुछ सोचकर स्वयं ही बोले—

—किन्तु कहाँ जाएँ अनेक राजा तो हमारे विरोधी हो गए हैं ?

—पांडव हमारे परम-स्नेही हैं। उन्हीं के पास चलना चाहिए।

—वलराम ने मुझाया।

—मैंने उन्हें भी निष्कासित कर दिया था। क्या वहाँ चलना उचित होगा ?—कृष्ण ने शका की।

—तुम इन शंका को हृदय से निकाल दो। पांडव हमारा स्वागत ही करेंगे, निश्चिन्त रहो।—वलराम ने उत्तर दिया।

वलराम की इच्छा स्वीकार करके कृष्ण पाण्डुमथुरा जाने के लिए नैऋत्य दिशा की ओर चल दिए।

जिस समय द्वारका जल रही थी तो वलराम का पुत्र कुब्जावारक महल की छत पर जा खड़ा हुआ। वह जोर-जोर से कहने लगा—

—इस समय मैं भगवान् अरिष्टनेमि का व्रतधारी शिष्य हूँ। भगवान् ने मुझे चरम शरीरी और इसी भव से मोक्ष जाने वाला

वताया है। अर्हन्त के वचन कभी मिथ्या नहीं होते। ये अग्नि ज्वालाएँ मेरा कुछ भी नहीं बिगाड़ सकती। देखता हूँ मुझे यह अग्नि कैसे जलाती है ?

उसके शब्द सुनकर जम्भूक देव प्रकट हुआ और उसे उठाकर अरिष्टनेमि की गरण में ले गया। कुमार कुब्जावारक ने वहाँ दीक्षा ग्रहण की।

×

×

×

द्वारका छह महीने तक जलती रही। उसमें साठ कुल कोटि और बहत्तर कुल कोटि यादव भस्म हो गये। उसके पश्चात् सागर में भयकर तूफान उठा और नगरी जलमग्न हो गई। जहाँ छह माह पूर्व समृद्ध द्वारका थी उस स्थान पर सागर लहराने लगा। द्वारका का नाम निशान भी मिट गया। जल में से निकली द्वारका जल में ही समा गई।

—अतकृत, वर्ग ५

—त्रिषष्टि० ८११

—उत्तरपुराण ७२।१७८-१८७ तथा २२१

उत्तरपुराण की विशेषताएँ निम्न हैं :—

- (१) यहाँ द्वारका के विनाश के बारे में बलभद्र भगवान् अरिष्टनेमि से पूछते हैं।
- (२) श्रीकृष्ण ने पहली भूमि में प्रयाण किया। (श्लोक १८१)
- (३) बलभद्र चौथे स्वर्ग में उत्पन्न होंगे। (श्लोक १८३)

कृष्ण-वलराम दोनों भाई चलते-चलते हस्तिकल्प नगर के समीप जा पहुँचे । कृष्ण को उस समय क्षुधा सताने लगी । वलभद्र से कहा—

—भैया ! आप नगर में जाकर भोजन ले आइये ।

वलभद्र ने जाते-जाते कहा—

—मैं जा रहा हूँ किन्तु तुम सावधान रहना ।

—आप अपना भी ध्यान रखिए ।

—वैसे तो मैं ही काफी हूँ किन्तु यदि किसी विपत्ति में फँस गया तो सिंहनाद करूँगा । तुम तुरन्त चले आना ।

यह कहकर वलभद्र नगर में चले गए । उस नगर का नरेश था वृतराष्ट्रपुत्र अच्छदन्त । श्रीकृष्ण-जरासंध युद्ध में कौरवों ने जरासंध का साथ दिया था । इस कारण वह कृष्ण-वलराम से शत्रुता मानता था ।

नगर में प्रवेश करके वलभद्र भोजन की तलाश करने लगे । उनके अनुपम रूप को देखकर नगरवासी चकित रह गए । वे सोचने लगे—यह स्वयं वलभद्र हैं, अथवा उन जैसा ही कोई और ? तभी विचार आया—द्वारका तो अग्नि में जलकर नष्ट हो गई है । अवश्य ही यह वलभद्र हैं ।

वलभद्र ने अपनी नामांकित मुद्रिका देकर हलवाई से भोजन लिया । हलवाई अँगूठी को देखकर अचकचाया । उसने वह मुद्रिका राजकर्मचारियों को दे दी । राजकर्मचारी उसे राजा के पास ले गए और बोले—

—महाराज ! बलभद्र सरीखे एक व्यक्ति ने यह मुद्रिका देकर हलवाई से भोजन सामग्री खरीदी है। वह कोई चोर है अथवा स्वयं बलभद्र, हमें यह नहीं मालूम। जैसी आज्ञा हो, वैसा ही किया जाय।

अच्छदन्त ने मुद्रिका को उलट-पुलट कर देखा और निश्चय कर लिया कि वह व्यक्ति बलभद्र ही है। बदला लेने का अच्छा अवसर जानकर उसने नगर का द्वार बन्द करवा दिया और स्वयं सेना सहित बलभद्र को मारने आ पहुँचा। बलभद्र चारों ओर से घिर गए। उन्होंने भोजन एक ओर रखा और सिंहनाद करके सेना पर टूट पड़े।

बलभद्र का सिंहनाद ज्यों ही कृष्ण के कानों में पड़ा वे दौड़े हुए आए। नगर के बन्द दरवाजे को पाद-प्रहार से तोड़ डाला और शत्रु पर टूट पड़े। दोनों भाइयों ने मिलकर शत्रु सेना का घुरी तरह संहार किया और अच्छदन्त के मद को धूल में मिला दिया।

अपना पराभव होते ही अच्छदन्त कृष्ण के चरणों में आ गिरा तब उन्होंने उसे उठाते हुए कहा—

—अरे मूर्ख ! हमारे भुजबल को जानते हुए भी तूने यह दुस्साहस किया। हमारी भुजाओं का बल कहीं चला नहीं गया है। फिर भी हम तेरा अपराध क्षमा करते हैं। जा और सुखपूर्वक शासन कर।

अच्छदन्त उन्हें प्रणाम करके राजमहल की ओर चला गया और दोनों भाई नगर से बाहर निकल आए। उद्यान में बैठकर भोजन किया और दक्षिण दिशा की ओर चलते हुए कौशाम्बी वन में आ पहुँचे।

मार्ग की थकावट और गर्मी की तीव्रता से कृष्ण का गला सूखने लगा। अनुज को तृपातुर देखकर बलराम ने कहा—

—भाई ! तुम इस वृक्ष के नीचे विश्राम करो। मैं अभी जल लेकर आता हूँ।

यह कहकर बलराम तो पानी लाने चले गए और कृष्ण वृक्ष के नीचे लेट गये। उनका एक पाँव दूसरे पर रखा था। थकावट के कारण उन्हें नींद आ गई।

सयोग से उसी समय व्याघ्रचर्म धारण किए, हाथ में धनुष-बाण लिए जराकुमार उधर आ निकला। क्षुधा तृप्ति के लिए पशुओं का शिकार करना ही उसका कार्य था। श्रीकृष्ण के पीताम्बर को दूर से ही देखा तो उसे भ्रम हुआ कि कोई मृग बैठा है। उसने एक तीक्ष्ण तीर मारा। बाण लगते ही कृष्ण की निद्रा भग हो गई, वे उठ बैठे। उच्च स्वर में कहा—

—यह बाण किसने मारा है ? बिना नाम-गोत्र बताए प्रहार करना अनुचित है। बताओ तुम कौन हो ?

जराकुमार ने वृक्ष की ओट से ही उत्तर दिया—

—हे पथिक ! मैं दसवे दशार्ह वसुदेव और जरादेवी का पुत्र जराकुमार हूँ। श्रीकृष्ण और बलराम मेरे अग्रज हैं। इस वन में मुझे रहते बारह वर्ष हो गये हैं। भगवान् अरिष्टनेमि की भविष्यवाणी सुनकर अग्रज कृष्ण की रक्षा हेतु वनवास कर रहा हूँ। आज तक मैंने इस वन में किसी भी पुरुष को नहीं देखा। तुम बताओ कि तुम कौन हो ?

इस परिचय से कृष्ण के मुख पर हल्की सी मुसकराहट फैल गई। शान्त स्वर में उन्होंने जराकुमार को अपने पास बुलाया और द्वारका-दहन आदि सम्पूर्ण घटनाएँ सुनाकर कहा—

—बन्धु ! होनी बड़ी प्रबल होती है और सर्वज्ञ के वचन अन्यथा नहीं होते। तुम्हारा यह वनवास निरर्थक ही रहा।

यह सुनते ही जराकुमार के हृदय में घोर पञ्चात्ताप हुआ। वह कहने लगा—

—घिक्कार है मुझे ! मैंने अपने ही अग्रज को मार डाला।

कृष्ण ने अवसर की गम्भीरता को देखकर उसे समझाया—

—जराकुमार ! शोक मत करो। इस समय यादव कुल में तुम अकेले ही जीवित हो। यदि बलराम आ गए तो तुम्हें भी मार डालेंगे।

—मेरा मर जाना ही अच्छा है। —जराकुमार ने अश्रु बहाते हुए कहा।

—नहीं तुम्हारे मरते ही यादव कुल की परम्परा नष्ट हो जायगी । वंश रक्षा के लिए तुम्हारा जीवन आवश्यक है ।

—यह काला मुँह लेकर मैं जीवित नहीं रहना चाहता ।

—किन्तु मैं चाहता हूँ कि तुम जीवित रहो । यह कौस्तुभमणि लेकर पाडवों के पास चले जाओ और द्वारका एवं यादवों की स्थिति बता देना । मेरी ओर से कहना कि मैंने पहले उन्हें जो निष्कासित किया था उसके लिए मुझे क्षमा कर ।

कृष्ण ने उसे कौस्तुभमणि देकर पांडुमथुरा जाने का आदेश दिया । अग्रज के आदेश से विवश जराकुमार ने मणि ली, वाण निकाला और वहाँ से चल दिया ।

वाण निकलते ही कृष्ण को अपार वेदना हुई । पूर्वाभिमुख होकर पंच परमेष्ठी को नमस्कार किया । कुछ समय तक शुभ भावों का विचार करते रहे, फिर एकाएक उन्हें जोश आया और उनका आयुष्य पूरा हो गया । उनकी आत्मा तीसरी भूमि के लिए प्रयाण कर गई ।

श्रीकृष्ण वासुदेव सोलह वर्ष तक कुमार अवस्था में रहे, छप्पन वर्ष माडलिक अवस्था में और नौ सौ अट्ठाईस वर्ष अर्द्धचक्री के रूप में, इस प्रकार उनका सम्पूर्ण आयुष्य एक हजार वर्ष का था ।^१

१ (क) वैदिक ग्रन्थों में उनकी आयु १२० वर्ष मानी गई है । चिंतामणि विनायक वैद्य की मराठी पुस्तक 'श्रीकृष्ण चरित्र' के अनुसार उनका जन्म ३६२८ विक्रमपूर्व हुआ और मृत्यु ३००८ वि० पू० में । वहाँ मृत्यु के स्थान पर तिरोधान माना गया है—इसका अभिप्राय है देखते-देखते अदृश्य हो जाना ।

(ख) द्वारका-दाह और कृष्ण की मृत्यु एवं यादवों के अन्त के बारे में श्रीमद्भागवत में कुछ भिन्न उल्लेख है—

महाभारत के युद्ध में अनेक वीर और गुणी यादवों की मृत्यु हो चुकी थी । जो शेष थे वे भी दुर्व्यसनी अनाचारी । वृद्धावस्था के कारण कृष्ण-वलराम का उन मदान्ध यादवों पर प्रभाव भी

वलराम जल लेकर लौटे तो उन्होंने कृष्ण को निम्नचल पड़े देखा ।

कम हो गया था । द्वारका के समीप ही ममुद्र और रैवतक पर्वत के मध्य प्रन्नाम क्षेत्र में पिडारक नाम का स्थान था । वहाँ द्वारका-वामी आमोद-प्रमोद के लिए जाया करते थे । एक बार विशाल-उन्मव हुआ । मद्यपान में उन्मत्त द्वारकावामी परस्पर लड़ने लगे और वही मर गए । कृष्ण, वलराम, नारथी दारुक, उग्रमेन, वसु-देव, कुछ स्त्रियाँ और बाल-वच्चे ही जीवित लौटे । इस विनाश लीला में वे बहुत दुखी हुए उन्होंने प्राण त्याग दिये । श्रीकृष्ण दारुक के साथ द्वारका लौटे । उन्होंने दारुक को हस्तिनापुर जाने का आदेश दिया और कहा कि अर्जुन यहाँ आये और अवशेष यादव-वृद्धों और स्त्रियों को हस्तिनापुर ले जाए ।

दारुक हस्तिनापुर चला गया और कृष्ण अग्रज वलराम के देहावसान में दुखी होकर एक पीपल के वृक्ष के नीचे जा बैठे । जराकुमार नाम के व्याध ने उन्हें बाण मारा । कृष्ण ने उसे स्वर्ग प्रदान किया ।

इसके पञ्चात उनके चरण चिन्हों को देखता हुआ दारुक वहाँ आया । उनके देखते-ही-देखते गरुड चिह्न वाला उनका रथ अश्वों सहित आकाश में उड़ गया और फिर दिव्य आयुध भी चले गए । नारथी के विस्मय को दूर करने हुए कृष्ण ने कहा—‘तुम द्वारका जाओ और जेप यादवों में कहो कि वे अर्जुन के साथ चले जायें, क्योंकि मेरी त्यागी हुई दारुका को ममुद्र अपने गर्म में ममेट लेगा ।’ इसके पञ्चात कृष्ण का तिग्गेधान हो गया ।

अर्जुन ने द्वारका की दुर्दशा देखी तो बहुत दुखी हुआ । कृष्ण-वलराम तो समाप्त हो ही चुके थे । जेप यादवों, स्त्रियों और अनिर्द्ध के पुत्र वज्र को लेकर हस्तिनापुर चल दिया ।

[श्रीमद्भागवत, स्कन्ध ११, अध्याय ३०, श्लोक १०-४८]

द्वारका निर्जन और भूनी होगई । ममुद्र में भयकर तूफान आया और महानगरी द्वारका जलमग्न हो गई ।

[श्रीमद्भागवत ११/३१/२३]

एक-दो बार पुकारा तो भी स्पन्दन न हुआ। हाथ पकड़कर हिलाया-डुलाया किन्तु कृष्ण न उठे तो उन्होंने समझा रुठ गए हैं। कांतर स्वर में कहने लगे—भाई ! मुझे जल लाने में देर हो गई तो तुम रुठ गए। पर क्या भाई से इतने नाराज होते हैं ? उठो और जल पी लो।

निश्चल-निष्प्राण देह क्या उत्तर देती ? बलराम के सभी प्रयास विफल हो गए तो उन्होंने मृत कलेवर को उठाकर कंधे पर रखा और जगलो में भटकने लगे। वे स्वयं भी खाना-पीना भूल गए, अपनी सुध-बुध खो बैठे। निरंतर कृष्ण-कृष्ण की रट लगाए रहते। मोह के तीव्र आवेग में चिरनिद्रा को उन्होंने सामान्य निद्रा समझ लिया था। इस प्रकार छह मास का समय व्यतीत हो गया।

बलराम का सारथी सिद्धार्थ जो सयम पालन करके देव बना था उसने अवधिज्ञान से उनकी यह दगा देखी तो उन्हें प्रतिवोध देने वहाँ आया। उसने अपनी माया से एक पापाण-रथ का निर्माण किया। उसमें बैठकर वह पहाड़ से उतरने लगा। रथ लुढ़कता हुआ घडाम से विषम स्थान में गिरा और चूर-चूर हो गया। देवरूप सारथी उन पापाण-खंडों को पुनः जोड़ने का उपक्रम करने लगा।

यह सब कौतुक बलराम देख रहे थे। उन्होंने कहा—

—मूर्ख ! क्या ये पापाण-खंड पुनः जुड़ सकेंगे ?

देव ने प्रत्युत्तर दिया—

—जब मरा हुआ व्यक्ति पुनः जीवित हो सकता है तो यह रथ क्यों नहीं तैयार हो सकता ?

बलराम ने मन में सोचा कि 'यह तो वज्रमूर्ख है कौन मुँह लगे' और अनसुनी करके आगे बढ़ गए।

देव ने एक किसान का रूप रखा और पत्थर पर कमल उगाने लगा। बलराम ने देखकर कहा—

—अरे मूढ़ ! क्या कभी पत्थर पर भी कमल लगते हैं ?

—तो क्या कभी मुर्दे भी जीवित होते हैं ?—देव का प्रत्युत्तर था। बलराम ने मुँह विचकाया और आगे बढ़ गए। देव भी आगे

बड़ा और एक सूखे ठूँठ को पानी पिलाने लगा। वलराम ने व्यगपूर्वक कहा—

—जले ठूँठ को पानी पिलाने से क्या लाभ ?

—हरा हो जायगा।

—वज्रमूर्ख है तू। यह कभी हरा नहीं हो सकता।

—क्यों नहीं हो सकता ? जब तुम्हारा मृत भाई जीवित हो सकता है तो यह ठूँठ हरा क्यों हो सकता ?

वलराम पुनः भुनी-अनुसुनी करके आगे बढ़ गए। देव ने भी एक ग्वाले का रूप बनाया और एक मरी गाय को घास खिलाने लगा। वलराम ने उससे कहा—

—कहीं मरी गाय भी घास खाती है ? जीवित होती तो खाती। क्यों व्यर्थ परिश्रम कर रहे हो ?

—जब तुम अपने भाई के मृत कलेवर को छह माह से ढोने का परिश्रम कर रहे हो तो ...

—क्या मेरा भाई मृत है ? वलराम ने सरोप कहा।

—तो क्या मेरी गाय मृत है ?—देव का प्रतिप्रश्न था।

—जब घास नहीं खाती, हलन-चलन नहीं करती तो मृत ही है।

—यह लक्षण तो तुम्हारे भाई के शरीर के भी है। वह भी तो नहीं खाता, हलन-चलन भी नहीं करता, फिर वह कैसे जीवित है ?

वलराम मौन होकर सोचने लगे। देव ने ही पुनः कहा—

—विश्वास न हो तो स्वयं परीक्षा कर लो।

देव की बात सुनकर वलराम ने अपने कंधे से कृष्ण का शव उतारा और देखने लगे। शव में से तीव्र दुर्गन्ध आ रही थी। जीवन का कोई लक्षण शेष नहीं था। वे विचारमग्न हो गए तभी देव ने सिद्धार्थ सारथी का रूप बनाकर वलराम को सवोधित^१ किया—

१ (क) आचार्य जिनमेन के हरिवंशपुराण के अनुसार—

‘जरत्कुमार (जराकुमार) द्वारा श्रीकृष्ण के निधन का समाचार पाकर पांडव माता कुंती और द्रौपदी के साथ आते हैं और वल्लभ से कृष्ण

—हे वलभद्र ! मैं पूर्वजन्म में आपका सारथी था । सयम पालन के फलस्वरूप स्वर्ग में देव हुआ हूँ । प्रव्रज्या की अनुज्ञा देते हुए आपने मुझसे कहा कि उचित अवसर पर प्रतिबोध देना । मैं इसीलिए आपके पास आया हूँ । आप इस अनर्थकारी मोह को त्यागिए, यथार्थ को पहचानिए और इस गव का अन्तिम सस्कार करके सयम पालन कीजिए । भगवान् अरिष्टनेमि ने जो भविष्य कथन किया था, वैसा ही हुआ । इनकी मृत्यु जराकुमार के वाण से हुई है और भातृमोह के कारण छह माह से इस शव को आप ढो रहे हैं ।

सिद्धार्थ के प्रतिबोध से वलभद्र की सुप्त चेतना जागृत हुई । मोह का पर्दा हटा और उन्होंने मृत देह का अन्तिम सस्कार कर दिया ।

उसी समय सर्वज्ञ सर्वदर्शी भगवान् ने वलभद्र की इच्छा जानकर एक विद्याघर मुनि को वहाँ भेजा । मुनि ने धर्मोपदेश दिया और वलभद्र प्रव्रजित हो गए ।

सिद्धार्थ देव ने मुनियों को भावपूर्वक नमन किया और स्वर्गलोक को चला गया ।

प्रव्रजित होकर मुनि वलभद्र घोर तपस्या करने लगे ।

एक बार मासखमण के पारणे हेतु वे किसी नगर में प्रवेश कर रहे थे । वही कुएँ पर पानी भरने के लिए एक महिला आई थी ।

का अन्तिम सस्कार करने का निवेदन करते हैं । किंतु वलभद्र कुपित हो जाते हैं । तब पांडव उनकी (वलभद्र की) इच्छानुसार चलने लगे । वर्षावाम (चातुर्मास) के पश्चात् जब श्रीकृष्ण के शरीर से दुर्गन्ध आने लगी तब सिद्धार्थ देव ने आकर उन्हें प्रतिबोध दिया ।

[हरिवंश पुराण, ६३/५४-६८]

(ख) शुभचन्द्राचार्य के पांडवपुराण के अनुसार—

पहले सिद्धार्थ देव आकर वलभद्र को प्रतिबोध देने का प्रयास करता है किन्तु उन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता । बाद में पांडव आते हैं और उन्हें स्नेहपूर्वक समझाने हैं तब वलभद्र का मोह कम होता है ।

[पांडवपुराण, पर्व २२, श्लोक ८७-८९]

उसके साथ उसका बालक भी था। उनके रूप को देखकर महिला वेभान हो गई। घड़े के गले में रस्सी का फंदा लगाने के बजाय उसने फंदा बच्चे के गले में डाल दिया। बलभद्र मुनि ने यह अनर्थ देखा तो महिला को सचेत किया और उलटे पैरों वन की ओर लौट गए। उन्होंने इस दृश्य को देखकर अपने रूप को धिक्कारा—‘वह रूप निकृष्ट है जो ऐसे महान अनर्थ का कारण बने।’ उन्होंने अभिग्रह ग्रहण किया—‘मैं आज से किसी भी ग्राम और नगर में प्रवेश नहीं करूँगा। जंगल में ही यदि निर्दोष भिक्षा मिल जायगी तो ग्रहण करूँगा।’

महाभयानक वन में ऐसे दिव्य तेजस्वी सन्त को देखकर सभी आने-जाने वाले चकित थे। उनके मानस में भौंति-भौंति के प्रश्न उठते—यह कौन है? कहाँ से आया है? किसी मन्त्र-तन्त्र की साधना कर रहा है अथवा देवी-देवता की? जिज्ञासा ने सदेह का रूप धारण किया और किसी काष्ठ ले जाने वाले ने अपनी शका राजा को कह सुनाई। राजा ने तुरन्त सेना सजाई और चल दिया बलभद्र मुनि को मारने।

चतुरगिणी सेना निस्पृह श्रमण के हनन के लिए वनप्रान्तर को कँपाती हुई चल दी। तभी सिद्धार्थ देव को यह सब अवधिज्ञान के बल से ज्ञात हुआ। उसने अपनी शक्ति से अनेक सिंह विकुर्वित कर दिए। सिंहों की इस सेना को देखते ही राजा भयभीत हो गया। उसने मुनिश्री के चरण पकड़ लिए। बार-बार अपने अपराध की क्षमा माँगने लगा। उसकी दीन-याचना से सन्तुष्ट होकर देव ने अपनी माया समेट ली और राजा नगर को वापिस लौट आया।

अहिंसा सबको निर्भय बनाती है, शत्रुभाव का नाश करती है। बलभद्र मुनि के आस-पास भी वन के पशु पारस्परिक वैर-भाव भूलकर विचरण करने लगे। एक मृग तो जातिस्मरणज्ञान से अपने पूर्व-भवों को जानकर उनका भक्त ही बन गया। वह जंगल में इधर-उधर घूमता और जहाँ भी निर्दोष आहार प्राप्ति की आशा होती वही उन्हे सकेत से ले जाता।

एक दिन मृग के सकेत से मुनि एक रथवाले के पास पहुँचे । मास-खमण का पारणा था । रथवाला मुनि को देखकर अति प्रसन्न हुआ । विह्वल होकर वह चरणों में गिर पड़ा । उदार भावना से उसने आहार-दान दिया । मृग सोच रहा था—रथवाला कितना भाग्यशाली है जो मुनि को दान दे रहा है । मुनि विचार रहे थे—यह श्रावक उत्तम बुद्धि वाला और भद्र-परिणामी है ।

तीनों अपने विचारों में लीन थे कि वृक्ष की एक मोटी गाखा टूट कर अचानक ही गिर पड़ी और तीनों उसके नीचे दब गए । शुभध्यान से देह त्यागकर तीनों ब्रह्मदेवलोक के पद्मोत्तर नामक विमान में उत्पन्न हुए ।

—त्रिषष्टि० ८/११-१२

—अन्तकृत, वर्ग ५

